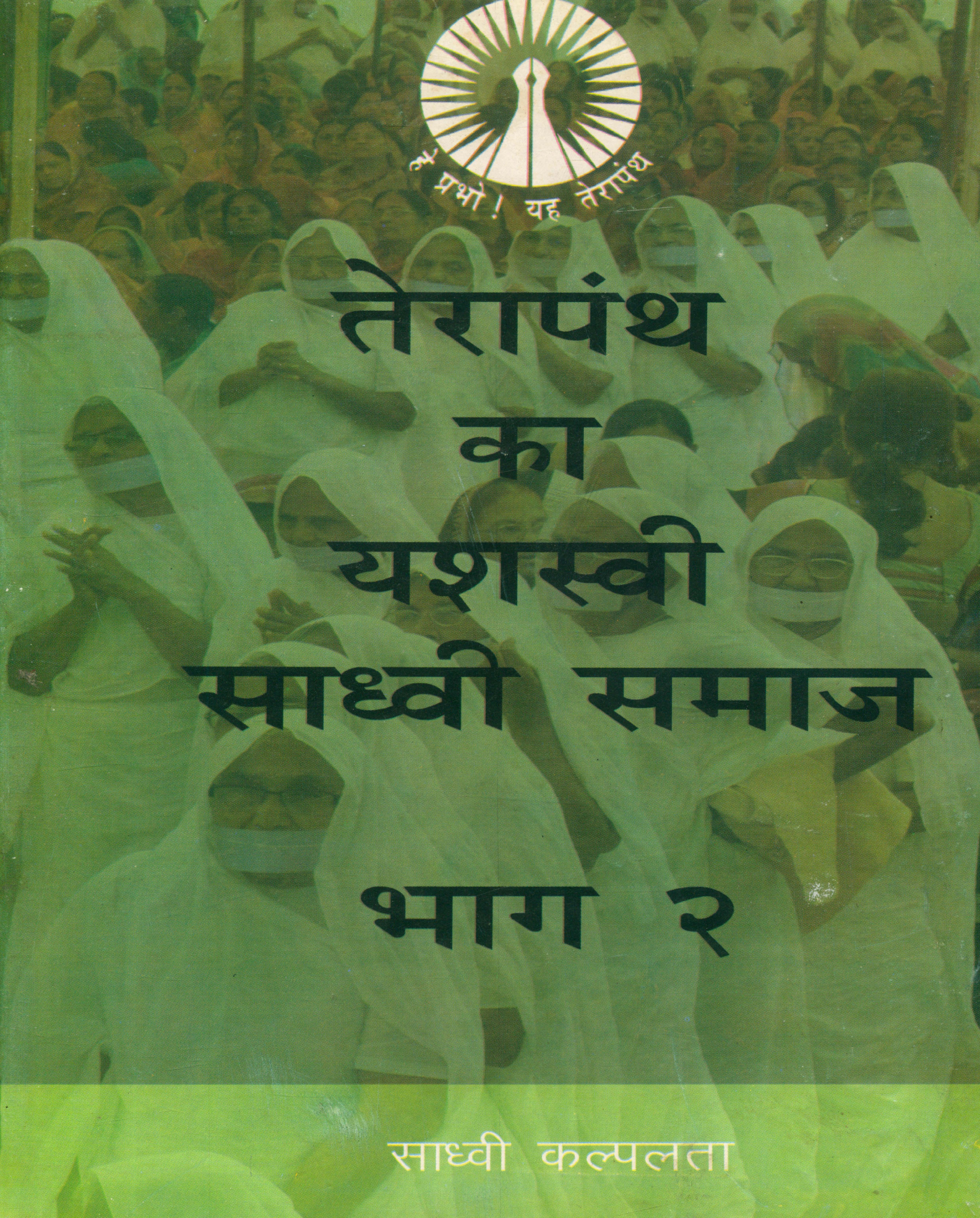

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी समाज

भाग २

साध्वी कल्पलता

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी-समाज

भाग-2

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी-समाज

भाग-2

साध्वी कल्पलता

© आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी-समाज

लेखक : साध्वी कल्पलता

प्रकाशक : आदर्श साहित्य संघ
210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-110 002

प्रथम संस्करण : सन 2011

मूल्य : एक सौ पचास रुपये

प्रकाशन सहयोग : आचार्यश्री महाश्रमणजी के ससंघ धानीन पधारने के उपलक्ष्य में तातेड़ परिवार धानीन, मुम्बई

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

TERAPANTH KA YASHASVI SADHVI-SAMAJ by Sadhvi Kalplata **Rs. 150.00**

सन्देश

18 जून 2011

अर्हम्

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ का इतिहास बहुत सुरक्षित है। इसको पढ़ने से ज्ञात होता है कि इस संघ की साध्वियों का पराक्रम भी गरिमापूर्ण रहा है। परम पूज्य गुरुदेव आचार्य महाप्रज्ञ जी के समय यह निर्णय हुआ कि साध्वियों का इतिहास भी व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जाए। साध्वी कल्पलताजी को यह दायित्व सौंपा गया।

साध्वी कल्पलता जी एक विदुषी और श्रमशील साध्वी हैं। उन्हें धर्मसंघ की सेवा का अवसर भी लम्बे काल से मिल रहा है। उनके परिश्रम से निष्पन्न 'तेरापंथ का यशस्वी साध्वी समाज' ग्रन्थ सामने आ रहा है। इनके माध्यम से पाठकवर्ग तेरापंथ के साध्वी समाज की यशोगाथाओं से परिचित हो सकेगा। शुभाशंसा।

आत्मा

आचार्य महाश्रमण

पुरोवाक्

पुस्तक लेखक के समय का आईना होती है, यह बात विचारप्रधान पुस्तक पर घटित हो सकती है। किन्तु इतिहास इसका अपवाद है। इतिहास में मुख्यतः अतीत का आकलन होता है और उसके साथ वर्तमान का भी प्रतिबिम्ब रहता है। विचारप्रधान पुस्तकों में लेखक के अपने विचारों के साथ सम सामयिक विचारों का भी प्रभाव रहता है। पर यह आवश्यक नहीं है कि उन विचारों के साथ पाठक की सहमति हो। क्योंकि विचार सागर की सतह पर हवा के थपेड़ों से उत्पन्न हुई लहरों के समान हैं। उनमें कहीं संगति हो भी सकती है और नहीं भी। किन्तु इतिहास प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर लिखा गया ऐसा दस्तावेज है, जो अतीत को परत–दर–परत खोलकर रख सकता है।

इतिहास के अन्तर्गत अनेक विषयो का समावेश हो सकता है। एक ओर व्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण विश्व तक उसकी परिधि में सिमटे हुए हैं तो दूसरी ओर धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता आदि भाव और विचारप्रधान विषयों पर भी इतिहास का आलेखन किया जा सकता है। भारतीय इतिहासकारों ने धर्म, दर्शन आदि का सुव्यवस्थित इतिहास कम लिखा है, फिर भी यहां का इतिहासप्रधान साहित्य काफी समृद्ध है। उस साहित्य में धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक शिखर पुरुषों के साथ उन व्यक्तित्वों पर भी कलम चलाई गई है, जिन्होंने सामान्य भूमिका में रहते हुए भी कुछ विशिष्ट काम कर अपनी पहचान बना ली।

तेरापंथ धर्मसंघ में इतिहास का लेखन

हिन्दुस्तान की धार्मिक परम्पराओं में जैनधर्म का अपना इतिहास है। जैन इतिहास में तेरापंथ धर्मसंघ का इतिहास बहुत ही प्रेरक और चामत्कारिक है। इस इतिहास में संगठन की रीति–नीति के साथ इसके संचालक आचार्यों का व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं वर्चस्व भी समुचित रूप से उजागर हुआ है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि तेरापंथ धर्मसंघ में दीक्षित खास और आम प्रत्येक सदस्य इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं। मुनि नवरत्नमलजी (मोमासर) द्वारा लिखित 'शासन समुद्र' ग्रथावली (खण्ड पचीस) में आचार्य भिक्षु के युग से लेकर आचार्य तुलसी युग तक नौ आचार्यों के सभी साधु–साध्वियों का संक्षिप्त या विस्तृत विवरण संकलित है। तेरापंथ के आचार्यों के जीवनवृत्त गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनों शैलियों में उपलब्ध हैं। इतिहास के रूप में उनका आलेखन शासन गौरव मुनिश्री बुद्धमलजी ने किया है। आख्यान या काव्यशैली में तेरापंथ के आचार्यों ने प्रशासनिक कार्यों की व्यस्तता के बावजूद पूर्ववर्ती आचार्यों के जीवनवृत्त लिखकर अपने दायित्व का पूरी जागरूकता से निर्वाह

किया है। अब तक लिखित और मुद्रित आख्यान/काव्य इस प्रकार हैं –

आख्यान	रचनाकार
भिक्खुजस रसायण	आचार्य जीतमलजी (जयाचार्य)
भारीमाल चरित्र	आचार्य रायचन्दजी
ऋषिराय चरित्र	आचार्य जीतमलजी (जयाचार्य)
जय–सुजश	आचार्य मघराजजी
मघवा–सुजश	आचार्य माणकलालजी
माणक–महिमा	आचार्य तुलसी
डालिम–चरित्र	आचार्य तुलसी
कालूयशोविलास	आचार्य तुलसी
तुलसीयशोविलास (अपूर्ण)	आचार्य महाप्रज्ञ

शोध का नया विषय

मुनि बुद्धमलजी द्वारा लिखित आठ आचार्यों के जीवनवृत्त तेरापंथ का इतिहास भाग 1 और भाग 2 में प्रकाशित हैं। आचार्य तुलसी का जीवनवृत्त उनके द्वारा लिखा हुआ है, पर वह अपूर्ण है। साध्वी कनकश्रीजी (लाडनूं) उस कार्य को आगे बढ़ा रही हैं। तेरापंथ के विशिष्ट साधुओं, श्रावकों और श्राविकाओं के मुनि बुद्धमलजी ने काफी लिखा है, पर साध्वियों के बारे में बहुत कम लिखा है। जैन परम्परा के समग्र इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि साध्वियां और श्राविकाएं इतिहास की उपेक्षित पात्र रही हैं। इसका कारण क्या हो सकता है? यह तो शोध का विषय है। शोधकर्ता तटस्थभाव से शोध करें तो संभव है, कुछ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारण उजागर हो सकें।

तेरापंथ में चतुर्थ तीर्थ की सिद्धश्री

तेरापंथ धर्मसंघ में साध्वी समाज का इतिहास बहुत गौरवमय रहा है। इस इतिहास का एक महत्वपूर्ण घटक यह है कि तेरापंथ में गृहस्थ जीवन से दीक्षा की शुरुआत साध्वियों के द्वारा की गई। तेरापंथ की स्थापना विक्रम संवत 1817, आषाढ पूर्णिमा के दिन हुई। लगभग चार वर्षों तक साध्वियां तो थीं ही नहीं, साधु भी अन्य सम्प्रदाय से आकर दीक्षित होने वाले थे। बहनों की दीक्षा से पहले एक भी भाई दीक्षित नहीं हुआ। वि. सं. 1821 में स्थानकवासी समाज की तीन बहनें दीक्षा की प्रार्थना लेकर आई। आचार्य भिक्षु ने उनको कसौटियों पर कसा। उस परीक्षण में वे सफल रहीं। उसके बाद ही उनको धर्मसंघ में प्रवेश मिला तेरापंथ के चतुर्थ तीर्थ की

आधारशिला रखने वाली वे भाग्यशालिनी साध्वियां थीं – साध्वी कुशालांजी, साध्वी मट्टूजी और साध्वी अजबूजी। साध्वीत्रय का संघ में आगमन इतना मंगलमय रहा कि आचार्य भिक्षु के युग में ही साध्वियों की संख्या साधुओं से अधिक हो गई। संख्या का यह ग्राफ उत्तरोत्तर वर्धमान होता गया। आचार्य तुलसी के युग में पहुँचते–पहुँचते साध्वियों की संख्या पांच सौ से अधिक हो गई। समण श्रेणी को साथ में जोड़ा जाए तो यह संख्या छह सौ से ऊपर है। तेरापंथ धर्मसंघ में अब तक सतरह सौ इकसठ (1761) साध्वियां दीक्षित हो चुकी हैं।

आचार्य भिक्षु का दृष्टिकोण

आचार्य भिक्षु परम आत्मार्थी महापुरुष थे। पदप्रतिष्ठा की भूख उन्हें छू भी नहीं पाई थी। यदि उसका थोड़ा भी प्रभाव होता तो वे आचार्यश्री रघुनाथजी महाराज के संभावित उत्तराधिकार को छोड़कर अभिनिष्क्रमण की कल्पना ही नहीं कर पाते। अभिनिष्क्रान्त होने के बाद भी उन्होंने नया संघ स्थापित करने का कोई सपना नहीं देखा। यह तो तेरापंथ की नियति थी कि अनायास ही जोधपुर में नामकरण हो गया और भिक्षु स्वामी के मेधा ने उसको गंभीर अर्थ देकर स्वीकार कर लिया। नए संघ की स्थापना के बाद भी उनके मन में शिष्य–वृद्धि की आकांक्षा नहीं जनमी। उन्होंने संख्याबल की अपेक्षा गुणवत्ता पर अपना ध्यान केन्द्रित किया, साधु–साध्वियों द्वारा अपने–अपने शिष्य–शिष्या बनाने की प्रथा का मूलोच्छेद किया और स्पष्ट निर्देश दिया कि 'जिण–जिण ने मत मूंडज्यो दीक्षा दीज्यो देख–देख' पूरी जांच–पड़ताल के बाद ही दीक्षा देना। जिस–तिस को दीक्षित करने की भूल मत करना।

आचार्य भिक्षु द्वारा निर्धारित कसौटियों पर कसने और पूरा परीक्षण करने के बाद भी संघ में कुछ ऐसी साध्वियों का प्रवेश हो गया, जिनकी अर्हता प्रमाणित न होने के कारण उन्हें संघ से मुक्त किया गया या किन्हीं कारणों से वे स्वयं मुक्त हो गई। पर संघ में साधनारत सभी साध्वियों की साधना, शिक्षा, सेवा और चित्तसमाधि के लिए आचार्य निरन्तर जागरूक रहते हैं। प्रकृति की परवशता और असातवेदनीय का उदय, मुख्यतः ये दो निमित्त न हो तो साधु जीवन में प्राप्त होने वाली समाधि या आनन्द को अनिर्वचनीय माना जा सकता है।

इतिहास लेखन के मानक बिन्दुओं के आधार पर धर्मसंघ में दीक्षित प्रायः सभी साध्वियों का जीवन भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरक बन सकता है। उनका संक्षिप्त विवरण उपलब्ध भी है। किन्तु सलक्ष्य सामग्री–संकलन के अभाव में बहुत महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय घटना–प्रसंग समय के प्रवाह में बह गए। पूज्यवरों का इस दिशा में काम करने का निर्देश/संकेत पाकर साध्वी कल्पलताजी की लेखन–चेतना

परिस्पन्दित हुई। उन्होंने तेरापंथ धर्मसंघ की कतिपय विशिष्ट साध्वियों के जीवन को कलमबद्ध करने का संकल्प किया, योजना बनाई और कार्य प्रारंभ कर दिया। वैसे तो प्रत्येक साध्वी का जीवन अपने आप में विशिष्ट होता है, पर जहां कुछ का चयन किया जाता है, उसके मानक निर्धारित करने होते हैं। प्रमुख रूप से संघनिष्ठा, आज्ञानिष्ठा, संघविस्तार, आगम–स्वाध्याय, तपस्या, कष्ट सहिष्णुता, श्रद्धा, समर्पण आदि मानकों को आधार बनाकर साध्वियों के प्रेरक, रोचक और रोमांचक जीवन प्रसंगो का आलेखन किया गया है।

सन्दर्भ प्रस्तुत ग्रन्थावली का

साध्वी कल्पलताजी द्वारा लिखित 'तेरापंथ का यशस्वी साध्वी समाज' तेरापंथ के इतिहास की शृंखला में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है और साध्वी समाज के इतिहास को विशद रूप में प्रस्तुत करने का एक सार्थक प्रयास है। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से मौखिक और लिखित रूप में प्राप्त सामग्री को समुचित तरीके से समायोजित करने में अपने समय एवं बुद्धिकौशल को नियोजित किया है। इतिहास–रसिक पाठकों के लिए यह उपक्रम उपयोगी बनेगा और उनकी स्वाध्यायशीलता को बढ़ाएगा, ऐसी आशा है। प्रथम बार में प्रस्तुत ग्रन्थ के तीन खण्ड पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगे। पाठकों के अनुभव, सुझाव और प्रतिक्रियाएं लेखिका के सृजन को अधिक परिष्कृत बना सकेंगी, यह भी ध्यातव्य है। साध्वी कल्पलताजी की इस सृजनयात्रा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रकाशस्तम्य बनने वाले और पाथेय प्रदान करने वाले परमपूज्य गुरुवर आचार्य तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ और आचार्य महाश्रमण का आशीर्वाद और कृपाभाव इस यात्रा को आगे बढ़ाने के लिए उनमें निरन्तर ऊर्जा संप्रेषित करता रहेगा, यह विश्वास उनके लिए सबसे बड़ा आश्वासन है।

लाम्बोड़ी (मेवाड़) — साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

2 जुलाई 2011

स्वकथ्य

आचार्य भिक्षु विचार क्रान्ति के पुरोधा थे, आत्मदर्शी साधक थे। वे सत्य के प्रति जितने समर्पित थे, असत्य के प्रति उतने ही अधिक बागी थे। लक्ष्य पाने के लिए वे मेरु से अडोल और सहिष्णु थे तो लक्ष्य से भटकाने वाले सिद्धांत और व्यवहार के प्रति वे उतने ही असहिष्णु थे। सामुदायिक चेतना के प्रति अत्यधिक जागरूक थे तो व्यक्तिवादी मनोवृत्ति को पनपने के लिए एक इंच जमीन देने के लिए तैयार नहीं थे। उस समय उनके सामने कोई प्रिय-अप्रिय व्यक्ति नहीं होता मात्र सिद्धान्त, मान्यता और परम्परा की स्थापना का विशुद्ध दृष्टिकोण होता। यही कारण था कि उन्होंने कबीर की तरह निर्भय होकर पाखण्ड का प्रतिकार किया, यथार्थ को प्रस्तुति दी और उन्होंने धर्म के आस-पास उगे कांटों को उखाड़ फेंका।

सम्पूर्ण तेजस्विता के साथ चमकने वाले प्रचण्ड सूर्य के आस-पास निस्तेज ग्रह-नक्षत्र टिक सके, असंभव बात थी। वहाँ शक्तिसम्पन्नता पहली शर्त थी, क्योंकि तेजस्वी बनकर ही तेज की उपासना की जा सकती है। नैतिक मूल्यों को जीना जितना कठिन होता है उससे अधिक संघर्षपूर्ण होता है अनैतिक मूल्यों को चुनौती देना। मानवीय दुर्बलताओं के महाभारत में विजय प्राप्त करने के लिए आचार्य भिक्षु ने जीवन भर तप तपा, अपमान और उपेक्षा का विष पान किया, अभावों के अनगिनत पर्वत लांघे। नीचे धरती और ऊपर आसमां का आश्रय लेकर आत्म-साधना के राजपथ पर वह वीर महावीर बन चल पड़ा।

कठिनाई, संघर्ष, विरोध के बीहड़ जंगल में कई साथियों के साहस का दीपक जलता रहा तो कई साथी भय की अंधेरी खोह में गुम हो गए। वि. सं. 1817 की आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन तेरह व्यक्तियों के जुड़े छब्बीस हाथों ने कहा 'हे प्रभो! यह तेरापंथ' इस घोष को समुच्चारित कर नए संघ की सिद्धश्री लिखी। उन दुर्लभ ऐतिहासिक क्षणों की जो अपूर्व कुण्डली बनी, तेरापंथ का विश्वव्यापी कर्तृत्व उसी का चमत्कार कहा जा सकता है।

तेरापंथ धर्मसंघ की जन्मकुण्डली में ऐसा कौन–सा नक्षत्र प्रभावी था कि एक साथ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका – चारों तीर्थ का उदय नहीं हो पाया। यह एक ज्योतिर्विद के लिए अनुसंधान का विषय है। पर यह सुनिश्चित है कि तेरापंथ स्थापना के चार वर्ष बाद चौथे तीर्थ (साध्वियों) का प्रवर्तन हुआ।

तेरापंथ में साध्वियों की दीक्षा जब तक नहीं हुई, विरोधी लोग व्यंग्यात्मक भाषा में कहते – भीखणजी! तुम्हारे संघ का लड्डू अपूर्ण है। चतुर्विध संघ की जगह त्रिविध संघ है।

आचार्य भिक्षु जिस ठोस भूमिका पर खड़े थे उनके सामने सत्य ही महत्त्वपूर्ण था। न संख्या का मोह था और न साध्वियों के अभाव का क्षोभ था। वे चाहते थे – जो साधक आए वे शुद्ध लक्ष्य के प्रति समर्पित हों। इसलिए व्यंग्यपूर्ण प्रश्न को समाहित करते हुए उन्होंने कहा – 'हमारा मोदक अपूर्ण भले हो पर जो है चौगुनी चीनी का है अर्थात् जितना है वह स्वादिष्ट है और जैसा होना चाहिए वैसा है।'

आचार्य भिक्षु ने अपने सीधे सपाट कथन से यह स्पष्ट कर दिया कि चीनी के अभाव में लड्डू स्वादिष्ट नहीं बनता और उसे कोई पसंद नहीं करता, वैसे ही चारित्र के अभाव में धर्मसंघ की चतुर्विधता भी महत्त्वपूर्ण नहीं होती है।

संयोग की बात थी, इस प्रसंग के कुछ समय बाद ही आचार्य भिक्षु के पास तीन बहिनें आईं और उन्होंने दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की।

आचार्य भिक्षु उस समय ऐसी पगडंडियों से चल रहे थे जहाँ कांच और कांटे बिछे हुए थे। जिन गलियों से वे निकलते गालियों की बौछार और नफरत का तेजाब छिड़का जाता। भय और भ्रान्ति का तेज अंधड़ तो सदा उनके आगे-पीछे चलता ही रहता। इसलिए अपनी सूक्ष्मदर्शी सोच का उपयोग करते हुए तीनों दीक्षार्थिनी बहनों को वर्तमान की संभावित परिस्थितियों से अवगत कराया और आगमोक्त कसौटी पर उनके वैराग्य को कसा। सोने की तरह उन्हें निकष पर चढ़ाते हुए आचार्य भिक्षु ने कहा – जैनागमों के अनुसार कम से कम तीन साध्वियों का साथ रहना आवश्यक है। यदि दीक्षा लेने के पश्चात् तुम तीनों में से एक का वियोग हो जाए तो शेष दो साध्वियों के लिए संलेखना के सिवाय कोई मार्ग नहीं है।

आत्मोत्सर्ग की शूली पर चढ़ने का साहस जुटाकर तीनों बहनों ने दीक्षा का अटल संकल्प पुनः व्यक्त किया, क्योंकि उनका वैराग्य विवेक से जनमा था, कोई दबाव, प्रलोभन, जोर जबरदस्ती या पारिवारिक मजबूरी नहीं थी। बहनों की वीरता और धीरता से आचार्य भिक्षु आह्लादित हुए। उनके वैराग्य भाव से पहले ही आश्वस्त थे। आचार्य भिक्षु ने पूर्ण परीक्षा के पश्चात् तीनों बहिनों को अपने धर्मसंघ में दीक्षित कर चौथे तीर्थ का प्रवर्तन किया। वह शुभ संवत 1821 का था।

प्रस्तुत सन्दर्भ में कुछ जिज्ञासाएं मन की धरती पर सहज अंकुरित होती हैं –

– तेरापंथ साध्वी समाज की नींव बनने वाली तीनों बलिदानी साध्वियों की जन्म भूमि कौन-सी थी?

– उन तीनों की शादी कब हुई? कहाँ हुई? कब उन पर वैधव्य का वज्रपात हुआ?

– बहिनों की भाग्यशाली त्रिवेणी आचार्य भिक्षु के चरणों में कैसे पहुंची?

– भय और भ्रान्तियों के सघन अन्धकार में उन्हें उदित होता तेरापंथ का धुंधला–सा प्रकाश कैसे दिखाई दिया?

– उन्होंने संयम रत्न की उपलब्धि किस पुण्य धरा पर प्राप्त की तथा वह शुभ दिन कौन–सा था?

प्रश्नों की इस लम्बी कतार को सामने रखकर तेरापंथ इतिहास को देखा, शासन समुद्र के पन्ने पलटे। शासन प्रभाकर, आचार्य भिक्षु धर्म परिवार आदि अनेक ग्रंथों को पढ़ा पर जिज्ञासा शान्त न हो सकी।

एक दिन इस प्रश्न का उत्तर मिला। तेरापंथ इतिहास मनीषी मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' द्वारा लिखित एक लेख में जिसका शीर्षक है – 'धुंधले से प्रकाश में महासती कुशलांजी।'

संयोग की बात है कि गहरे अंधकार में खोए प्रकाशमान व्यक्तित्व की किरणों को हमारे तक संप्रेषित करने में माध्यम बनी एक वयोवृद्धा साध्वी। जिनकी पहचान संघ में जूनी जोग्ण साध्वी के रूप में होती थी। स्वनाम धन्या धीर गंभीर धर्मसंघ की वरिष्ठ साध्वी थी – साध्वी श्री लाडांजी (लाडनूं)।

प्रभास्वर व्यक्तित्व के धनी सप्तमाचार्य डालगणी के कर–कमलों से दीक्षित साध्वी लाडांजी ने यह सारा दुर्लभ दस्तावेज साध्वी प्रमुखा जेठांजी से प्राप्त किया। साध्वीप्रमुखा जेठांजी ने परम पूज्य डालगणी के मुखारविन्द से सुना, इसलिए इसकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है। साध्वी समाज के इतिहास के विस्तृत और सघन आकाश में विहरण करते समय मुनिश्री ने केवल बड़े–बड़े ग्रह नक्षत्रों पर ही अपनी नजरें नहीं टिकाई, छोटे से छोटे तारों को कहीं भी टिमटिमाते देखा, अपनी स्मृति प्रकोष्ठ में रख लिया। उसकी वजह से छितरी छितरी किरणें आज हमारे जिज्ञासा पथ को आलोकित कर रही हैं।

ऐहिहासिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि तेरापंथ का इतिहास, भिक्षु जस रसायण आर्या दर्शन गीत तथा गुण वर्णन गीतिकाएं, शासन प्रभाकर, शासन विलास और शासन समुद्र आदि अनेक ग्रंथ निश्चित रूप से मील के पत्थर बनकर युग–युग तक सबका पथ दर्शन करते रहेंगे।

तेरापंथ के आचार्यों ने धर्मसंघ के विरासत की बड़े जतन और कूवत के साथ सुरक्षा की है। समय–समय पर युगीन सन्दर्भों में नई भाषा, शैली में प्रस्तुति देकर उसकी महत्ता और उपयोगिता को सहस्रगुणित किया। आज आचार्य भिक्षु का विश्वस्तरीय मूल्यांकन उनके दर्शन, चिन्तन और मंतव्य से है। आचार्यश्री तुलसी के युग में तेरापंथ द्विशताब्दी के ऐतिहासिक अवसर पर तेरापंथ दर्शन और तेरापंथ के

इतिहास को प्रस्तुति देने का जो भगीरथ प्रयास प्रारंभ हुआ, वह आज तक चल रहा है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने तेरापंथ दर्शन को आधुनिक शैली एवं साहित्यिक परिवेश मे व्याख्यायित कर उसकी आध्यात्मिक वैज्ञानिक दृष्टि को उजागर किया। वर्तमान में आचार्यश्री महाश्रमण भिक्षु–साहित्य समन्दर में अवगाहन कर उसके अनमोल रत्न जन–जन को उपलब्ध कराने का अनथक श्रम कर रहे हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ, आचार्यश्री महाश्रमण (उस समय युवाचार्यश्री महाश्रमण) और महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी संघीय साहित्य के सन्दर्भ में समवेत चिन्तन कर रहे थे। एक विचार आया – "साध्वी समाज का इतिहास अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाए।" आचार्यवर के इस निर्णय की क्रियान्विति के लिए महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने मुझे निर्देश दिया।

तेरापंथ मनीषी मुनिश्री नवरत्नमलजी द्वारा लिखित 'शासन समुद्र' मेरे लेखन का प्रामाणिक आधार था। मैंने उनको सामने रखा, और उसके साथ–साथ तेरापंथ इतिहास मनीषी मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' के उपपात में बैठकर साध्वियों के सम्बन्ध में विविध आयामी जानकारी प्राप्त की। मुनिश्री की आत्मीयता भरी उदारता ने कई साध्वियों की जीवन–पोथी के नए–नए पृष्ठ खोले। इसके अलावा अनुभव समृद्ध वयोवृद्ध साध्वियों के पास बैठकर इधर–उधर बिखरी सामग्री को बटोरने का भी मैंने प्रयत्न किया। आश्चर्य तो उस समय हुआ, जब हमारी वयोवृद्धा साध्वियों ने श्रुतानुश्रुत परम्परा के आधार पर बहुत सारी नई बातें बताई। साध्वियों के बारे में संकलित हस्तलिखित जीवन चरित्र एवं प्रकाशित पुस्तकों की सामग्री भी मेरे लिए उपयोगी बनी। जैन भारती और भिक्षु स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित लेखों में तथा अन्यत्र भी यत्र तत्र साध्वियों के जीवन को उजागर करने वाली प्रकाश की किरणें दिखाई दी, उनको भी मैंने औचित्य के साथ सहजने का प्रयास किया है।

इतिहास के सन्दर्भ में एक बात मैं तहेदिल से स्वीकार करना चाहूंगी कि भरसक कोशिश के बावजूद समय, स्थान की प्रामाणिकता में संदिग्धता रहनी बहुत संभव है। इसी दृष्टि से पाठकों को कोई प्रामाणिक जानकारी हो और वे यदि भविष्य में मेरा मार्गदर्शन करेंगे तो मेरे अंतःकरण में उनके लिए साधुवादार्ह मानने का सम्माननीय स्थान आरक्षित रहेगा। इसी प्रकार किसी भी साध्वी के विषय में नए तथ्य तथा नई सामग्री उपलब्ध होगी तो अतिरिक्त प्रसन्नता का विषय होगा।

तेरापंथ–साध्वी समाज की विकास यात्रा विविध आयामी और विविध दिशागामी रही है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, कला, वैराग्य–निर्माण, संघ–विस्तार, प्रचार–प्रसार

और जन सम्पर्क में श्रद्धा समर्पण के साथ उनकी शक्ति और समय का नियोजन विशेष उल्लेखनीय है। तेरापंथ के महाप्रतापी आचार्यों के विकासकारी अनुशासन की धूप, आत्मीय अनुग्रह का पानी और प्रेरणा की अनुकूल हवा ने साध्वी–समाज के विकास की फसल को लहलहाने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया, उसी के परिणाम स्वरूप आज तेरापंथ का साध्वी समाज यशस्वी, तेजस्वी और वर्चस्वी है।

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी समाज – भाग 2 में तेरापंथ धर्मसंघ के पांचवे, छठे तथा सातवें आचार्यश्री मघवागणी माणकगणी तथा डालगणी के युग की चयनित यशस्वी साध्वियों के जीवन–वृत्त का समावेश किया गया है। इस ग्रन्थ में कुल 46 साध्वियों के जीवनवृत्त हैं, जिनका वर्गीकरण इस प्रकार है –

1. आचार्यश्री मघवागणी के युग की साध्वियां – 16
2. आचार्यश्री माणकगणी के युग की साध्वियां – 6
3. आचार्यश्री डालगणी के युग की साध्वियां – 24

कीर्तिधरशलाकापुरुष, प्रेरणा के महास्रोत परम पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री तुलसी ने मुझे इतिहास के उपवन में प्रवेश करने की प्रेरणा दी। विशेष रूप से श्राविकाओं के कर्त्तृत्व को उजागर करने का निर्देश दिया। आचार्यप्रवर के अंतिम लाडनूं प्रवास में इस दृष्टि से मैंने प्रयास शुरु किया और कई बहिनों को अपनी लेखनी का विषय बनाया। 'इतिहास के नुपुर' पुस्तक उसी प्रयास का परिणाम है। अनन्त ऊर्जास्रोत महाप्राण पूज्य गुरुदेव द्वारा प्राप्त प्रेरणा संजीवनी सदा–सदा मेरे लिए संजीवनी का काम करती रहे, यही अभीप्सा है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ और आचार्यश्री महाश्रमण की कृपा दृष्टि ने मेरी कर्मणा शक्ति को साध्वियों के इतिहास लेखन में नियोजित किया और समय–समय पर प्रेरणा का सिंचन देकर प्रोत्साहित किया, इसे मैं अपना सौभाग्य मानकर आह्लाद का अनुभव करती हूँ। आचार्यश्री महाश्रमण की मंगलमय छत्रछाया में बैठकर संयम–साधना के साथ मन वचन और कर्म को संघविकास के कार्यों में नियोजित कर पाई तो मैं अपने जीवन को सफलता एवं सार्थकता के करीब महसूस करूंगी। आचार्यश्री के मंगल आदेश निर्देश को मैं आगम वाक्य मानकर अपना पथ प्रशस्त करती रहूँ। यही मेरा जीवन व्रत है, यही मेरा लक्ष्य है और यही मेरी मंजिल है।

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्रीजी का अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, अप्रमत्त कर्मयोग और सहज समुन्नत साधना योग मेरे कदमों को गतिशील, हाथों को कर्मशील बनाने वाला है। गुरु–कृपा से महाश्रमणीजी की पावन सन्निधि मेरे पुरुषार्थ के दीप को प्रज्ज्वलित

करने वाली है। पुरुषार्थ की दीये को अप्रमाद और समर्पण भाव का तेल निरन्तर मिलता रहे, यही मनो भावना है। परम श्रद्धास्पद आचार्यवर एवं महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त कर सकूं, वे शब्द मेरे शब्दकोश में नही है। मैं गुरु–दृष्टि की आराधना करती हुई, आज्ञा और अनुशासन को श्वास की तरह जीती रहूं तथा मेरे मन में श्रद्धा–समर्पण की अनाविल ज्योति जलती रहे यही अन्तःकरण की कामना है।

मैं इतिहास मनीषी मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' के प्रति अत्यन्त विनम्र भाव से प्रणत हूँ जिन्होंने वात्सल्य भाव से बड़ी उदारता के साथ मुझे इतिहास के विरल प्रसंगों की अवगति दी। जब कभी मैंने उनको निवेदन किया, उन्होंने अपनी सुविधा असुविधा को गौणकर मेरी अनुकूलता से मुझे समय दिया और मेरा मार्गप्रशस्त किया।

गुरुकुलवास का प्रेरक वातावरण और गुरुकुलवासी सभी साध्वियों के सौहार्द भाव के साथ साध्वी सुषमाकुमारीजी, चित्रलेखाजी, विभाश्रीजी विवेकश्रीजी, शशिप्रभाजी, सुनन्दाश्रीजी, स्वस्तिकप्रभाजी एवं लक्ष्यप्रभाजी का आत्मीय सहयोग मेरे कार्य को सहज सरल बनाता रहा है। उनके इस अनन्य सहयोग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के साथ मंगल कामना करती हूँ कि भविष्यं में सबका सहयोग उपलब्ध होता रहे।

पुस्तक–प्रकाशन से पूर्व सभी कार्यों का दायित्व अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मण्डल की पूर्व अध्यक्ष श्रीमती पुष्पा बैंगाणी और पूर्वमंत्री श्रीमती प्रेम सेठिया ने संभाल कर मुझे निश्चिंत बना दिया। श्रीमती पुष्पा बैंगाणी एवं श्रीमती प्रेमसेठिया की स्वाध्याय रूचि मनोवृत्ति ने पुस्तक की सामग्री को सुव्यवस्थित करने में श्रम के साथ उत्साह से कार्य किया, इसके लिए वे वास्तव में ही साधुवाद की पात्र हैं। मुमुक्षु डां शान्ता जैन भी मेरे कार्य में समय–समय पर सहयोगी बनी रहीं। सभी बहिनों की संघनिष्ठा एवं अध्यात्म निष्ठा के विकास की मंगल भावना।

लाम्बोड़ी (मेवाड़) 2 जुलाई 2011 साध्वी कल्पलता

अनुक्रमणिका

आचार्यश्री मघवागणी के युग की साध्वियां

1.	साध्वीश्री लिछमांजी	सुजानगढ
2.	" " नानूजी	पचपदरा
3.	" " जेठांजी	रतनगढ
4.	" " सुखांजी	चन्देरा
5.	" " चंपाजी	जयपुर
6.	" " अब्भांजी	सरदारशहर
7.	" " रूपांजी	देशनोक
8.	" " धन्नांजी	गोगुन्दा
9.	" " गुलाबांजी	सरदारशहर
10.	" " छोगांजी	छापर
11.	साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी	श्रीडूंगरगढ
12.	" श्री मुखांजी	सरदारशहर
13.	" " मीरांजी	सिरसा
14.	" " जड़ावांजी	बीदासर
15.	" " जड़ावांजी	चाड़वास
16.	" " छगनांजी	रासीसर

आचार्यश्री माणकगणी के युग की साध्वियां

17.	साध्वीश्री विरधांजी	बोरज
18.	" " सुवटांजी	राजलदेसर
19.	" " नानूंजी	सरदारशहर

20.	"	" मघूजी	रीड़ी
21.	"	" वाल्हांजी	सिरसा
22.	"	" धन्नांजी	जसोल

आचार्यश्री डालगणी के युग की साध्वियाँ

23.	साध्वीश्री	दाखांजी	पुर
24.	"	" लाडांजी	लाडनूं
25.	"	" हीरांजी	नोहर
26.	"	" रतननांजी	सुजानगढ
27.	"	" लाधूजी	सरदारशहर
28.	"	" मौलांजी	चाड़वास
29.	"	" बख्तावरजी	मोखणुंदा
30.	"	" दाखांजी	खरणोटा
31.	"	" जडावांजी	डीडवाना
32	"	" दरियावांजी	किसनगढ
33.	"	" भूरांजी	टॉडगढ
34.	"	" पारवतांजी	छापर
35.	"	" सोनांजी	सरदारशहर
36.	"	" सुन्दरजी	तारानगर
37.	"	" नानूजी	जसोल
38.	"	" चम्पाजी	बालोतरा
39.	"	" खूमांजी	लाडनूं
40.	"	" सुखदेवांजी	लाडनूं
41.	"	" भूरांजी	पुर
42.	"	" हुलासांजी	सरदारशहर

43.	"	"	प्रतापांजी	सरदारशहर
44.	"	"	मैनांजी	झाबुआ
45.	"	"	चांदाजी	सरदारशहर
46.	"	"	संतोकांजी	सरदारशहर

तेरापंथ का यशस्वी साध्वी–समाज

भाग – 2

पंचमाचार्य मघवागणी के युग की साध्वियां

1. साध्वी लिछमांजी सुजानगढ (494)
2. " नानूजी पचपदरा (496)
3. " जेठांजी रतनगढ (498)
4. " सुखांजी चन्देरा (513)
5. " चंपाजी जयपुर (524)
6. " अभांजी सरदारशहर (525)
7. " रूपांजी देशनोक (535)
8. " धन्नांजी गोगुन्दा (536)
9. " गुलाबांजी सरदारशहर (538)
10. " छोगांजी छापर (540)
11. " साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी श्री डूंगरगढ़ (541)
12. " मुखांजी सरदारशहर (544)
13. " मीरांजी सिरसा (553)
14. " जड़ावांजी बीदासर (558)
15. " जड़ावांजी चाड़वास (562)
16. " छगनांजी रासीसर (575)

1. साध्वी लिछमांजी (सुजानगढ़) (494)

साध्वी लिछमांजी सुजानगढ़ निवासिनी थी। उनका जन्म सं. 1929 कार्तिक शुक्ला चवदस को हुआ। उनके पिता का नाम कोडामलजी बेगवानी (ओसवाल) था और मां का नाम जोधांजी था। कोडामलजी के देहान्त के पश्चात उनके मन में वैराग्य भाव पैदा हुआ। उस समय उनकी पुत्री जिसका नाम लिछमा था। वह भी दीक्षा लेने को तैयार हो गई। दोनों - मां और बेटी ने जयपुर चातुर्मास में सं. 1938 भाद्रव शुक्ला 13 को मघवागणी के कर-कमलों से संयम रत्न प्राप्त किया। मघवागणी उसी भाद्रशुक्ला द्वितीया को आचार्यपद पर आसीन हुए थे। उनके हाथों सर्वप्रथम दीक्षित होने का सौभाग्य साध्वी जोधांजी एवं लिछमांजी को मिला। साध्वी लिछमांजी मघवा-युग की प्रथम कुमारी-कन्या थी।

साध्वी लिछमांजी को आठ वर्ष मघवागणी के पावन सान्निध्य में रहने का अवसर मिला। जब-तक वे गुरुकुल में रहीं तब-तक मघवागणी ने उनको समुच्चय के कार्य तथा आहार की पांति से मुक्त रखा। वे अत्यन्त विनम्र स्वभाव की थीं। महासती गुलाबांजी का उन पर विशेष अनुग्रह था। वे प्रतिभा-सम्पन्न थी। गुरुकुलवास में रहकर उन्होंने अच्छा विद्याध्ययन किया। उनकी विद्वता और प्रभावशीलता को देखकर पूज्य मघवागणी ने अठारह वर्ष की अल्पायु में उन्हें अग्रणी बनाया। सं. 1947 में अग्रगामी बनकर उन्होंने थली, मारवाड़, मेवाड़, ढूंढाड़ और हरियाणा के विभिन्न क्षेत्रों में विचरण किया और तेरापंथ धर्मसंघ के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया, वे जहां भी गई, श्रावक श्राविकाओं में अच्छे संस्कार भरें।

एक बार वे नोहर से विहार कर सरदारशहर की ओर आ रही थी। मार्ग में शिमला नामक गांव में अस्वस्थ हो गई। विहार की स्थिति न होने के कारण लगभग 12 दिनों तक वहीं ठहरना पड़ा। फिर भी विहार कर सके वैसी शरीर की स्थिति नहीं बन पाई। तब आचार्य श्री के विशेष निर्देश से अठारह साध्वियां सुजानगढ़ से शिमला पहुंची और उन्हें उठाकर सरदारशहर लेकर आईं। शिमला गांव सरदारशहर से लगभग 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

साध्वी लिछमांजी ने लगभग 63 साल तक संयम पर्याय का पालन किया और मघवागणी से लेकर नवमाचार्य तुलसीगणी तक पांच आचार्यों की सेवा का उन्हें अवसर मिला। जीवन के अंतिम समय में वे चार वर्ष चूरू में स्थिरवासी रही। साध्वी पारवतांजी

(671) आदि उनकी सेवा में रही। अंत में साध्वीजी ने 3 प्रहर के तिविहार और 63 प्रहर के चौविहार संथारे में उनका स्वर्गवास हो गया। जिस दिन वे पण्डित मरण को प्राप्त हुई वह दिन था सं. 2001 भाद्रव कृष्णा सातम का।

साध्वी लिछमांजी के स्वर्गवास के पश्चात आचार्य तुलसी ने उनकी सहयोगिनी साध्वी पारवतांजी को अग्रगण्या बनाया। डालिम चरित्र में उल्लिखित पद्य इसका प्रमाण है–

छापर जाती नवलखा पारवतां भव पार।
सिंघाड़ो तुलसी कर्यो, लिछमांजी रै लार॥

डा. च. खण्ड २. ढा. १० गा. ३३

2. साध्वी नानूजी (पचपदरा) (496)

साध्वी नानूजी मारवाड़ गांव की निवासिनी थी। उनका पीहर और ससुराल दोनों वहीं थे। वे चौपड़ा परिवार की पुत्री थी और सकलेचा परिवार की पुत्रवधू थी। उनके पिता का नाम उमेदमलजी चौपड़ा था तथा पति का नाम अमरचंदजी सकलेचा था। पति वियोग के पश्चात सं. 1938 फाल्गुन शुक्ला बारस को पचपदरा में साध्वी नन्दूजी (बड़ा) के हाथ से दीक्षा ग्रहण की।

साध्वी नानूजी सं. 1945 में अग्रगण्या बनीं, ऐसा सेठिया संग्रह तथा साध्वी विवरणिका में उल्लेख है। उन्होंने मारवाड़, मेवाड़, थली तथा हरियाणा में विहरण कर संघीय विकास में अपना योगदान दिया। सं. 1963 से 1976 तक के पचपदरा में स्थिरवासी रही। सं. 1976 में उन्हें पचपदरा से जसोल जाना पड़ा यह भी इतिहास है। उससे सम्बंधित घटना इस प्रकार है-

मुनि श्री गणेशमलजी (422) जसोल वाले जब गृहस्थ थे तब एक दिन पचपदरा स्थिरवासी साध्वी नानूजी के दर्शन करने गए। सतियों की उपासना कर वहां की स्थिति की सम्पूर्ण जानकारी ली। वापिस जसोल आकर वे अष्टमाचार्य कालूगणी के दर्शन करने बीदासर गए। आचार्यवर ने उनको विश्वस्त एवं श्रद्धाशील श्रावक समझकर कहा- पचपदरा क्षेत्र में शिथिलता आ गई है। वहां के श्रावकों में भी परस्पर दलबन्दी है। इसलिए वहां से थाणा उठाना है पर यह कार्य बड़े चातुर्य से करना है जिससे कहीं हो हल्ला न हो।

गणेशमलजी ने पूज्य गुरुदेव कालूगणी को निवेदन किया- साध्वियों को जसोल भिजवाने की कृपा करें। सतियों की मानसिकता भी संभवत: जसोल आने की है। आचार्यवर ने श्रावकजी की प्रार्थना पर स्वीकृति दे दी। उन्होंने वापिस आकर साध्वी नानूजी को आचार्यवर का आदेश तथा सारी स्थिति निवेदित की। साध्वीजी ने सादर गुरु-आज्ञा शिरोधार्य की। फिर गणेशमलजी के कहने से आसपास में विहरण करने वाले सिंघाडों की पन्द्रह साध्वियां पचपदरा पहुंची और उन्हें उठाकर जसोल पहुंचाया।

इधर पचपदरा के श्रावकों को जब सारी स्थिति मालूम हुई तब उन्हें बहुत दु:ख हुआ। उनकी आंखों से पानी बरसने लगा। कुछ जो साहसी और क्रान्त विचारों के व्यक्ति थे, उन्होंने कहा - जसोल वालों ने हमारे गांव पर डाका डाला है। उन्होंने हमारे साथ धोखा किया है। कुछ दिनों के पश्चात पदपदरा के लोगों ने अपनी कथा-व्यथा जसोल जाकर साध्वी नानूजी के सामने प्रकट की। उन्होंने शान्तभाव से कहा- ''हम तो गुरु-

आज्ञा के चाकर हैं, जो भी आदेश मिले वह हमें शिरोधार्य है। अगर उनका आदेश पुनः पचपदरा जाने का मिले तो हम उसके लिए भी तैयार हैं।''

तब पचपदरा के श्रावक सेठ सिरेमलजी, गैबजी आदि जोधपुर के वकील प्रतापमलजी मुंहता को साथ लेकर पूज्य कालूगणी के दर्शन करने चाड़वास पहुंचें। उन्होंने आंखों से आंसू बहाते हुए गदगद स्वर में कहा- प्रभुवर! हमारी तो शान चली गई। सतियों का थाणा उठने से हमारी तो नाक कट गई। हमने यह कभी नहीं सोचा था कि हमारे गांव का पानी इस तरह उतर जाएगा। हमें स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि- गुरुदेव ऐसा कराएंगे। हमारे तो गाँव में साध्वियों का ही उजाला था, अब पचपदरा में भयंकर अन्धकार फैला हुआ है। इससे हमारी बहुत बदनामी हुई है। अब हमारी इज्जत रखना आपके ही हाथ है।

इस प्रकार दिलगीर होकर विनम्र भाव से बार-बार प्रार्थना करने पर करुणा-सागर कालूगणी का हृदय पसीज गया। उन्होंने कहा- यदि सतियों का मन हो तो वापिस पचपदरा जा सकती है। गुरु का अनुपम वात्सल्य और अनुग्रह प्राप्त कर पचपदरा के श्रावक प्रसन्न हो गए। उन्होंने जसोल पहुंच कर सारे संवाद साध्वीजी को सुना दिए।

पचपदरा के श्रावकों से जो सुना, उससे जसोल के लोगों में प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। गणेशमलजी वकील नैनमलजी के साथ तत्काल गुरु सान्निध्य में पहुंचे। वे श्रद्धाभिभूत थे पर नए निर्णय को सुनकर व्यथित हो गए। व्यथा ने आक्रोश का जामा पहन लिया और जाते ही कहा- ''गुरुदेव! हम सुनते थे कि राजा कान के कच्चे होते हैं, पर आपने वैसा ही करके दिखा दिया। जिसने जो कहा आपने उसी की बात मान ली।''

मंत्रीमुनि मगनलालजी ने गणेशमलजी को टोकते हुए कहा-''गुरु के सामने विचार पूर्वक बोलना चाहिए।'' आचार्यवर ने मंत्री मुनि को लक्षित कर कहा- ''यह सरल हृदय, धर्मनिष्ठ और भक्त श्रावक है। दिल में दर्द होने के कारण मुंह से निकल गया।'' मैं पुनः दोनों क्षेत्रों की भावना को ध्यान में रखकर पुनः आदेश देता हूँ, कि साध्वियां जसोल में 21 दिन का प्रवास कर पचपदरा चली जाएं। सुनते ही गणेशमलजी का रोम रोम खिल उठा। शारीरिक अस्वस्थता तथा वृद्धावस्था होने पर भी 21 दिन तक जसोल में रहकर साध्वी नानूजी पुनः पचपदरा पधार गईं। उसके बाद अन्त तक उन्होंने वहीं स्थिरवास किया। प्रतिवर्ष आचार्यवर एक सिंघाड़े को उनकी सेवा में भेजते और जाने वाली साध्वियां उनकी सेवा और गाँव की सारसंभाल करतीं। सं. 1977 से 1984 तक वहां जाने वाले सिंघाड़ों की चातुर्मास विवरणिका उपलब्ध है। वे सं. 1984 पौष कृष्णा को दिवंगत हो गई।

3. साध्वी जेठांजी (रतनगढ) (498)

साध्वी जेठांजी बीदासर निवासी अमरचंदजी चौरड़िया की पुत्री थी। (उनके पिताजी का नाम 'वीतरागकल्प मघवा' पुस्तक में उदयचंदजी चौरड़िया लिखा है) उनका विवाह रतनगढ़ निवासी बींजराजजी दूगड़ (ओसवाल) के अनुज भेरूंदानजी के साथ हुआ। दूगड़ परिवार उस समय भिक्षु शासन से बहिर्भूत छोगजी चतुर्भुजजी के प्रति आस्थावान था। उस परिवार में श्रद्धा भी उनकी ही थी। सं. 1936 में छोगजी चतुर्भुजजी ने सरदारशहर चातुर्मास किया और वहां नई दीक्षा ग्रहण की। जेठांजी ने अपने ससुराल पक्ष से प्रभावित होकर छोगजी चतुर्भुजजी के पास दीक्षित होने की भावना व्यक्त की। पारिवारिक जनों की अनुज्ञा से सरदारशहर चातुर्मास में साध्वी जेठांजी ने छोगजी चतुर्भुजजी के पास दीक्षा ग्रहण की।

सरदारशहर के श्रावक मेघराजजी आंचलिया ने छोगजी चतुर्भुजजी के सन्दर्भ में कुछ प्रश्न जयपुर में विराजित जयाचार्य से पूछे। जयाचार्यश्री द्वारा प्रदत्त जबाव आने पर वे दोनों भाई- छोगजी-चतुर्भुजजी अलग-अलग हो गए। छोगजी आदि सरदारशहर से विहार कर बीकानेर की तरफ चले गए। जेठांजी भी उनके साथ उधर चली गई। जेठांजी ने देखा-उनके मंतव्यों में स्थिरता नहीं है और अनेक दोषों के साथ आचारगत शैथिल्य भी पर्याप्त है। पारस्परिक खींचातानी के कारण भी उनका मन उचट गया। इसलिए अवसर देखकर उन्होंने तेरापंथी साधुओं से कहा- यदि आचार्यवर कृपा करके सतियों को इधर भिजवा दें तो मैं भिक्षु-शासन में आना चाहती हूँ। आचार्यवर के पास जब यह संवाद पहुंचा तो साध्वी बगतावरजी (326) को वहां भेजा। उनके पास साध्वी जेठांजी ने संवत 1938 मृगशर महीने में भाव दीक्षा स्वीकार की। साध्वी जेठांजी द्वारा समय पर किया गया निर्णय और आचार्यश्री मघवागणी की कृपा तथा साध्वी बगतावरजी के पुरुषार्थ का सम्मिलित परिणाम था कि साध्वी जेठांजी भिक्षु-संघ में दीक्षित हो आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर हो गईं। सचमुच ही वे भाग्यशालिनी थी। उसके पश्चात जब उन्होंने मघवागणी के दर्शन किए, बहुत-बहुत आभार प्रकट किया था परम आनन्द से संयम में रमण करने लगी।

सं. 1938 में साध्वी बगतावरजी का चातुर्मास गोगुन्दा था। वे वहां से सवा सौ कोश (लगभग पौने तीन सौ कि. मी.) का विहार पर थली पहुंची और साध्वी जेठांजी को दीक्षित कर उनका सपना साकार किया। इस घटना-क्रम को प्रस्तुति देते हुए मघवागणी

ने लिखा है-

जद समणी बगतावर नै म्हैलाया त्यां पासे जेठां गुणधारी रे।
चरण-रयण वर लियो अमोलक मृगसर मास मझारी रे॥

साध्वी जेठांजी प्रकृति से भद्र, विनय-सम्पन्न तथा तपस्विनी थी। प्रत्येक चातुर्मास में थोकड़ा (चोला आदि तपस्या) करतीं। सरदार सती की दिवंगत तिथि पौष सुदि आठम, जयाचार्य की स्वर्गरोहण तिथि भादवा बदि बारस तथा गुलाब सती की स्वर्गवास तिथि 9 थीं, अत: तीनों की पुण्य तिथि के दिन वे प्राय: उपवास करती थी। उन्होंने तीन चातुर्मास मघवागणी के सान्निध्य में किए। सं. 1939 तथा 1944 का बीदासर में तथा 1945 का सरदारशहर में किया। उन तीन पावस में उन्होंने चौसठ उपवास तीन बेले, एक तेला, दो चोला तथा एक बार सात की तपस्या की।

सरदारशहर चातुर्मास में बुखार अधिक आने से वे व्याधि-ग्रस्त हो गई। फिर भी उन्होंने वेदना को हिम्मत और समभाव से सहन की। चातुर्मास के बाद आचार्यश्री मघवा के साथ विहार करती हुई वे बीदासर पहुंची। उसके पश्चात शारीरिक दुर्बलता के कारण वे विहार करने में अक्षम हो गईं। आचार्यश्री ने वहां से विहार कर दिया। ज्येष्ठ महीने में उन्हें दर्शन देने के लिए पुन: मघवागणी बीदासर पधारे। ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी के दिन अपनी क्षीण होती शरीर की क्षमता को देखकर साध्वी जेठांजी ने सागारी अनशन करने की इच्छा व्यक्त की। उस समय मघवागणी ने संथारा न करवाकर तपस्या करने का आदेश दिया। उन्होंने सप्तमी, अष्टमी, नवमी का तेला किया। साध्वियों ने पारणा करने का अत्यधिक आग्रह किया। पर उन्होंने अपना दृढ संकल्प व्यक्त करते हुए कहा- "आचार्यवर जब तक संथारा नहीं कराएंगे तब तक तपस्या चालू रखूंगी। मेरी तरफ से आप अनशन ही समझ लीजिए।"

तपस्या के 11वें दिन आषाढ कृष्णा 3 को आचार्यप्रवर ने साध्वी जेठांजी को सागारी संथारा कराया। चौथ के दिन एक प्रहर रात्रि बीत जाने पर अस्वस्थता अधिक बढ जाने पर साध्वीप्रमुखा नवलांजी ने तिविहार अनशन करा दिया। पंचमी के दिन प्रात: काल मघवागणी दर्शन देने पधारे और तब साध्वी जेठांजी ने निवेदन करते हुए कहा- मेरे भाव ऊर्ध्वतर हैं, आप मुझे चौविहार संथारा कराने की कृपा करें। गुरुदेव ने चौविहार अनशन की कठोरता बतलाते हुए पुन: तिविहार संथारा पचखा दिया। अनशन के संवाद ज्योंही प्रसाारित हुए आसपास के गांवों के लोग दर्शन करने लगे और विविध त्याग प्रत्याख्यान

करके साध्वीजी की उत्कट तप: साधना तथा अनशन की महिमा गाने लगे। उनके अनशन के उपलक्ष्य में चारतीर्थ में जो त्याग प्रत्याख्यान हुए सचमुच में उल्लेखनीय हैं-

साधुओं में

1. मुनि चुन्नीलालजी (281) ने उसी दिन से पांच दिनों तक तीनों आहार का त्याग कर दिया।
2. मुनि रामसुखजी (217) उदयचंदजी (291) रामचंदजी (255) तथा धर्मचन्दजी (289) ने जब तक अनशन सम्पन्न न हो तब तक पानी और रोटी के अतिरिक्त सब द्रव्य का प्रत्याख्यान कर दिया।
3. मुनि नंदरामजी (228) और मगनलालजी (294) ने छाछ रोटी और पानी के सिवाय सब द्रव्यों का त्याग किया।
4. मुनि गोविन्दजी (200) ने राब रोटी और पानी के अतिरिक्त सब द्रव्यों का परित्याग किया।
5. कई साधुओं ने छह विगय और कइयों ने पांच विगय का त्याग किया।
6. कई सन्तों ने रोटी साग और पानी के अतिरिक्त सब द्रव्यों का प्रत्याख्यान किया।

साध्वियों में

1. साध्वी ज्ञानांजी (421) ने जब तक अनशन सम्पन्न न हो तब तक तीनों आहार का त्याग किया और अनशन पूरा होने के भी दो दिन बाद पारणा किया।
2. साध्वी बरजूजी (361) मगदूजी (395 या 477) भीखांजी (552) ने राब रोटी और पानी के अतिरिक्त सब द्रव्यों का प्रत्याख्यान किया।
3. साध्वी तीजांजी (430) ने छाछ रोटी और पानी के सिवाय त्याग किया।
4. छोगांजी नाम की तीन साध्वियां वहां उपस्थित थीं। उन तीनों ने रोटी छमका और पानी के अतिरिक्त सभी द्रव्यों का त्याग किया।
5. साध्वी गंगाजी ने बाजरी और मोठ की रोटी दो साग तथा पानी के सिवाय सब

द्रव्यों का प्रत्याख्यान किया।

6. सतरह (17) साध्वियों ने छह विगय न खाने का संकल्प किया।

7. इक्कीस (21) साध्वियों ने पांच विगय परिहार किया।

8. लाडनूं स्थित साध्वी किस्तुरांजी (438) नवा शहर वासिनी ने अनशन पूर्ण न हो तब तक चारों आहारों का त्याग किया। आसाढ़ मास की उस भयंकर गर्मी में साध्वीजी ने बड़ी दृढ़ता से तृष्णा परीषह सहन कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

इसी प्रकार भाई बहिनों में बहुत अधिक वैराग्य वर्धक त्याग प्रत्याख्यान और तपस्याएं हुई। किसी ने चौविहार तपस्या की तो किसी ने नीवीं आयंबिल आदि तप किए। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि अनशन के उपलक्ष्य तपो योग की गंगा प्रवाहित हो गई।

स्वयं मघवागणी दिन में दो बार साध्वीजी को दर्शन देते तथा वैराग्यवर्धक आगम पद्य तथा गीत आदि सुनाते। साध्वीप्रमुखा नवलांजी आराधना सुनाकर आत्मालोचन करवातीं। आचार्यों के जीवन चरित तथा तपस्वी साधु साध्वियों की जीवन गाथा सुनाकर उनको मानसिक और आध्यात्मिक पाथेय प्रदान करतीं। साध्वी जेठांजी भी स्वाध्याय के समय प्रसन्नता का अनुभव करतीं। उनकी दृढता और भावधारा की विशुद्धि उत्तरोत्तर बढती रही। गर्मी की भीषण मौसम में उन्होंने तृषा परीषह विशेष रूप से समभाव से सहन किया। आषाढ बदि 11 (ग्यारस) को पूज्य मघवागणी ने उनको दर्शन देकर पूछा- क्या तुम्हारे सुख साता है? वे बोल नहीं पाई पर हाथ के संकेत से स्वीकृति दी। आचार्यवर के वापिस पधारते ही उनको श्वास कुछ टूट टूट कर आने लगा। स्थिति की गंभीरता को देख वहां उपस्थित साध्वी केशरजी (314) ने तत्काल चौविहार संथारा कराया। लगभग दस बारह मिनिट के पश्चात उनका काम सिद्ध हो गया।

इस प्रकार सं. 1945 आषाढ बदि (द्वितीय) को बीदासर में दस दिन की संलेखना, तेरह प्रहर का सागारी और छह दिन के तिविहारी संथारे में 19वें दिन साध्वीजी ने आराधक-पद प्राप्त किया।

साध्वी जेठांजी भाग्यशालिनी थी उन्हें तेरापंथ से इतर संघ में दीक्षित होने पर भी भिक्षु शासन में आ गई। आचार्यश्री की पूर्ण कृपा प्राप्त की। विशुद्ध आत्मसाधना करती हुई

तेजस्वी संथारा कर अपने जीवन को यशस्वी बनाया। उनके स्वर्गस्थ होने के पांच दिन बाद पंचमाचार्य मघवागणी ने उनके गुणों की उत्कीर्तना करते हुए एक गीत का निर्माण किया। जिसके 9 दोहे तथा 43 गाथाएं हैं।

4. साध्वी सुखांजी (चन्देरा) (513)

साध्वी सुखांजी का ससुराल चन्देरा (मेवाड़) के सिंघवी परिवार में था। उनके पति का नाम मोडजी था। साधु साध्वियों के सान्निध्य और उनकी त्याग तपमय जीवन शैली को देखकर पति–पत्नी दोनों के मन में वैराग्य भावना जागी। फिर सं. 1940 ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी को मुनि छजमलजी की सन्निधि में मुनिश्री पृथ्वीराजजी ने उदयपुर में मुनि मोडजी और साध्वी सुखांजी को दीक्षा दी। परिवार जनों ने दीक्षा महोत्सव बड़े धूमधाम और ठाटबाट से मनाया। उदयपुर महाराणा ने इस अवसर पर दीक्षित होने वाले दम्पती को अपनी ओर से धवल पछेवड़ी भेंट स्वरूप भेजी। साध्वी सुखांजी ने तपोमय जीवन जीकर तपस्विनी के रूप में तेरापंथ संघ में ख्याति अर्जित की। उनकी तपस्या–तालिका निम्न है –

उपवास	–	100	नौ	–	2
बेला	–	13	तेरह	–	1
तेला	–	10	इक्कीस	–	1
चोला	–	5	इकतीस	–	1
पंचोला	–	4	इकसठ	–	1

इसके अतिरिक्त 23 दिन की तपस्या की उसमें केवल एक दिन पानी पिया, और बाकी चौविहार तपस्या की। मासखमण तप उन्होंने पूज्य कालूगणी की पावन सन्निधि में लाड़नूं सं. 1970 के चातुर्मास में किया। उस समय चार साध्वियों – साध्वी किस्तुरांजी (454) साध्वी हीरांजी (479) साध्वी सुखांजी (513) साध्वी चांदाजी (635) ने एक साथ मासखमण तप कर उस चातुर्मास को ऐतिहासिक बनाया। आचार्यश्री तुलसी ने कालूयशोविलास इसका उल्लेख करते हुए लिखा है –

वृद्धिंगत तप त्याग, मासखमण महिमानिला।
हुया च्यार बड़भाग, सतियां में पुर लाडनूं।।

साध्वी सुखांजी ने अंतिम समय में 52 दिन का तिविहार तप किया। तिरपनवें दिन अष्टमाचार्यश्री कालूगणी उन्हें दर्शन देने पधारे। उन्होंने आचार्यश्री से निवेदन किया – गुरुदेव! मुझे तिरपनवें दिन का प्रत्याख्यान करवा दीजिए। आचार्यवर ने उनकी उत्कट भावना देखी और प्रत्याख्यान करवा दिया। उसी दिन सं. 1977 ज्येष्ठ शुक्ला 4 को लाड़नूं में उन्होंने परम समाधि के साथ अर्ध रात्रि के समय पण्डित मरण को प्राप्त किया। ऐसा पुण्य अवसर किसी भाग्यशाली को उपलब्ध होता है।

5. साध्वी चंपाजी (जयपुर) (524)

तेरापंथ धर्मसंघ का जन्म मेवाड़ में हुआ, नामकरण मारवाड़ में हुआ। तेरापंथ के प्रथम आचार्यश्री भिक्षु बीस वर्ष बाद सर्वप्रथम वर्तमान राजस्थान की राजधानी जयपुर पधारे। यद्यपि उस समय यह राजधानी नहीं थी। आचार्य भिक्षु का 1848 में प्रथम बार जयपुर पधारना हुआ। उस समय लाला हरचंदलालजी सींघड़ ने तेरापंथ दर्शन और मान्यता को बारीकी से समझा और तेरापंथी बने। उनके पुत्र का नाम ताराचंदजी था। ताराचंदजी के दो पुत्र थे – हीरालालजी और भैंरूलालजी। लाला भैंरूलालजी जयाचार्यश्री के अनन्य भक्त थे और विशिष्ट श्रावक थे। उन्होंने धर्मसंघ की प्रभावना में अच्छा योगदान दिया। हीरालालजी के पुत्र का नाम था चांदमलजी। उनका विवाह खेतड़ी राव राजा के कामदार की पुत्री चंपाजी के साथ हुआ। कामदारजी जाति से श्रीमाल थे, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे और विशाल भरापूरा परिवार था।

सं. 1928 में जयाचार्यश्री का चातुर्मास जयपुर में था। साधु–साध्वियों के सम्पर्क से तथा आचार्यवर के प्रवचन श्रवण से चम्पाजी के मन में साध्वी बनने की भावना जागी। उन्होंने पीहर और ससुराल – दोनों अभिभावकों के सामने अपनी वैराग्य भावना प्रस्तुत की। ससुराल पक्ष वालों में धार्मिक संस्कार गहरे थे, इसलिए वे सब दीक्षा में सहयोग देने के लिए तैयार थे पर पितृपक्ष वालों ने स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया। चम्पाजी के पिता दीक्षा की मनाही करने वालों में सबसे आगे थे। उस समय उनका परिवार झुंझुनू में रहता था। वे पुत्री को वहीं ले गए और उनपर संपूर्ण रूप से नियंत्रण कर लिया। दीक्षा का विचार बदलने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट दिए। एक दो नहीं, पूरे बारह वर्ष तक उन्होंने विविध प्रकार की तपस्या की और परीक्षा दी। फिर भी उन्हें पिता की आज्ञा नहीं मिली। जब उन्हें चारों ओर निराशा के बादल ही बादल दिखाई दिए, तब उनके मन में साहस का दीप जला। सारी विपरीत परिस्थितियों को झेलते–झेलते वे धैर्यवान बन गईं। सब तरह से प्रतिकूलता के वातावरण में भी उन्होंने अपने लक्ष्य को कभी ओझिल नहीं होने दिया। लक्ष्य की प्रतिबद्धता बारह वर्ष के अंतराल के बाद भी ज्यों की त्यों बनी हुई थी।

सं. 1940 में मघवागणी का चातुर्मास चुरु था। उस समय साहस कर चम्पांजी सावण महीने में दर्शन, उपासना करने गईं। लम्बे समय तक वहां रही और उपासना का अच्छा लाभ उठाया। वहां उन्होंने उपवास बेला तेला आदि तपस्या भी बहुत की, उससे शरीर दुर्बल हो गया। चातुर्मास के बाद मघवागणी ने जोधपुर की

ओर विहार किया। उन्होंने हिम्मत के साथ मार्गगत कठिनाईयों का मुकाबला किया और जोधपुर पहुंच गईं। वहां से वे एक बार जयपुर अपने ससुराल जाकर पति की अनुज्ञा लेकर पुनः आचार्यश्री मघवा की उपासना में पहुंच गईं। लेकिन उनके पास लिखित आज्ञा पत्र नहीं था।

दीक्षा स्वीकार करने के लिए एक विवाहिता महिला के लिए पति की आज्ञा तेरापंथ के विधानानुसार सर्वोपरि है। पितृपक्ष वालों की सहमति की संभावना खत्म हो चुकी थी। इसलिए उन्होंने जोधपुर के वरिष्ठ श्रावक बादरमलजी के पास अपनी बात पहुचाई ऐसी संभावना की जा सकती है। गुलाब सुजस में स्वयं मघवागणी लिखते हैं –

पछै आज्ञा लेई पति तणी जी, आया पुर जोधाण मांय।
भंडारीजी पति भणीजी कांई, लियो त्यां तुरंत बोलाय।।

भंडारीजी ने चांदमलजी को जोधपुर बुलाया और अपने बुद्धि कौशल का उपयोग कर उनसे आज्ञा–पत्र लिखवा लिया। चम्पाजी की अत्यन्त तीव्र भावना, चांदमलजी की दीक्षा की स्वीकृति, भंडारीजी का सहयोग और मघवागणी की कृपा ने मिलकर वर्षों से संचित भावना को साकार कर दिया। सं. 1941 बैशाख शुक्ला 12 को जोधपुर के भैंरूंबाग में मघवागणी के कर–कमलों से चम्पांजी ने दीक्षा स्वीकारी की। दीक्षा बड़ी धूमधाम से हुई।

साध्वी चम्पांजी मघवागणी के निर्देश से साध्वीप्रमुखा गुलाबांजी की शुभ सन्निधि में ज्ञान–ध्यान व तप त्याग से अपने जीवन को सार्थक बनाने लगी। उन्होंने गृहस्थावास में तपोमय जीवन जिया और दीक्षित होने के बाद भी वे अच्छी तपस्या करती रही। उनकी तपस्या की तालिका समग्रता से उपलब्ध नहीं है।

उनका स्वर्गवास सं. 1957 में हुआ, ऐसा उल्लेख मिलता है।

6. साध्वी (अब्भा) अभांजी (सरदारशहर) (525)

साध्वी अभांजी का जन्म सरदारशहर (थली) के बोथरा परिवार में सं. 1923 चैत्र कृष्णा चवदस को हुआ। उनके पिता का नाम बींजराजजी और माता का नाम चूनांजी था। अभांजी का विवाह छोटी वय में सरदारशहर निवासी केसरीचंदजी बरड़िया के पुत्र डूंगर-सीदासजी के साथ हुआ। जब वे पन्द्रह वर्ष की हुई, उनके पति का अकस्मात देहान्त हो गया। इस दु:खद घटना से अभांजी के सम्मुख संसार की नश्वरता का समग्र चित्र सामने आ गया। उनके मन में वैराग्य भावना जागृत हुई और वे दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो गई।

अभांजी के पीहर और ससुराल-

पीहर और ससुराल - दोनों पक्षों में भैक्षव गण से बहिर्भूत मुनि छोगजी चतुर्भुजजी की श्रद्धा थी, अत: संस्कारों से अभांजी का झुकाव उनकी ओर था। वे उनके पास ही दीक्षित होना चाहती थी। उन्होंने प्राथमिक तत्त्वज्ञान कंठस्थ किया और सामायिक, स्वाध्याय आदि में रत रहकर संयम की प्रतीक्षा करने लगी। अभांजी की छोटी सास (काकी सास) किस्तूरचन्दजी की धर्मपत्नी स्वभाव से बहुत ही सरल थीं। घर में उनका ही हुक्म चलता था। अभांजी की दीक्षा विषयक जब भी घर में चर्चा होती, वे अपनी मारवाड़ी भाषा में कहती- नां बाई नां, मैं म्हारी बहू नै बां (छोगजी-चतुर्भुजजी) में कोनी देऊं। देस्यूं तो मघजी (तेरापंथ) में देस्यूं।''

उन्हें कोई इसका कारण पूछता तो वे स्पष्ट शब्दों में कहती- 'बड़े घर को तो रंडापो ही चोखो। (विधवापन) ही अच्छा है। आं में देऊं तो म्हारी बहू सड़ सड़कर मरै, एकली रो धणी धोरी कुण?

यद्यपि श्रीमती कस्तूरचंदजी स्वयं तेरापंथ से बहिष्कृत सन्तों में आस्था रखती थी पर उनकी वस्तु स्थिति से वे अपरिचित नहीं थीं। वे अच्छी तरह जानती थी कि इनमें और तेरापंथ में क्या अंतर है? संघ की गरिमा संघ के साथ है। वे उस की तुलना में आ ही नहीं सकते, भले कितने ही इक्कट्ठे क्यों न हो जाए।

पर उस समय अभांजी का भावनात्मक लगाव उनके साथ ही था, इसलिए उनकी मानसिकता भी वहीं दीक्षित होने की थी। तेरापंथ के साथ उनके विचार भी मेल नहीं खाते थे। यदा कदा वे तेरापंथ की आलोचना भी कर लिया करती थी, फिर वे तेरापंथ में दीक्षित हो भी कैसे सकती थी? दूसरी ओर काकी सास के कथन को भी वे हवा में उड़ा नहीं

सकती थी, क्योंकि उसमें सच्चाई का दम था। इसलिए वे असमंजस की स्थिति में दिन व्यतीत करने लगी। तेरापंथ में दीक्षित होने का मन नहीं था, हरखूजी महाकंवरजी (गण से बहिर्भूत) के पास दीक्षा देने की काकी सास की मानसिकता नहीं थी- अत: समस्या ज्यों की त्यों खड़ी थी।

निर्णायकता का दीप जल उठा

इस बीच अभांजी की मौसी जो आड़सर की थी, वे सरदारशहर आईं। अभांजी ने अपनी भावना उनके सामने रखी और आदरणीय मौसी को अपनत्वभरे लहजे में समस्या का समाधान पूछा। उनकी मौसी प्रारंभ से ही तेरापंथ में आस्था रखने वाली थीं। उन्होंने अनुकूल अवसर देखकर भानजी को समझाना प्रारंभ किया। अभांजी का मान्यता भेद तो मिट गया पर मन-भेद वहीं का वहीं स्थिर था। मौसी ने सिद्धान्त और व्यवस्था के दर्पण में उनके भविष्य के प्रतिबिम्ब उभारे और बार-बार समझाने का प्रयत्न किया।

उन्होंने वैचारिक दृष्टि से चिन्तन करने का सुझाव देते हुए कहा- तुम दोनों जगह की आन्तरिक स्थिति की पहले जानकारी करो और फिर निर्णय करो कि किस सम्प्रदाय की सदस्यता स्वीकार करने से तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। अभांजी को मौसी की अनाग्रह चिन्तन शैली पसन्द आई और वे सलक्ष्य अन्तरंग में बैठकर दोनों की गंभीरता से स्थितियां जांचने-परखने लगी। दोनों संघों की यथार्थ जानकारी करने के पश्चात उन्हें लगा कि दीक्षा तो तेरापंथ में लेनी चाहिए। विचार संकल्प के ढांचे में ढ़ला और अपना निर्णय परिवारजनों के सामने प्रस्तुत करते हुए तेरापंथ में दीक्षा लेने की इच्छा बताई।

अभांजी का दीक्षा विषयक निर्णय सुन उनके काका-ससुर किस्तूरचंदजी बिल्कुल इन्कार हो गए। पर वे अपने संकल्प पर अडिग रही। अनेक उपाय काम में लेने के बावजूद जब उन्हें लगा कि ये तो टस से मस नहीं हो रही है तब एक शर्त रखते हुए कहा- यदि तुमको तेरापंथ में दीक्षित होना है तो पहले सागरमल को स्वस्थ कर दो, फिर सोच लेंगे। सागरमलजी किस्तूरचंदजी के पुत्र थे और उस समय केवल पांच वर्ष के थे। वे अचानक असाध्य रोग से ग्रसित हो गए। उस समय चिकित्सा के नाम पर केवल आयुर्वेदिक इलाज चलता था। सागरमलजी की चिकित्सा बाघजी मथेरण कर रहे थे। बाघजी मथेरण लिपिकार थे। उनका प्रमुख धंधा लिपि करना था। वे आगमों की सुन्दर प्रतिलिपि किया करते थे। साथ-साथ में वे आयुर्वेदिक चिकित्सा भी करते थे। सरदारशहर में सर्वप्रथम तेरापंथी बनने वाले मथेरण लोग थे। बाघजी ने अनुभव के आधार पर सागरमलजी स्वस्थ

नहीं हो पाए। उन्हें लगा, रोग बढ़ रहा है तब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा- यह बच्चा बचना मुश्किल है। घर वालों ने भी उसके जीने की आशा छोड़ दी। अभांजी के सामने समस्या नया परिवेश धारणकर मुंह बाए खड़ी थी। सागरमलजी के लिए जब वैद्य चिकित्सक भी कुछ नहीं कर पाए तो वे क्या करेगी?

अभांजी ने अपनी मौसी के मुख से आचार्य भिक्षु के नाम की महिमा सुन रखी थी। उस समस्या के सघन अन्धेरे में स्वामीजी के नाम की चमकती किरण दिखाई दी। उन्होंने भिक्षु नाम के जप का आलंबन लिया और वे सागरमलजी की सेवा में जुट गई। साधारण औषध का उपचार पहले से ही चालू था। उसके साथ विशिष्ट चिकित्सा आचार्य भिक्षु के जप की जुड़ गई। अभांजी यदि सागरमलजी को पानी या दूध भी पिलाती अथवा घासा आदि देती, खाना खिलाती तो सब पदार्थों को 'ॐ भिक्षु' इस मंत्र से भावित करती। इसके अतिरिक्त वे स्वयं रातदिन एक निष्ठा के साथ जप-अनुष्ठान करती। संयोग कहें या आस्था का चमत्कार, आचार्य भिक्षु के नाम स्मरण से सागरमलजी कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गए।

सागरमलजी की ज्यों-ज्यों स्वस्थता बढ़ी, अभांजी की दीक्षा भावना तीव्र से तीव्रतर होने लगी। एक दिन अवसर देखकर परिवार वालों के समक्ष उन्होंने अपनी भावना व्यक्त की और स्वीकृति मांगी। आश्चर्य की बात थी कि किस्तूरचंदजी वचनबद्ध होते हुए भी इन्कार कर गए। उन्होंने ताल ठोककर कहा- "म्हारै अठै साधुपणो लेणै री बात ही मत करया। मैं आज्ञा कोनी देवूं। इण उपरांत थांनै साधुपणो लेणो दुवै तो हरकंवरजी महाकंवरजी कनै ले ल्यो। म्है तो प्रभुपंथी हां तेरापंथ्या में दीक्षा कोनी देवां।"

दो टूक उत्तर सुनकर अभांजी का निराश होना स्वाभाविक था। तेरापंथ के प्रति उनकी आस्था सागरमलजी की स्वस्थता के पश्चात और पुष्ट हो गई कि वे अन्यत्र दीक्षा लेना ही नहीं चाहती थी। वे एक ही उपाय सोच रही थी कि दीक्षा की आज्ञा कैसे प्राप्त की जाएं। उन्होंने अपनी सारी बुद्धि और शक्ति एक दिशा में केन्द्रित कर दी।

गर्मी के दिन थे। वे गृहकार्य में संलग्न थीं। अचानक उनके दिमाग में एक विचार कौंधा। घर के एक कमरे में जहां खाद्य साामग्री रखते थे जिसे वे जसनाथजी की शाल कहते थे। उसमें घी से भरे कई घड़े रखे हुए थे। वे उसमें घुसी और दरवाजा बन्द कर लिया। गर्मी का मौसम होने से घी पिघला हुआ था। अभांजी ने आव देखा न ताव, एक घी का घड़ा फोड़ दिया। घृत बहता हुआ बाहर आया, उसे देखते ही घर वालों ने पूछा-

यह क्या कर रही हो? उन्होंने अन्दर से ही जबाव दिया-"साधुपणै री आज्ञा देद्यो, नहिं तो सगला घड़ा फोड़स्यूं" यह सुनते ही घर में खलबली-सी मच गई। बात घर के पुरुषों तक पहुंची। किस्तूचंदजी आए और उन्होंने अभांजी को समझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने एक भी नहीं सुनी और अपने संकल्प में दृढ़ रही। आखिर किस्तूरचन्दजी ने हार मानकर कहा- "बाहर आ जाओ, मेरी आज्ञा है।" यह सुनकर अभांजी बोली- इंयां किंयां मान लूं, आज्ञा रो कागद लिखकर सुगनचंदजी नै दे धो। वे सागरमलजी को सुगनचन्दजी कहते थी। उनके प्रति उनका गहरा विश्वास था।

राजस्थान की बहुएं उस समय अपनी सास से नहीं बोलती थी। श्वसुर से बोलना अपराध माना जाता था, ऐसी स्थिति में काका ससुर से बोलने का तो सवाल ही नहीं था। इसी परम्परा में जीने वाली अभांजी ने बड़ा साहस दिखाया। अन्त में विवश होकर घर वालों ने आज्ञा-पत्र लिखा। सभी भाइयों ने हस्ताक्षर कर सागरमलजी को सौंप दिया। उस पत्र की भाषा इस प्रकार है- "**मघजी में दीख्या ल्यो तो म्हारी आज्ञा है।**

दस्खत

केसरीचंद, किस्तूरचंद, आसकरण।"

सागरमलजी ने आज्ञा पत्र हाथ में लेकर अपनी भाभी से कहा- "आज्ञा रो कागद मनै दे दियो है, बारणो खोल द्यो।" अभांजी को विश्वास हो गया, क्योंकि सागरमलजी पर उनका सहज विश्वास था। दरवाजा खोलकर वे बाहर आईं तब सागरमलजी ने आज्ञा-पत्र उनके हाथ में दे दिया।

उस समय मुनि श्री कालूजी स्वामी (रेलमगरा) वहां प्रवास कर रहे थे। सरदारशहर को तेरापंथी बनाने में मुनिश्री कालूजी का महत्त्वपूर्ण योगदान है, यह इतिहास प्रसिद्ध बात है। अभांजी ने अपना आज्ञा-पत्र दिखाते हुए दीक्षा की भावना व्यक्त की। मुनिश्री ने सारी स्थिति की जानकारी पंचमाचार्य मघवागणी को निवेदन करवाई। मघवागणी के आदेशानुसार अभांजी की दीक्षा सरदारशहर में होनी निश्चित हुई।

बरड़िया परिवार अपने आपको तेरापंथ-विरोधी मानता था। इसलिए उस परिवार ने दीक्षा विषयक कोई उत्साह नहीं दिखाया, न कोई उत्सव मनाया और न समाज को मनाने दिया। अभांजी जब घर से दीक्षा के लिए विदा हुई तब परिवार वालों ने न तो विदाई दी और न तिलक लगाया। यहां तक कि वे सदा की भांति बाजरे की रोटी और फली का साग

खाकर शांत भाव से दीक्षा हेतु घर से विदा हो गई। एक मात्र सागरमलजी ने प्रणाम किया और उन्होंने अन्त:करण की पवित्रता के साथ आशीर्वाद देते हुए कहा- जीवता रहो और धर्म मे सेंठा रह्या।

उस दिन तेरापंथी लोगों ने मिलकर बरनोली के रूप में दीक्षा स्थल तक पहुंचाया। कहते हैं, शनिश्चरजी के मंदिर के पास एक रथ पर उन्हें बिठाया और वहां से बरनोली ताल में पहुंची। बरड़िया परिवार के सदस्य उनके साथ तो नहीं गए पर कौतुहलवश दीक्षा देखने ताल पहुंच गए। मुनिश्री कालूजी स्वामी और साध्वी नवलांजी वहां पहले से उपस्थित थीं। यद्यपि साध्वी नवलांजी उस समय चूरू में प्रवासित थी पर वे दीक्षा के लिए ही वहां आईं। दीक्षा का एक सहज आकर्षण होता है, इसलिए भीड़ का जमा होना स्वाभाविक था।

साध्वी अभांजी ने साधु साध्वियों को वन्दना की, ताल के पास बनी छतरी में कपड़े बदले और दीक्षा के लिए उपस्थित हो गईं। तभी किस्तूरचन्दजी अपने छह वर्षीय पुत्र सागरमलजी को लेकर वहां पहुंचे। उन्होंने एक थैली उनको देते हुए कहा- लो, मन चाहे उसे बांट दो। उस थेली में चांदी के रुपए, मखाना, ठेठी और खारक आदि थे। अभांजी समझदार थी। उन्होंने उनको आदर देते हुए एक मुट्ठी भरकर अपने भतीजे को तथा एक मुट्ठी सागरमलजी को देकर अनासक्त भाव से वापिस दे दी। सागरमलजी उसी दिन से तेरापंथी बन गए।

दीक्षा का वह दिन सं 1941 ज्येष्ठ कृष्णा 3 का था। मुनिश्री कालूजी ने साध्वी अभांजी को दीक्षा दी तथा साध्वी नवलांजी (282) ने उनका केशलोच किया। दीक्षित होने के बाद साधुचर्या के अनुरूप साधना करती रही और योग्यता का अच्छा विकास किया। सं. 1967 में अष्टमाचार्य कालूगणी ने साध्वी अभांजी को अग्रगण्या के रूप में वन्दना कराई। सं. 1945 से 1949 तक वे मघवागणी की सेवा में रही।

एक बार अष्टमाचार्यश्री कालूगणी राजगढ विराज रहे थे। साध्वी अभांजी भी उस समय सेवा में थी। वहां के श्रावक जगजीवनलालजी की पुत्री का विवाह हुआ था, अतः उन्होंने बची हुई मिठाई की भावना भाई। साध्वी अभांजी उनके घर गोचरी गई। उस दिन मिठाई की खपत न होने से उन्होंने एक लड्डू लिया। वहीं एक लड्डू किसी बहिन ने उनकी पछेवड़ी के पल्ले पर बांध दिया। ज्योहीं वे चलने लगी, उन्होंने पीछे देखा। लड्डू दिखाई दिया। तत्काल उस लड्डू को हाथ में लेकर उसी बर्तन में

डाल दिया, जिसमें लड्डू पड़े थे।

साध्वीजी ने आचार्यश्री को गोचरी मालूम की और पल्ले पर बांधने की घटना सुना दी। कालूगणी ने कहा – पल्ले पर बांधा वह अपना हो गया, वही लड्डू वापिस लाओ अन्यथा सबके सब लड्डू लेकर आओ।

कहते हैं कि पूज्य कालूगणी के निर्देशानुसार साध्वीजी ने पहले तो उसी लड्डू की खोज की पर पहचान के अभाव में आखिर सब लड्डू लेकर आना पड़ा।

उन्होंने बड़ी तपस्या नहीं की पर उपवास, बेले आदि तप करती ही रहती थी। उनकी तपस्या का विवरण इस प्रकार है–

उपवास	–	1088	चौले	–	3
बेले	–	60	पंचोले	–	3
तेले	–	12			

तपस्या के साथ उनकी सेवा भावना विशेष रूप से उल्लेखनीय थी। उन्हें आचार्यों की सेवा का अवसर भी उपलब्ध हुआ। सप्तमाचार्य डालगणी ने उनकी सेवा भावना का अंकन करते हुए पांच हजार गाथाएं बक्सीस की।

सं. 1996 चैत्र शुक्ला दूज के दिन साढे छह घंटे के अनशन में वे स्वर्गवासी हो गईं। उनका स्वर्गवास सरदारशहर में हुआ।। संयोग की बात थी कि उनके जन्म, विवाह, दीक्षा और पंडितमरण सब सरदारशहर की धरती पर हुए।

उन्होंने पचपन वर्ष तक संयम साधना की तथा पंचमाचार्य मघवागणी से लेकर नवमाचार्य तुलसीगणी का शासन काल देखने का सौभाग्य उन्हें उपलब्ध हुआ।

7. साध्वी रूपांजी (देशनोक) (535)

साध्वी रूपांजी देशनोक की पुत्री और देशनोक की ही बहू थी। पति के दिवंगत होने के बाद उन्हें वैराग्य हो गया। उनका पीहर नाहटा परिवार में था। सं. 1943 में मघवागणी का चातुर्मास उदयपुर में था। वे मघवागणी के चरणों में पहुंची और दीक्षा की प्रार्थना की। दीक्षा की स्वीकृति मिलने पर दीक्षा की तैयारियां होने लगी। मघवागणी मार्गशीर्ष कृष्णा एकम को विहारकर शहर के बाहर कविराज सांवलदानजी की बाड़ी में पधारे। वहां मिगसर बदि दूज को मध्याह्न में रूपांजी ने मघवागणी के हाथों संयम स्वीकार किया।

उनका दीक्षा महोत्सव बड़े ठाटबाट से मनाया गया। जुलूस में राजकीय लवाजमा–पालकी, हाथी–चामर आदि आए। अभिभावक जनों ने नारियल बांटे। पादरी साहब तथा डाक्टर आदि भी दीक्षा देखने आए। उस दीक्षा महोत्सव में हजारों लोग दर्शक रूप में उपस्थित थे। दीक्षा की अद्‌भुत अपूर्व छटा देखकर स्थानीय लोगों के हर्ष का पार नहीं रहा। संयोग की बात उसी दिन सन्ध्या समय उदयपुर के महाराणा फतेहसिंहजी ने मघवागणी के दर्शन किए और आध्यात्मिक उपदेश सुना। वे मघवागणी के वीतरागी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए।

8. साध्वी धन्नाजी (गोगुन्दा) (536)

तेरापंथ धर्मसंघ एक आचार्य केन्द्रित संघ है। संघ संचालन में जहां नियामक, नियंता एक मात्र आचार्य ही होते हैं, पर प्रशासनिक दायित्व के अतिरिक्त संघीय व्यवस्था में प्रतिभा सम्पन्न संघ निष्ठ साधु साध्वियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐसे सेवाभावी व्यक्तियों की तेरापंथ संघ में एक लम्बी शृंखला है। उनमे एक महान व्यक्तित्त्व है- मुनिश्री मगनलालजी। जिन्होंने छह आचार्यों के शासन काल देखें और अपनी क्षमताओं से संघ की सेवा की। आचार्य तुलसी ने उनको मंत्री के सम्बोधन से सम्बोधित किया। तेरापंथ धर्मसंघ में उनकी पहचान मंत्री मुनि के रूप में प्रख्यात है। उस पुण्यात्मा की मां का गौरव प्राप्त हुआ- साध्वी धन्नाजी को।

साध्वी धन्नाजी के पति का नाम पेमचन्दजी था। वे जाति से पोरवाल और गोत्र से भोलावत थे। उनके एक मात्र सुपुत्र थे - मुनि मगनलालजी। पेमचन्द मिरगी की भयंकर बीमारी से ग्रसित थे। एक बार वे उदयपुर गए। वहां हाथीपोल दरवाजे के बाहर चल रहे थे। अचानक मिरगी का दौरा पड़ा और वे पानी से भरी खाई में गिर पड़े। वहीं उनके प्राण पंखेरु उड़ गए। उस समय उनके पुत्र मगनलालजी की अवस्था मात्र सात-साल की थी। पति वियोग के दु:खद क्षणों में धन्नांजी के लिए एक मात्र पुत्र का ही आलम्बन था। यह घटना सं. 1933 है।

भोलावत परिवार कब तेरापंथी बना, यह अज्ञात है पर सं. 1908 माघ वदि 14 को तृतीयाचार्य रायचन्दजी का स्वर्गवास हुआ उस समय धन्नांजी वहां उपस्थित थी। उन्होंने ऋषिराय महाराज के दर्शन किए थे।

जब मगनलालजी 16,17 वर्ष के हुए तब माता और पुत्र दोनों के मन में संयम लेने की भावना जागृत हुई। उन दिनों पंचमाचार्य मघवागणी मेवाड़ में विहरण कर रहे थे। उन्होंने मघवागणी के दर्शन किए और वैराग्य भावना को प्रस्तुति देते हुए कहा- गुरुदेव! आप मेरी जन्मभूमि गोगुन्दा में चातुर्मास कराने की कृपा कराओ। मेरी प्रबल भावना है कि मैं आपके पास दीक्षा ग्रहण करुं। मेरी माता धन्नांजी और मेरा मित्र पन्नालाल भी दीक्षित होना चाहता है। आज आप मुझे शादी का त्याग करा दीजिए। आप गोगुन्दा पधारकर हमारी भावना को पूर्ण करें।

मघवागणी ने मगनजी की प्रार्थना पर अपने आपको केन्द्रित करते हुए कहा- जनकल्याण की दृष्टि से अभी उदयपुर में चातुर्मास करना ज्यादा उपयुक्त है। यहां उपकार

की अधिक संभावना है।

मगनलालजी ने अपनी मां की अवस्था बताते हुए साहस के साथ कहा- मेरी माता की अवस्था वृद्ध है। वे दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करना चाहती हैं पर अवस्था के कारण वजन नहीं उठा सकेंगी।

मघवागणी ने किशोर की सूझबूझ और हिम्मत पर स्वीकृति की छाप लगाते हुए कहा- इसमें कोई आपत्ति नहीं है उनसे जितना वजन उठेगा उठा लेगी। इस घटना क्रम को मगन चरित्र में प्रस्तुति देते हुए आचार्य तुलसी ने लिखा है -

मां धन्नां स्यूं बोझ न चालै, बूढापो हिम्मत स्यूं हालै।
श्रीमधवा-कांई आंट न आवै, जब लग जितनो उठै उठावै॥ मगन चरित्र पृ. 11

सं. 1943 का चातुर्मास उदयुपर सानन्द सम्पन्नकर मधवागणी गोगुन्दा पधारे। वहां सं. 1943 मिगसर शुक्ला 14 को आपने मुनि मगनलाल जी मुनि पन्नालालजी तथा साध्वी धन्नांजी - तीनों को एक साथ भागवती दीक्षा दी। दीक्षित होने के पश्चात साध्वी धन्नांजी ने दो चातुर्मास गुरु सान्निध्य में किए।

दीक्षित होने के पश्चात जब तक शरीर में ताकत रही वे विहार करती रहीं। अन्त में उन्हें लाडनूं सेवाकेन्द्र में स्थिरवासी रूप में रखा गया। जब वे लाडनूं में स्थिरवासी थी, तब एक दिन अष्टमाचार्य कालूगणी ने महती कृपाकर मगनलालजी स्वामी से कहा- मैं चाहता हूं साध्वी धन्नांजी की सेवा के लिए एक अतिरिक्त साध्वी को नियुक्त कर दूं। संघ हित में अपनी दूरदर्शी दृष्टि प्रस्तुत करते हुए मगनलालजी स्वामी ने कहा- नहीं महाराज! यह आपके लिए महंगी पड़ेगी। आज जो आप मेरी माता के लिए कृपाकर यह व्यवस्था कर देंगे, कल कोई दूसरा कहेगा तब उसकी माता के लिए भी रखना पड़ेगा। फिर यह समस्या उपस्थित हो जाएगी। अत: यहां जैसी विधि चल रही है, वैसी ही चलने दे।

लगभग बत्तीस वर्ष तक संयम यात्रा का निर्वहन कर सं. 1975 कार्तिक शुक्ला 3 को लाडनूं में साध्वी धन्नांजी दिवंगत हुई, पूज्य कालूगणी राजलदेसर में प्रवास कर रहे थे। मगनलालजी स्वामी भी उस समय वहीं थे। वे पंचमी समिति के लिए जंगल में गए हुए थे। वहां उनके कानों में अचानक शब्द सुनाई दिए- मत्थएण वंदामि मगनजी स्वामी। उन्होंने चारों ओर देखा, कोई दिखाई नहीं दिया। स्थान पर आकर उन्होंने अष्टमाचार्य कालूगणी को सारी बात निवेदन की। कालूगणी के मुखारविन्द से सहज भाव से शब्द निकले- लगता है धन्नांजी का स्वर्गवास हो गया। बाद में जब लाडनूं से संवाद मिले, बात स्वत: प्रमाणित हो गई।

9. साध्वी गुलाबांजी (सरदारशहर) (538)

साध्वी गुलाबांजी सरदारशहर निवासी नन्दलालजी नाहटा की सुपुत्री थी। नाबालिग अवस्था में सहज वैराग्यभाव पैदा हुआ और सं. 1943 माघ शुक्ला 6 को मुनि कालूजी (163) के हाथ से सरदारशहर में संयम रत्न प्राप्त किया। उनका प्रथम केशलुंचन साध्वी नवलांजी (182) बड़ा के हाथ से हुआ। साध्वी गुलाबांजी तीन साल तक मघवागणी के पावन सान्निध्य में रही। साध्वाचार के प्रति सजग रहती हुई ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सम्यक् आराधना के साथ ज्ञानार्जन करने लगी। उन्होंने अपनी योग्यता को उत्तरोत्तर विकसित किया। सं. 1974 में अष्टमाचार्य श्रीकालूगणी ने उनको अग्रगामी बनाया। मारवाड़ मेवाड़, थली, और हरियाणा में विहरण कर संघ की प्रभावना में अपना योगदान दिया।

साध्वी गुलाबांजी की पहचान उग्रतपस्विनी के रूप में होती है। उन्होंने उग्र तप कर विपुल निर्जरा की और संघ की नींव को गहराई दी। उन्होंने जो तपस्या की, वह इस प्रकार है –

उपवास	–	2419	छह	–	1
बेला	–	221	सात	–	1
तेला	–	41	आठ	–	3
चोला	–	17	पन्द्रह	–	1
पंचोला	–	9			

इसके अतिरिक्त लघुसिंह निष्क्रीडित तप करने वाली साध्वी समाज में ये प्रथम साध्वी थीं। यह दीक्षा क्रम के अनुसार कहा जा सकता है। इनसे पहले दीक्षित किसी भी साध्वी ने यह तप नहीं किया था। प्रत्येक परपाटी में छ मास और सात दिन लगते हैं।

सं. 1996 में उनका चातुर्मास मोमासर में था। वहां चातुर्मास से पूर्व आषाढ कृष्णा तेरस को उन्होंने लघुसिंह निष्क्रीडित तप की प्रथम परिपाटी प्रारंभ की। परिपाटी सम्पन्न होने में 20 दिन अवशेष रहे तब सं. 1996 कार्तिक शुक्ला बारस को उन्होंने समाधि मरण प्राप्त किया। आचार्यश्री मघवा के युग में दीक्षा ली और आचार्य श्री तुलसी के युग में वे दिवंगत हुई। पांच आचार्यों की सेवा का दुर्लभ अवसर उन्हें मिला। आचार्यश्री तुलसी ने उनके विषय में एक सोरठा कहा –

गुलाबां गुलजार, पहली पाटी परवरी।
उतरत उद्यम धार, चोलां में चलती रही।।

10. साध्वीश्री छोगांजी (छापर) (540)

तेरापंथ धर्मसंघ की आचार्य परम्परा के साथ उनकी माताओं का भी गौरवशाली इतिहास रहा है। दस आचार्यों में सात आचार्यों की माताओं का तेरापंथ में महनीय कर्तृत्व रहा है। मातृ-परम्परा की शृंखला में एक नाम है- मातुश्री छोगांजी।

मातुश्री छोगांजी का जन्म कोटासर गांव में हुआ। यह बीकानेर रियासत के अन्तर्गत था। उनके पिता का नाम नरसिंहदासजी लूणिया था। उनकी धर्मपत्नी गोगादेवी की कुक्षि से नौ संतान उत्पन्न हुई। छह पुत्र और तीन पुत्रियों में छोगांजी सबसे छोटी थी। छोगांजी का जन्म सं. 1901 आषाढ़ कृष्णाचौदस को हुआ। सौलह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह मूलचन्दजी चौपड़ा 'कोठारी' के साथ हुआ। वे बुधसिंहजी चौपड़ा 'कोठारी' के पुत्र थे। पांच भाई और तीन बहिनें थी। वे मूलत: बीदासर और परसनेऊ के बीच ढंढेरू गांव के निवासी थे। पर ढंढेरु गांव के ठाकुर के साथ विरोध होने से बुधसिंहजी का परिवार 1919 के सावन महीने में छापर आकर बस गया।

पुत्र रत्न की प्राप्ति :-

मातुश्री छोगांजी जब 33 वर्ष की युवावस्था को प्राप्त हुई तब उनकी कुक्षी से सं. 1933 फाल्गुन शुक्ला द्वितीया गुरुवार को छापर में एक पुत्र रत्न पैदा हुआ। उसका नाम पहले शोभाचन्द और बाद में कालू दिया गया।

बालक कालू मात्र साढा तीन महीने का हुआ। तब सं. 1934 द्वितीय जेठ कृष्णा द्वितीया को मूलचन्दजी का देहान्त हो गया। छोगांजी ने उस आघात को समता से सहन किया। और पुत्र के आलम्बन पर अपने जीवन को टिकाया। कालू जब पौने आठ महीने के हुए छोगांजी अपने पुत्र को लेकर छापर से कोटासर चली गई। सं. 1940 में उनका पितृ-परिवार कोटासर से श्रीडूंगरगढ में बस गया। माता छोगांजी अपने पुत्र के साथ वहीं रहने लगी। संवत 1941 में साध्वी मृगांजी ने श्रीडूंगरगढ़ चातुर्मास किया। उन्होंने छोगांजी को वैराग्य की प्रेरणा दी। माता छोगांजी के मानस में वैराग्य का अंकुर पहले से था ही, प्रेरणा का पानी पाकर वह हराभरा हो गया। यहीं से प्रारंभ हुआ माता छोगांजी के तत्त्वज्ञान सीखने का सिलसिला। ज्यों-ज्यों वैराग्य-भाव पुष्ट हुआ छोगांजी की दीक्षा भावना प्रबल बन गई। एक दिन इसी सन्दर्भ में अपने पुत्र कालू से उन्होंने कहा- कितना अच्छा हो हम दोनों मां-बेटा दीक्षा ले लें। यदि गृहस्थाश्रम में रहेंगे तो तुम्हें अर्थार्जन के लिए अन्यत्र जाना होगा। यह न मुझे सहन होगा और न तुझे। इसलिए मधवागणी की

चरण-शरण में जाकर आत्मकल्याण करें। इसके साथ हमें इस द्वन्द्व से भी मुक्ति मिल जाएगी।

यह सुन अष्टवर्षीय बालक कालू भीतर से आन्दोलित हुआ। उसने मां के कथन पर अपनी स्वीकारोक्ति की मुहर लगा दी। संयोग की बात थी कि उन्हीं छोगांजी की भानजी कानकुमारी का भावनात्मक झुकाव संयम की ओर हो रहा था। उन्होंने मौसी और भाई की वैराग्य भावना देख, सुनकर अपनी भावना को भी प्रस्तुति दी। संवत 1949 में मघवागणी का चातुर्मास सरदारशहर था। वहां छोगांजी, कालू और कानकंवरजी तीनों ने गुरुदेव के दर्शन किए और अपनी दीक्षा की भावना व्यक्त की।

दूरदर्शी चिन्तन के धनी मघवागणी ने पहली दृष्टि में ही कालू की विलक्षणता को पहचान लिया। होनहार बालक कालू के प्रति उनका मन आकृष्ट हो गया। इसलिए समय समय पर मघवागणी ने उनके वैराग्य को पुष्ट करने के लिए साधु-साध्वियों को छापर तथा श्रीडूंगरगढ भेजा। कालू के वैराग्यमय सद्संस्कारों की सुवास साधु साध्वियों के द्वारा आचार्य मघवा के पास पहुंची तब उनका ध्यान कालू पर और अधिक केन्द्रित हो गया। सरदारशहर में कुछ समय ठहरकर छोगांजी पुनः श्रीडूंगरगढ आ गई।

कुछ समय पश्चात छोगांजी अपने श्वसुर पक्ष के लोगों की दीक्षा के लिए स्वीकृति लेने के लिए छापर गई। उन्होंने अपनी जेठानी से दीक्षा की अनुमति चाही। कहते हैं कि जेठानी का स्वभाव कड़ा था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा- मैं कालू को दीक्षा नहीं लेने दूंगी, क्या मेरे देवर का घर उजाड़ना है? छोगांजी मौनभाव से सब कुछ सुनती रही। उन्होंने अनुभव किया- जेठानीजी के मन में मोह का आवेश है, इसलिए अभी कुछ भी कहूं तो ये प्रभावित होने वाली नहीं है।

छोगांजी बुद्धिकौशल की धनी थी। उन्होंने एक उपाय सोचा- उस समय छापर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बुलाकर उनके सामने अपनी समस्या प्रस्तुत की और जेठानी को समझाने की बात कही। गोपालजी नाहटा और गोविन्दरामजी नाहटा ने इस सन्दर्भ में प्रयत्न किया। छोगांजी की जेठानी ने लोगों के कहने पर अनमनेपन से दीक्षा की स्वीकृति दे दी।

मघवागणी का अनुग्रह :-

आचार्यश्री मघवागणी लाडनूं में प्रवास कर रहे थे। मातुश्री छोगांजी और कालू की दीक्षा के लिए स्वयं आचार्यवर जागरूक थे। उन्हें कालू के व्यक्तित्व में छिपी विराट

संभावनाएं दिखाई दे रही थी। इसलिए उनकी वैराग्य वृद्धि के लिए तथा उनको तत्त्व ज्ञान सिखाने के लिए सलक्ष्य साधु-साध्वियों को छापर और श्रीडूंगरगढ भेजा। लाडनूं से साध्वी गौरांजी, गौरखांजी और मानकंवरजी को मघवागणी ने छोगांजी को तत्त्वज्ञान सिखाने के उद्देश्य से भेजा। साध्वियां जिस दिन छापर पहुंची छोगांजी को तेज बुखार आ गया। जिससे श्वास प्रकोप बढ गया और शरीर में जकड़न-सी महसूस होने लगी। मध्याह्न में उनको बुखार कम हुआ तब वे साध्वियों के दर्शन करने गई। साध्वियों ने मघवागणी की कृपादृष्टि का उल्लेख करते हुए आने का उद्देश्य बताया। छोगांजी ने अपनी शारीरिक अस्वस्थता का उल्लेख करते हुए अपनी विवशता प्रकट की। साध्वियां पुनः लाडनूं चली गई। कुछ दिनों के बाद छोगांजी श्रीडूंगरगढ चली गई। वहां स्वास्थ्य लाभ कर आत्मा साधना में संलग्न हो गई।

इधर पूज्य मघवागणी सं. 1942 का जोधपुर और 1943 का उदयपुर चातुर्मास सम्पन्नकर पुनः थली में पधारे। मुनि आणंदरामजी श्रीडूंगरगढ़ पधारे। तब कालू तथा कालू की मां का वैराग्य परिपक्वता में परिणत हो चुका था और वय की दृष्टि से कालू को संयम का कल्प भी आ गया। माता छोगांजी ने मुनि आणंदरामजी के सम्मुख संयम में हो रहे विलम्ब की बात प्रकट करते हुए कहा- यदि आसोज महीने तक दीक्षा न आए तो उसके बाद घर की रोटी खाने का त्याग है।

सं. 1944 में मघवागणी का चातुर्मास बीदासर में था। वहां अकेली छोगांजी ने दर्शन किए। मघवागणी ने उनसे पूछा-व दोनों-भाई-बहिने कहां है? छोगांजी ने निवेदन किया- वे दोनों अभी श्रीडूंगरगढ में ही है। उनके पैर में नहरुआ (बाला) निकला है, इसलिए आ नहीं सके। मैं तीन दिन यहां उपासना कर पुनः डूंगरगढ जाऊंगी। उन दोनों को साथ लेकर शीघ्रातिशीघ्र संयम लेने के लिए आपके चरणों में पहुंचने का प्रयत्न करूंगी। कुछ दिन पश्चात पुत्र एवं अपनी भानजी को लेकर छोगांजी बीदासर पहुंच गई और आचार्यवर से दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। तब मघवागणी ने सं. 1944 आसोज शुक्ला तृतीया को माता छोगांजी, कालू और कानकुमारीजी को संयम प्रदान किया। दीक्षा स्थल था जीवनमलजी दूगड़ का नोहरा। ऐसा उल्लेख कालूगणी की ख्यात में मिलता है।

दीक्षा के पश्चात साध्वी छोगांजी, कानकुमारीजी महासती नवलांजी के सान्निध्य में साधना के क्षेत्र में प्रगति करती हुई, जागरुक जीवन जीने लगी। सं. 1941 से 1949 तक उन्होंने मघवागणी का पावन सान्निध्य प्राप्त किया। माघवगणी की तीन चातुर्मास में सेवा करने का सौभाग्य मिला। 1952 और 1954 के दो चातुर्मास में नवलसती की सेवा

की। 1955 में वे सप्तमाचार्य डालगणी की सेवा में थी तब शेषकाल में आचार्यश्री डालगणी ने साध्वी श्री कानकंवरजी का सिंघाड़ा किया और साध्वी छोगांजी भी उनके साथ विहरण करने लगी।

गुरु-जननी का गौरव :-

तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्यश्री, ऋषिराय, जयाचार्य, मघवागणी डालगणी, कालूगणी, तुलसीगणी तथा आचार्य महाप्रज्ञ जी की माताओं ने संयमश्री का वरण कर गुरुजननी का गौरव प्राप्त किया पर अपने सुत को आचार्यपद की महनीयता से मण्डित दो माताओं ने ही देखा। उनमें प्रथम है मातुश्री छोगा। सं. 1966 भादवा शुक्ला 12 सप्तमाचार्य डालगणी का महाप्रयाण हुआ। उनके द्वारा प्रच्छन्न रूप से लिखित युवाचार्य पत्र में मुनि कालू का नाम सुनकर मातुश्री छोगांजी और भगिनी कानकंवरजी को प्रसन्नता हुई वह अनिर्वचनीय है। उस समय मातुश्री बीकानेर में चातुर्मास कर रही थी। चातुर्मास के पश्चात् मार्गशीर्ष कृष्णा तेरस को सुजानगढ में मातुश्री ने अपने पुत्र के आचार्य रूप में पहली बार दर्शन किए। मातुश्री ने अपने नन्दन को आचार्य रूप में देखकर अपूर्व आनन्द का अनुभव किया। उन अद्‌भुत क्षणों में वन्दना एवं सुखपूच्छा कर वे अनिमिष गुरुदेव के मुखारविन्द को देखती रही। कालूगणी के हृदय में मातुश्री के आगमन पर आदर सहित जो आत्मीय भाव उभरा दर्शक देख देखकर धन्य बन गए। उन आह्लादकारी क्षणों को आंखों का विषय बनाकर सबको लगा- देवानन्दा और भगवान महावीर का दृश्य साकार हो रहा है। मातुश्री तथा साध्वी कानकंवरजी की अगवानी करने के लिए महासती जेठांजी पूरे साध्वी परिवार के साथ पधारी।

उन दुर्लभ क्षणों में आचार्यवर ने चतुर्विध धर्मसंघ के समक्ष मातुश्री केा सम्मानित करते हुए सारे कामकाज, बोझभार तथा आहार विभाग से मुक्त किया तथा चार साध्वियों - 'साध्वी भत्तुजी (684), मुक्खांजी (685) प्रतापांजी (712) और खूमांजी' को मातुश्री की सेवा में उसी दिन नियुक्त किया। साध्वी खूंमाजी अन्त समय तक माजी महाराज की सेवा में सर्वात्मना समर्पित रही। उसी दिन मध्याह्न के समय पूज्य कालूगणी ने साध्वी कानकंवरजी को कामकाज और बोझभार की बक्सीस की। सं. 1967 से 1971 तक पांच चातुर्मास मातुश्री ने आचार्यवर के साथ किए।

बीदासर में स्थिरवास :-

सं. 1971 का कालूगणी का चातुर्मास सुजानगढ था। वहां से आचार्यवर मेवाड़

मारवाड़ की ओर पधारने वाले थे ! मातुश्री की स्थिति विहार करने की नहीं थी। बीदासर के समयज्ञ श्रावक शोभाचन्दजी बैंगाणी ने समुचित अवसर देखकर मातुश्री छोगांजी को बीदासर में रखाने के लिए निवेदन किया। आचार्यवर ने शोभाचन्दजी की अर्ज पर गौर करते हुए मातुश्री छोगांजी को बीदासर में स्थिरवास करने का आदेश दे दिया। इस महती कृपा को प्राप्तकर बीदासर की जनता धन्यता का अनुभव करने लगी। सं. 1971 पौषकृष्णा बारस को मातुश्री छोगांजी ने स्थायी प्रवास के लिए बीदासर में प्रवेश किया। प्रथम चातुर्मास पंचायती नोहरे में किया। उस समय उनके साथ नौ साध्वियां थी।

मातुश्री छोगांजी के प्रवास से बीदासर तीर्थधाम बन गया। स्वयं आचार्यश्री कालूगणी जब अवसर होता, समय निकालकर मातुश्री को उपासना कराने पधारते। प्रतिवर्ष एक दो तीन चार बार तक बीदासर पधारना हो जाता। सं. 1976, 1982 और 1988 के चातुर्मास इसी उद्देश्य से किए।

साधु-साध्वियों का आवागमन भी प्राय: होता रहता गांव-गांव के श्रद्धालु भाई-बहिनों का भी दर्शनार्थ आने का तांता सा लगा रहता। बीदासर के लोगों में मातुश्री के प्रति अनन्य भक्ति थी। गंगा-सी पवित्र तपोमूर्ति मातुश्री के मुख से निकला हर शब्द बीदासरवासियों के लिए करणीय होता।

अद्‌भुत तप: साधना :-

मातुश्री छोगांजी उच्चकोटि की तपस्विनी साध्वी थी। साधुचर्या में अनवरत जागरुक रहती हुई उन्होंने उग्र तपस्या में स्वयं को नियोजित रखने का प्रयास किया। सचमुच तपस्या का सम्पूर्ण विवरण रोमांचित करने वाला है। एक बार मातुश्री छोगांजी की 1996 तक तपस्या के सन्दर्भ में प्रस्तुति देते हुए मुनिश्री सोहनलालजी चूरु ने अपनी कविता में कहा -

एक गुणतीस, उगणीस, सतरा अरु सोला,
चवदा, इग्यारा दोय, छव का एक जूटज्या।
इग्यारै पंचोला, चोला चवदै, पिच्यासी तेला,
पनरै-सौ अन्दाज बेला सुण्या दुख खूटज्या।
अड़तीस सौ ऊपर किया है उपवास सती,
जाको नाम लिया सारा कर्मबंध टूटज्या।
'सोहन' भनंत छोगां मात की तपस्या देख,

बड़ा-बड़ा मूंछाला कै धूजणी-सी छूटज्या॥

मातुश्री की समग्र तपस्या आंकड़ों में निम्नलिखित हैं-					
उपवास	—	3914	ग्यारह	—	2
बेला	—	1586	चवदह	—	1
तेला	—	86	सोलह	—	1
चोला	—	16	सतरह	—	1
पंचोला	—	1	उन्नीस	—	1
छह	—	1	उनतीस	—	1

समूची तपस्या सात हजार पांच सौ नब्बे दिन की हुई। जिसके 21 वर्ष एक महीना होता है।

सं. 1977 के जेठ महीने से मातुश्री ने एकान्तर उपवास प्रारंभ किए, जो बीस वर्ष लम्बी अवधि तक अनवरत चले। एकान्तर तपस्या के साथ-साथ बेले-तेले भी करती रहती।

सं. 1986 से माजी महाराज ने सेलड़ी - वस्तु - (अर्थात् जिस खाद्य पदार्थ में गुड़, शक्कर, चीनी आदि डाले जाते हैं) खाने का त्याग कर दिया। औषध लेने का उनको त्याग था। जीवन भर के लिए सत्तावीस द्रव्य खाद्य पदार्थ रखे। एक दिन मे ग्यारह द्रव्यों से अधिक नहीं खाती। सताईस द्रव्य इस प्रकार हैं -

1. पानी
2. रोटी बाजरी की
3. मैथी पापड़ का साग
4. बड़ी का साग
5. किसमिस का साग
6. अंगूर का साग
7. अमरूद का साग
8. तोरु का साग
9. मतीरे का साग

10. काकड़िया का साग
11. काचर का साग
12. दही
13. घृत
14. नमक (अचित्त)
15. मिर्च पानी की
16. खिचड़ा
17. खिचड़ी
18. कूर धान
19. आम की फांक
20. आम-रस
21. चीलड़ा
22. शकरकंदी
23. पापड़
24. कढी
25. राबड़ी (डोए की)
26. राबड़ी (आटे की)
27. सेंघटी घाट

पारणे में ठंडा खिचड़ा एवं दही का उपयोग करती तथा पारणे के दिन नियमित रूप से दो प्रहर करती।

तपस्या के साथ आगम स्वाध्याय, जप का अदभुत संगम था। जब भी देखो वे जप-योग में तल्लीन दिखाई देती।

इंगित की आराधना :-

प्रसंग सुजानगढ़ का है। मांजी महाराज ने जब बीकानेर चातुर्मास कर प्रथम बार दर्शन किए, प्रसंगोपात्त कालूगणी ने पूछा- छोगांजी! विहार में कैसे रहा? कष्ट तो नहीं

हुआ? मातुश्री ने सहजता से कहा- अन्नदाता! विहार से पहले थोड़ा अफीम ले लेती हूं जिससे थकान अनुभव नहीं होता।

कालूगणी ने साश्चर्य कहा- क्या अफीम लेती हो? छोगाजी को लगा अफीम लेना गुरुदेव को अच्छा नहीं लगा। तत्काल निवेदन किया- अब कभी नहीं लूंगी। इस संकल्प के पश्चात मातुश्री ने कभी अफीम का उपयोग नहीं किया।

मातृ उपकार की स्मृति :-

सं. 1967 में कालूगणी का मर्यादा महोत्सव राजलदेसर था। उस समय मातुश्री की आंखों में वेदना हुई। आचार्यवर ने आंखों के इलाज के लिए मातुश्री को लाडनूं भेजा। साथ में साध्वी कानकंवरजी आदि ग्यारह साध्वियां थी। मातुश्री के औषधोपचार चालू था। आचार्यवर राजलदेसर से बीदासर चाड़वास छापर होते हुए सुजानगढ़ पहुंचे। गुरुदेव ने मातृ उपकार की स्मृति कर तत्काल लाडनूं जाने का निर्णय लिया और वहां से प्रस्थान कर दिया। सब कुछ इतना अप्रत्याशित हुआ कि सुजानगढवासियों को विहार की जानकारी नहीं मिली और लाडनूं वालों को आचार्यवर के आगमन की सूचना नहीं मिली। यहां तक कि कई सन्तों को भी ज्ञात नहीं हो सका। जब लाडनूं के ठिकाणे में खम्मा घणी..... के बाढ स्वर गुंजायमान हुए सब आश्चर्य चकित हो गए। मातुश्री को दर्शन दिए उस समय सूर्यास्त होने में मात्र कुछ मिनिट अवशेष था। मातुश्री के मानस में आनन्द का सागर मचलने लगा।

सं. 1968 के बीदासर चातुर्मास में नेत्र वेदना प्रगाढ़ हो गई। उपचार एक भी सफल नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप मातुश्री की नेत्र ज्योति सदा के लिए चली गई। ऐसी स्थिति में स्वयं कालूगणी एक दिन में तीन बार उन्हें दर्शन देने पधारते, वैराग्य वर्धक गीत सुनाते। आचार्यवर की अमृतमयी वाणी सुन भयंकर वेदना के क्षणों में समाधि का अनुभव होता। गुरुदेव जब भी वापस अपने ठिकाणे में पधारते, उस समय प्रायः यह कहते - छोगांजी! अब म्है जा रह्या हां।

निर्भीकता :-

एक बार मंत्रीमुनि और आचार्यवर के बीच प्रसंग चला कि अब साध्वी कानकंवरजी को तो अलग बहिर्विहार में भेजा जा सकता है। इसी प्रसंग को कालूगणी ने एक दिन मातुश्री के सामने प्रस्तुत करते हुए कहा- छोगांजी! अब तुम तो यहीं (बीदासर) रहोगी,

कानकंवरजी को अलग भेज दें तो.....। माजी महाराज ने अपनी ओजस्वी वाणी में कहा- गुरुदेव! कानकंवरजी को अलग भेज दें, यह कैसे हो सकता है? वह ग्यारह वर्ष तो मुझे लिए-लिए घूमी और अब उसको अलग भेजें तो पहले छोगांजी जाएंगी और फिर कानकंवरजी.....। मातुश्री का निर्भीक और स्पष्ट उत्तर सुनकर स्वयं आचार्यवर और मंत्री मुनि एक दूसरे को देख मुस्कराने लगे।

जब भक्ति की विजय हुई :-

आचार्यश्री कालूगणी उस समय बीदासर के आस-पास के क्षेत्रों में विहरण कर रहे थे। साध्वी कानकंवरजी ने मातुश्री से निवेदन किया- यदि आप धीरे-धीरे विहार कर सकें तो आस-पास के क्षेत्रों में आप आचार्यवर की सेवा कर सकेंगे। सुनते ही माजी महाराज के मन में प्रसन्नता व्याप्त हो गई। उन्होंने आचार्यवर से निवेदन किया- यदि आप कृपाकर मुझे साथ में ले जाएं तो मेरी सेवा हो जाएगी।

आचार्यश्री ने सहजता से कहा- बीदासर वाले जाने नहीं देंगे। मातुश्री ने सरलता से कहा- मैं बीदासर वासियों को ज्ञात नहीं होने दूंगी। आचार्यवर विहारकर चाड़वास पधार गए। मातुश्री ने अवसर देखकर साध्वी-कानकंवरजी के साथ बेनाथा की ओर विहार कर दिया। वहां के श्रद्धानिष्ठ श्रावक शोभाचन्दजी बैंगाणी को ज्योंही विहार के विषय में जानकारी मिली। वे उसी क्षण कालूगणी के चाड़वास दर्शन करने पहुंचे और बोले- आपने यह क्या किया। आपने माजी महाराज को विहार करा दिया, मेरे मन पर गहरा आघात लगा है। इस चोट से मुझे जैसा दु:ख हुआ हणुतमल की मां (मेरी धर्मपत्नी) की मृत्यु पर भी वैसा दु:ख नहीं हुआ।

कालूगणी ने विश्वास की भाषा में कहा- शोभाचन्दजी! मैं तो इस सन्दर्भ में कुछ नहीं कह सकता और न मेरा कोई आदेश है। तुम जानो और छोगांजी जाने।

शोभाचन्दजी वहां से सीधे बेनाथा पहुंचे और बोले- साध्वी कानकंवरजी! यह सब आपका काम है। माजी महाराज तो सरल है। अब मैं इस दरवाजे के बीच में सो रहा हूं। मेरी छाती पर पैर धरकर पधारना हो तो पधार जाओ अन्यथा वापिस बीदासर चलना होगा। फरमाओ आपको किधर जाना है?

कोमल हृदया मातुश्री भक्त की अन्तर पीड़ा से पिघल उठी और भक्ति के सामने भगवान की सेवा का लोभ संवरण कर शोभांचदजी की भक्ति को बहुमान दिया। मातुश्री

ने वापस बीदासर की ओर विहार कर दिया।

बीदासर मातुश्री के पावन सान्निध्य से तीर्थस्थल बन गया। जो भी साधु-साध्वियां थली में विहरण करते मातुश्री के दर्शन करने अवश्य जाते। मातुश्री भी अहो भाव और वात्सल्य भाव के साथ आगन्तुकों की भक्ति करती और उन्हें आदर बहुमान देती। साधु-साध्वियों को भी मातृहृदया के वात्सल्यपूरित स्वागत से जो आत्मतोष मिलता अद्‌भुत था। एक बार कालूगणी ने मातुश्री को सम्बोधित कर कहा- ''अपने धर्मसंघ की यह परम्परा है कि दूसरे गांव से विहार कर आने वाले साधु-साध्वियों की एक दिन भक्ति की जाए। उसके बाद आहार, पानी आदि लाकर नहीं देना।'' ज्ञातव्य है कि मातुश्री बीदासर आने वाले साधुओं की एक से अधिक दिन भक्ति करवाती थी।

मातुश्री ने विनयपूर्वक बद्धांजलि निवेदन किया- अन्नदाता! मैं क्या करुं? आगन्तुक साधु साध्वियों को खिलाए बिना मेरे गले नहीं उतरता। अतः उन्हें खिलाए-पिलाए बिना मैं तो नहीं खा सकती। मातुश्री की वात्सल्यपूर्ण वाणी सुन मुस्कराते हुए गुरुदेव ने कहा- तुम्हारा जैसा मन हो वैसा करो।

जन्मभूमि से बढ़कर जननी

सं. 1982 का चातुर्मास आचार्य श्री कालूगणी छापर में करना चाहते थे। लेकिन मातुश्री ने इतना अधिक आग्रह भरा निवेदन किया कि प्रार्थना करते-करते उन्होंने अपना शिर धरती पर टिका दिया और बोली-प्रभो! यह शिर जमीन से तभी उठेगा जब आप मुझे बीदासर चातुर्मास का वचन देंगे। यद्यपि कालूगणी की मानसिकता जन्मभूमि की थी पर दूसरी ओर जननी की हार्दिक आग्रह भरी विनती थी। जननी को जन्मभूमि से अधिक गौरव प्रदान करते हुए बंयासी का चातुर्मास बीदासर फरमा दिया।

दृष्टि की आराधना-

सं. 1971 में कालूगणी मेवाड़ में विचरण कर रहे थे। वहां छापर के श्रावकों का एक दल पहुंचा। उन्होंने निवेदन किया- छापर में साधु या साध्वियों का चातुर्मास कराने की कृपा करें। कालूगणी ने कहा-मेरे पास तो साधु साध्वियों की सुलभता नहीं है। यदि चौमासा लेना ही है तो छोगांजी से ले लो। उनके पास जो साध्वियों है उनमें से चौमासा करने के लिए भेज दें तो .....। कालूगणी मातुश्री को आदेश की भाषा में सामान्यतया नहीं फरमाते थे। वे मातुश्री का विशेष सम्मान रखते थे। मातुश्री स्वयं विज्ञ थी और थोड़ा बहुत

भी संकेत मिल जाता, उस कार्य को पूरा करने का प्रयत्न करतीं। छापर श्रावक समाज का इशारा मिलते ही साध्वी पूनांजी बीदासर आदि 5 साध्वियों को छापर चातुर्मास करने भेज दिया।

इसी तरह एक बार आचार्य तुलसी की दृष्टि की आराधना करते हुए मातुश्री ने साध्वी बालूजी राजगढ़ को मोमासर चातुर्मास के लिए भेजा।

वाक कौशल-

घटना बीदासर की है। आचार्य श्री कालूगणी बीदासर में प्रवास कर कर रहे थे। मातुश्री गुरुदेव की उपासना कर रही थी। मुनि मगनलालजी ने मातुश्री को सम्बोधित कर कहा- छोगांजी! महाराज (कालूगणी) के पैर कमजोर रह गए क्योंकि कालूगणी को बचपन में खेलने कूदने नहीं दिया। मातुश्री ने कहा-हां आपका कथन सही है। तभी कालूगणी मगनमुनि के कथन को पुष्ट हुए बोले- छोगांजी! हमारे पैर इसीलिए कमजोर रह गए।

मातुश्री ने वाक कौशल का परिचय देते हुए पूछा- मगनलालजी स्वामी! आप तो मेवाड़ के हैं, पहाड़ों में खूब घूमे हैं, फिर आपके घुटनों में दर्द क्यों? मातुश्री छोगांजी से सटीक उत्तर सुनकर आचार्यश्री कालूगणी और मुनिश्री मगनलालजी मुस्कराने लगे।

खानपान के सन्दर्भ में उस युग में घी का उपयोग बहुप्रचलित था। यहां तक कि सुस्वास्थ्य का राज घी को माना जाता था। मातुश्री छोगांजी का भी यही विश्वास था। वे प्रसंग उपस्थित होने पर आचार्यवर से भी निवेदन करती रहती कि आपको घी का सेवन करना चाहिए। पूज्य कालूगणी इस निवेदन को मां का मोह समझकर टाल देते थे। जब कि मातुश्री का निवेदन विशुद्ध स्वास्थ्य की दृष्टि से था। एक दिन उन्होंने अमोलकचन्दजी बैंगाणी के सामने यही बात रखने की सोची- अमोलकचन्दजी बैंगाणी बीदासर के सुप्रसिद्ध श्रावक शोभाचन्दजी के पुत्र थे। वे बचपन से ही कालूगणी के मित्र जैसे थे। उनको कालूगणी की सहज कृपा प्राप्त थी। कालूगणी उनकी बात प्रायः मान लेते थे।

मातुश्री ने बैंगाणीजी को सम्बोधित कर कहा- अमोलक! महाराज (कालूगणी) भोजन में घी का उपयोग बिलकुल नहीं करते, मुझे लगता है, थोड़ा-थोड़ा घी खाना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। यदि यह बात कालूगणी के मन में तू जचा दें तो अच्छा हो जाए। मैंने तो कई बार यह निवेदन कर दिया पर मेरी तो सुनते ही नहीं है।

अमोलकचंदजी स्वयं आसोज और चैत्र मास में सलक्ष्य घी का सेवन करते थे, इसलिए वे मातुश्री के बात से कुछ अंशों में सहमत भी थे। अत: उन्होंने पूज्य कालुगणी को समय देखकर एक दिन निवेदन किया। पूरी बात सुनकर कालूगणी ने प्रतिप्रश्न करते हुए कहा- क्या तू लेता है?

अमोलकचन्दजी ने अनुभव प्रस्तुत करते हुए कहा- हां मैं लेता हूँ। आसोज और चैत्र में घी का सेवन वस्तुत: ही लाभप्रद है। मातुश्री छोगांजी भी वहीं बैठी थी। आचार्यवर ने उनको सम्बोधित कर कहा- छोगांजी! तुम बार-बार घी लेने के लिए कहती हो, आज ले आना।

माजी महाराज ने चुटकी लेते हुए कहा- अन्नदाता! मेरी बात कौन मानता है। आज जिसके निवेदन को आपने स्वीकार किया है, वह भी मुझे ज्ञात है। सटीक उत्तर सुन वहां बैठे सभी व्यक्तियों के चेहरों पर मुस्कान उतर आई।

डॉक्टर क्यों मरते हैं-

एक बार मातुश्री ने इस संदर्भ में मुनिश्री मगनालालजी से कहा- मुनिश्री! आप महाराज (कालूगणी) को आहार (भोजन) कराते हैं। सर्दी की मौसम में कभी-कभी घी परोसा करो।

मुनिश्री मगनलालजी ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा- घी खाना मुझे पसन्द नहीं है और मैं घी खाने के पक्ष में भी नहीं हूँ।

मातुश्री छोगांजी ने कहा- लगता है आपको डॉक्टरों ने भरमा रखा है, इसलिए आप महाराज को घी कभी आंखों से भी नहीं दिखाते।

मुनि मगनलालजी तत्काल बोले- डॉक्टर क्या कम है, एक बार तो वे मरे हुए को भी जिन्दा कर देते हैं।

मातुश्री ने अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा- फिर डॉक्टर क्यों मरते हैं? सुनते ही एक बार वातावरण विनोदमय बन गया।

बहुमान के क्षण-

अष्टमाचार्य कालूगणी अमोलकचंदजी बैंगाणी की हवेली की ऊपरी मंजिल में

विराज रहे थे। मातुश्री गुरुदेव की सेवा के लिए वैसे तो मकान की ऊपरी मंजिल में चढ़ती थी पर विश्राम के लिए वे नीचे आ जाती। एक दिन मातुश्री विश्राम हेतु नीचे आई हुई थी, अचानक कालूगणी अकेले ही नीचे पधार गए और पूछा-छोगांजी! सुखसाता है?

माजी महाराज के पास में बैठी साध्वी खूमांजी आचार्यश्री की आवाज कानों से टकराते ही चौंकी। उन्होंने मुड़कर देखा तो अकेले कालूगणी खड़े थे। उन्होंने बद्धांजलि निवेदन किया- गुरुदेव! आप अकेले .....? आचार्यश्री ने सहजता से कहा-"इंयां ही माजी नै दर्शण देण नै आग्या।"

दूसरा प्रसंग भी बीदासर का है और अमोलचन्दजी बैंगाजी की हवेली से सम्बन्धित है। उन दिनों मध्याह्न में हाजरी का आयोजन किया जाता था। हाजरी का लोगों में विशेष आकर्षण रहता और उपस्थिति अधिक होती थी। इसलिए आचार्यवर हाजरी कार्यक्रम के लिए पंचायती के नोहरे में पधारते थे। ज्येष्ठ का महीना था और उस दिन गर्मी अत्यधिक थी, ज्योहीं कालूगणी हाजरी के लिए पधारने लगे मातुश्री का ममत्व जाग उठा। उन्होंने ममता संवलित स्वरों में कहा- गुरुदेव! जेठ की दुपहरी में कहां पधारेंगे? धरती और आसमान दोनों अंगारे उगल रहे हैं, यहीं हाजरी हो जाएगी?

आचार्यवर ने हसित मुद्रा में कहा- छोगांजी! वहां जाना जरूरी है अन्यथा तुम्हारे बीदासर के लोग नाराज हो जाएंगे।

सुनते ही मातुश्री सिंहणी- सी दहाड़ती हुई बोली- जो नाराज होते हैं उनको बैठे रहने दो। मैं आपको इस चिलचिलाती धूप में नहीं जाने दूंगी। आचार्यश्री मातुश्री के वचनों का उल्लंघन कैसे कर सकते थे। वहीं हाजरी का कार्यक्रम किया।

सं. 1990 का चातुर्मास सुजानगढ़ कर आचार्यवर ने मातुश्री को बीदासर में दर्शन दिए और मंगल आशीर्वाद प्राप्तकर मारवाड़ मेवाड़ के लिए प्रस्थान किया। उसी यात्रा में जोधपुर, उदयपुर चातुर्मास सानन्द सम्पन्न कर मालवा पधारे। पुनः मेवाड़ पधारते समय बाएं कर की अंगुली में व्रण हो गया। एक छोटी फुणसी ने गजब ढहाया और पूज्य कालूगणी के सम्पूर्ण शरीर को व्याधिग्रस्त कर दिया।

यद्यपि कालूगणी का अपना एक संजोया सपना था। कि जब मैं साठ वर्ष की अवस्था प्राप्त करूंगा। तब बीदासर में मातुश्री के सान्निध्य में उत्तराधिकारी युवाचार्य का मनोनयन करुंगा। यह सपना-सपना ही रह गया। शरीर की क्षीण होती स्थिति को देखकर

भाद्रवशुक्ला तीज को उन्होंने मुनि तुलसी को युवाचार्य पद पर मनोनीत किया। युवाचार्यश्री तुलसी ने मातुश्री छोगांजी के सन्दर्भ में पूछा। तब कालूगणी ने कहा- उनका सुखपूर्वक संयम पले तथा चित्त में समाधि रहे तुम वैसा कार्य करना। भाद्रव शुक्ला छठ को जब अष्टमाचार्य कालूगणी का स्वर्गवास हुआ तेरापंथ के सभी सदस्यों के मन में पहली दु:खद प्रतिक्रिया मातुश्री के सम्बन्ध में हुई।

किसी-किसी व्यक्ति ने तो यहां तक कल्पना कर ली-कि अब मातुश्री आचार्य पुत्र के विरह से व्यथित होकर अनशन कर देंगी और आहार लेंगी तो नाम-मात्र लेंगी। पर सभी की कल्पना कपोल कल्पना बन कर रह गई। मातुश्री ने नियति को अटल मानते हुए उस समय जो दृढ़ता का परिचय दिया वह अदभुत और आश्चर्यजनक था। अश्रुपात और दिलगिरी तो दूर पर उन्होंने अपने आप पर धैर्य और साहस से जो नियन्त्रण रखा, जन-जन के मुख पर प्रशंसा के शब्द थिरकने लगे। उनकी अध्यात्म निष्ठा सही माने में मुखर हो गई। उस समय में लोगों के मन में मातुश्री की जो छवि अंकित हुई उसे काव्य की भाषा में प्रस्तुत करते हुए आचार्य तुलसी ने लिखा -

छाती छोगां मात री रे, कहनी पड़सी धन्य।
दिल दृढ़ता वाली सती रे, इसड़ी न मिलै अन्य॥

अश्रुपात तो आंतरै रे, दिलगीरी पिण दूर।
भावी भाव विभावती रे, नहिं फेरयो निज नूर॥

जन-जन नै समझावणीरे, प्रत्युत करी पिछाण।
वाह! माजी महाराज रो रे पायो जन्म प्रमाण॥

कसौटी के इन क्षणों में मातुश्री ने जिस धैर्य, साहस और समझदारी का परिचय दिया वह सबको आत्मतोष देने वाला था।

यद्यपि गंगापुर का चातुर्मास सम्पन्न होते ही आचार्य तुलसी मातुश्री छोगांजी के पास पहुंचना चाहते थे पर संघीय और क्षेत्रीय अपेक्षा से विलम्ब होता दिखाई दे रहा था, इसलिए आपने साध्वी चान्दांजी को पांच ठाणों से मातुश्री के पास पत्र देकर भेजा। पत्र का अविकल रूप इस प्रकार है-

छोगांजी स्यूं घणी-घणी सुखसाता बंचै। थे चित्त में घणी घणी समाधि राखज्यो और अठै स्यूं चानांजी आदि ठाणा 5 बठै भेज्या छै सो बै सुखसाता का समाचार सारा ही

कहसी और बड़ा महाराज साहिब महा भाग्यवान प्रबल प्रतापी देवलोक पधार गया सो निजोरी बात है। काल आगै कोई को जोर चालै नहीं। तीर्थंकर देव नै पिण काल तो छोड़ै नहीं। इम विचार करी नै चित्त में समाधि विशेष राखणी चाहिजै। बाकी जिम कालू गणीराज के आप माता छा तिम म्हारै पिण माता तुल्य छो। जिण सूं कोई बात को विचार करीज्यो मती और म्हांरा पिण दर्शण देवण रा भाव बेगा ही है .....

वि. सं. 1993
मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया
सोमवार

तुलसीगणी नवमाचार्य

गंगापुर चातुर्मास के बाद व्यावर मर्यादामहोत्सव कर क्षेत्रों की संभाल और विहार करते-करते चैत्रकृष्णा बारस को बीदासर पधारे - आचार्य तुलसी ने मातुश्री को दर्शन दिए और पूज्य कालूगणी के सन्दर्भ में सारा वृतांत सुनाया। मातुश्री ने अपूर्व साहस का परिचय देते हुए कहा- मेरे सामने अब आप ही कालूगणी हो। उस समय एक महीना बीदासर विराज कर मातुश्री को आचार्यवर ने मानसिक दृष्टि से पूर्ण संतुष्टि प्रदान की।

उसके बाद जब तब अवसर मिलता आचार्यवर मातुश्री की सेवा को अधिक प्राथमिकता देते तथा समय-समय पर पधारकर सेवा भी कराई। सं. 1996 का चातुर्मास बीदासर करके माजी महाराज को सेवा का अवसर दिया। मातुश्री भी कालूगणी की भांति आचार्यवर का सान्निध्य प्राप्त कर भावविभोर हो जाती और अतिरिक्त आह्लाद का अनुभव करतीं।

आचार्य तुलसी ने सं. 1996 का मर्यादा महोत्सव लाडनूं किया। सुजानगढ़ में होली चौमासा कर बीदासर पधारने की घोषणा की। चाड़वास से बेनाथा पधारते-पधारते सूचना मिली कि मातुश्री सख्त बीमार है। तब उसी समय मध्याह्न में विहार कर बीदासर पधारे। और मातुश्री को दर्शन दिए। उस समय मातुश्री सचेतन अवस्था में थी और वन्दना कर तेले की तपस्या का प्रत्याख्यान करवाने का निवेदन किया। आचार्यवर ने उनको पांच महाव्रतों का पुनरावर्तन कराया। चोले की तपस्या में माजी महाराज के आग्रह भरे निवेदन पर उन्हें चैत्र कृष्णा सातम को सायंकाल चार बजकर 40 मिनिट पर आजीवन तिविहार अनशन करा दिया। उस समय मातुश्री ने अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा- आज मेरा जीवन सफल हो गय। हवा की तरह अनशन का संवाद पूरे देश में फैल गया और

हजारों की संख्या में लोग दर्शनार्थ उमड़ पड़े। उस अवसर पर त्याग वैराग्य की अत्यधिक वृद्धि हुई। पांच बहिनों ने जब तक अनशन चलेगा, तीनों आहार का प्रत्याख्यान कर दिया। चैत्र कृष्णा एकादशी को सुबह सवा सात बजे मातुश्री ने देह को छोड़ स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। उन्हें तीन दिन की संलेखना और पांच दिन का अनशन आया। मातुश्री सौभाग्यशालिनी थी जिन्होंने आचार्यवर सहित अनेक अनेक साधु साध्वियों की उपस्थिति में अपना कार्य सिद्ध किया।

मातुश्री के मृत्यु महोत्सव पर श्रावक समाज ने 41 खण्ड की विमान-सी बैकुण्ठी बनाई तथा पांच हजार रुपयों की उछाल कर बड़ी धूमधाम से अन्तिम संस्कार किया।

मातुश्री छोगांजी ने संवत 1971 की पौषकृष्णा बारस से 1997 की चैत्र कृष्णा एकादशी तक 26 वर्ष बीदासर में स्थिरवास किया। उनके वर्चस्वी व्यक्तित्व का बीदासर के लोगों पर गहरा प्रभाव रहा। प्राय: श्रावक-समाज व्यसन मुक्त रहा तथा सान्निध्य का अच्छा लाभ उठाया।

मातुश्री छोगांजी का संयम-साधना काल तिरपन (53) साल छह महीने का रहा। उसमें उन्होंने मघवागणी से लेकर आचार्य तुलसी तक पाँच आचार्यों का शासन काल देखा। अपने पुत्र को आचार्य के रूप में देखने वाली पहली माता थी।

शेष आचार्यों की माताएं पहले ही दिवंगत हो गई। मघवागणी की मां साध्वी बन्नाजी ने मघवागणी को युवाचार्य रूप में देखा था। मातुश्री छोगांजी ने आचार्य तुलसी की मां साध्वी वदनांजी को देख लिया। उन्हें वे साझीवाल कहा करती थी। तीन साल छह महीने तक की अवधि तक संघ में दो माताओं का संगम रहा। दो आचार्यों की माताएं संघ में दीक्षित होकर साथ रही यह तेरापंथ इतिहास की नई घटना थी।

11. साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी श्री डूंगरगढ़ (541)

जन्म :

राजस्थान की रत्नप्रसूता मरुभूमि। उसका एक समृद्ध भू–भाग चूरु जिले के अन्तर्गत सालासर नाम की पुरोहितों की बस्ती। वहां सेठ आनन्दरामजी मालू रहते थे। धार्मिक दृष्टि से उनकी आस्था तेरापंथ धर्मसंघ में थी। वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे, उदार मनोवृत्ति के थे। गांव की सभी जातियों के लोगों के साथ उनका प्रेमपूर्ण मैत्री का व्यवहार था, इसलिए वे उस गांव के अति सम्मानित व्यक्ति थे, सर्वप्रिय व्यक्ति थे। उनके एक पुत्र थे – लक्ष्छीरामजी और धर्मपत्नी का नाम था चन्दनादेवी। लच्छीरामजी के दो पुत्र – लाभूराम खेमचन्द तथा तीन पुत्रियां थी – कानकुमारी, रूक्मिणी।

सं. 1930 भाद्रव शुक्ला नवमी को मझली पुत्री का जन्म हुआ। उस वर्ष लच्छीरामजी को धन धान्य की अत्यधिक प्राप्ति हुई। कहते हैं कि उस समय खेतों में इतना अधिक धान हुआ, जितना पिछले कई वर्षों में नहीं हुआ था। दूसरी ओर आसंगतियों से धंधा था, उसमें आशातीत आय हुई। इसलिए बालिका कान के जन्म के उपलक्ष्य में बहुत खुशियां मनाई गई। जबकि उस युग में पुत्री के जन्म को कोई महत्त्व नहीं देता था, बल्कि लड़की के आगमन से घर में उदासी छा जाती थी। पर बालिका कानकुमारी इसका अपवाद बनकर आई। परिवार के सभी सदस्य उन्हें शुभ एवं मंगल का प्रतीक मानने लगे।

बाह्य व्यक्तित्व

बालिका कान का गौर वर्ण, विशाल ललाट, चमकती आंखें सबको आकर्षित करने वाली थी। शरीर का संस्थान सौन्दर्ययुक्त होने के साथ–साथ सुदृढ़ था। बाल सुलभ चंचलता सौन्दर्य को शतगुणित करने वाली थी, इसलिए वह छोटे बड़े सभी को प्रिय थी।

लच्छीरामजी के मधुर व्यवहार के कारण गांव के सभी जाति के लोगों में इस परिवार के प्रति आत्मीयता के भाव थे। पूरे गांववासियों के लिए लच्छीरामजी का घर अपना था। गांववासी अपने सुख दुःख की कहानी उनको सुनाकर निश्चिन्त रहते थे। इसलिए सुबह मध्याह्न एवं शाम – तीनों समय उनके यहां पंचायत – सी जुड़ी रहती थी। सेठ लच्छीरामजी भी उदार भाव से सबके सहयोग के लिए तत्पर रहते।

सर्दी का मौसम था। गांव के प्रमुख–प्रमुख व्यक्ति सेठजी के आसपास बैठे थे। सब धूणी के पास बैठकर बातें कर रहे थे, तभी बालिका कान खेलती–खेलती वहां आ गई। बच्ची की बाल सुलभ चपलता ने बड़े बुजुर्गों को मोह लिया और सब उससे मनोरंजन करने लगे। एक से दूसरे की गोदी में बैठकर प्यार दुलार के साथ कभी गुड़ खा रही थी कभी बतासे। तभी खंगजी नाम के राजपूत ने उसे अपनी गोद में बिठा लिया। वे स्वयं जलती धूणी के पास बैठे थे। उन्होंने सोचा बच्ची को सर्दी से बचा लूं लेकिन चंचल बालिका कब स्थिर रहने वाली थी। कभी हाथ चला रही थी तो कभी पैर। अचानक उसका दाहिना पैर आग में झुलस गया। अंगुलियों के नाखून गायब हो गए। बालिका की स्थिति देखकर बेचारे खंगजी के होश गुम हो गए। पश्चाताप में डूबे खंगजी को लच्छीरामजी ने यह कह कर सान्त्वना दी कि भाई तुमने जानबूझकर तो कुछ किया नहीं। बच्चे चंचल होते हैं। उनका ध्यान रखते–रखते ही अघटित घट जाता है।

उस समय चिकित्सा व्यवस्था का पूर्णतः अभाव था। अनुभवी व्यक्तियों की देखरेख में घरेलू उपचार होता था। बालिका कान के पांव पर घरेलू दवाएं लगाई गई। ठीक होते–होते छह महीनों का समय लग गया।

अवस्था छोटी : संस्कार बड़े

बालिका कान को अपने माता–पिता से बचपन में ही विनय विवेक के साथ साहस के संस्कार मिले। यद्यपि उस जमाने में लड़कियों को अक्षर ज्ञान नहीं दिया जाता था क्योंकि जन–जन में यह गहरा विश्वास जमा हुआ था कि एक घर में दो कलमें चलना शुभ नहीं होता। बालिका कान ने विधिवत शिक्षा के नाम पर कहीं प्रवेश नहीं लिया लेकिन कुशाग्र बुद्धि होने के कारण जो भी देखती, सुनती ग्रहण कर लेती। समय–समय पर साधु साध्वियों का आगमन भी वहां होता रहता था, जिससे धार्मिक संस्कार भी बालिका के पुष्ट होते रहे।

जब कानकुमारी आठ वर्ष की थी, एक बार उनकी मां अपने पीहर कोटासर गई हुई थी। सालासर में तपस्वी मुनि रामलालजी का आगमन हुआ। वे गोचरी के लिए लच्छीरामजी के घर पधारे। बालिका ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा – मुनिवर! पधारिए, पात्रदान का लाभ दें।

घर के मुख्यद्वार पर अकेली बालिका को देखकर तपस्वी मुनि ने प्रश्न किया – बहन! घर में तुम अकेली हो या और भी कोई है?

बालिका ने भोलेपन के साथ कहा – महाराज! मेरी मां अभी बाहर गई हुई है। मैं अकेली हूँ तो क्या? मेरे घर पर आप कृपा कराएं।

मुनिजी ने साधुचर्या की मर्यादा बताते हुए कहा – जहां अकेली बहन हो वहां साधु गोचरी हेतु आ नहीं सकते?

समझदार के लिए इशारा ही काफी है, कथन के अनुसार मुनिश्री द्वारा नियम को जानकर बालिका कान जल्दी से पड़ौसिन को बुला लाई। एक अनुभवी महिला की तरह बालिका ने धृत, दूध, दही, सोगरा आदि जितने पदार्थ थे, उत्कट भावना के साथ बहराए। बालिका कान के विवेकपूर्ण व्यवहार को देखकर तपस्वी मुनि के मुंह से सहज शब्द निकले – "बालिका विवेकशील और पुण्यवान है।"

सालासर से श्रीडूंगरगढ़

उस समय बीकानेर में महाराजा डूंगरसिंहजी का शासन था। उन्होंने अपने नाम से 'श्रीडूंगरगढ' नगर बसाया। बीकानेर दरबार में लच्छीरामजी का अच्छा सम्मान था। उन्होंने राजघराने के इस निर्णय को गौरव देते हुए सर्वप्रथम श्रीडूंगरगढ में बसने का निर्णय लिया। कहा जाता है कि ओसवाल समाज में लच्छीरामजी श्रीडूंगरगढ में बसने वाले पहले व्यक्ति थे। उनके इस निर्णय से बीकानेर–महाराज प्रसन्न हुए और उन्हें दो सौ बीघा जमीन, दो बन्दूक और एक तलवार बक्सीस में दी।

लच्छीरामजी ने सपरिवार बड़े हर्ष और उल्लास के साथ श्रीडूंगरगढ में प्रवेश किया लेकिन कुछ समय पश्चात ही उनका देहावसान हो गया। विधि की विडम्बना को कोई नहीं समझ सकता। पिता लच्छीरामजी का अभाव भूल ही नहीं पाए थे कि अचानक छोटा भाई खेमराजजी काल कवलित हो गए। सम्पूर्ण परिवार का दायित्व लाभूरामजी के कन्धों पर आ गया।

लाभूरामजी को अपने पिता की तरह समाज में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वे उच्चकोटि के धार्मिक व्यक्ति थे। त्याग प्रत्याख्यान में उनकी अच्छी रूचि थी। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे। ज्योतिष विद्या के ज्ञाता थे। वे ग्रह नक्षत्रों के आधार पर अपनी जेब घड़ी का समय निर्धारित करते थे। उस समय के लोग उनकी घड़ी को प्रामाणिक मानते थे। जन्म विवाह तथा मुहूर्त आदि के लिए समय पूछने आते थे।

लाभूरामजी अष्टमाचार्य कालूगणी के मौसेरे भाई थे। उनकी मां श्रीमती चन्दना देवी और मातुश्री छोगांजी सगी बहिनें थी। एक सबसे बड़ी बहिन थी, जिसका नाम पद्मादेवी था। उनके पिता नरसिंहदासजी लूणिया मूलतः कोटासर के निवासी

थे। श्रीडूंगरगढ बसने के बाद वे भी वहां आ गए। छोगांजी का जन्म सं. 1901 में हुआ। वे तीनों बहनों में सबसे छोटी थी। सोलह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह 'ढंढेरू' (बीदासर और परसनेऊ के बीच) निवासी बुधसिंहजी चोपड़ा कोठारी के पुत्र मूलचन्दजी के साथ हुआ। ढंढेरु के ठाकरों के साथ विरोध होने से बुधसिंहजी परिवार सहित 1919 में छापर आकर बस गए।

छोगांजी ने जब यौवन की परिपूर्ण अवस्था में प्रवेश किया, उन्होंने कालूगणी जैसे महान प्रतापी तेजस्वी बालक को जन्म दिया। सं. 1933 फाल्गुन शुक्ला दूज का वह शुभ दिन था। बालक कालू के जन्मोत्सव की खुशियां मनाई ही जा रही थी, कि जेठ वदी दूज को मूलचन्दजी का स्वर्गवास हो गया। शिशु जब पौने आठ महिने का हुआ, तब माता छोगाजी सुत को लेकर कोटासर आ गई। उसके बाद वे प्रायः पीहर में ही रहती थी। सं. 1940 में लूणिया परिवार श्रीडूंगरगढ आ गया। उसके अगले वर्ष साध्वी मृगांजी ने श्रीडूंगरगढ चातुर्मास किया। साध्वीजी के सम्पर्क से छोगांजी ने तत्त्वज्ञान की दिशा में प्रवेश किया। साध्वियों के पावन सान्निध्य और प्रेरणा ने छोगांजी के वैराग्य को सुदृढ बना दिया। छोगांजी के मन में संयम ग्रहण करने की भावना जागी और साथ में अपने लाडले बेटे को भी तैयार कर लिया।

वैराग्य का मजीठी रंग

इधर बालिका कान का बाल मन परिवार में घटित होने वाली एक–एक घटना से प्रभावित होता जा रहा था। घर का उदासीन वातावरण और पिता के जाने के पश्चात मां के जीवन में आए परिवर्तन ने उसे सोचने को विवश कर दिया। मां की वेशभूषा, खानपान, रहनसहन सब कुछ बदला–बदला दिखाई दिया। जब भी घर में नए व्यक्ति का प्रवेश होता, चारों ओर दिल के टुकड़े करने वाला रूदन सुनाई देता। बालिका आहत और दिग्भ्रमित हो गई। थोड़े समय पश्चात कानकुमारी ने देखा, उससे छोटा भाई खेमराज भी असमय इस संसार से विदा हो गया। इन सब घटनाओं से बालिका कान का मन उदास रहने लगा। ऐसी स्थिति में कानकुमारी किसी एक चिन्तन पर केन्द्रित नही हो पा रही थी।

एक दिन बालिका कानकुमारी अपनी मौसी से बतिया रही थी, उस समय उसने अपनी सारी व्यथा कथा प्रकट कर दी। छोगांजी संसार की नश्वरता को अच्छी तरह देख चुकी थी। उनका पवित्र मन अपने पुत्र कालू और भानजी कानकुमारी को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ना चाहता था। अवसर देखकर उन्होंने कानकुमारी को दीक्षा लेने की प्रेरणा दी। परिवार का धार्मिक वातावरण और सहज संस्कारों से धर्म

के प्रति बालिका का आकर्षण प्रारंभ से ही था। मौसी की वैराग्यमयी प्रेरणा ने कानकुमारी के कण–कण को भावित कर दिया। वे मौसी के संरक्षण में ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि का प्रयत्न करने लगी। उसने मन में वज्रसंकल्प कर लिया कि – वह शादी के बन्धन में नहीं बन्धेगी। वह अपनी मौसी, मौसेरे भाई कालू के साथ दीक्षा लेगी। लेकिन अपना संकल्प मौसी को बताया नहीं।

वैराग्य भावना की कसौटी और अभिव्यक्ति

कानकुमारी के अग्रज लाभूरामजी ने अपने चाचा चौथमलजी के सामने बहिन की शादी की चर्चा की। वह युग बाल विवाह का युग था। शिक्षा की दृष्टि से कोई व्यवस्था नहीं थी, यहां तक कि लड़कियों का घर से बाहर निकलना अपराध था। चार दीवारी में कैद रहना ही स्त्री की नियति थी। रूढ़ मानसिकता और अन्ध विश्वास से ग्रसित राजस्थान का वणिक् समाज केवल लक्ष्मी का आराधक था। ऐसी स्थिति में कानकुमारी को भी शिक्षा से वंचित रखा गया। वे कुशाग्र बुद्धिवाली बालिका थी, अतः घर में अक्षर ज्ञान कर धार्मिक तत्त्वज्ञान सीखने लगी।

यद्यपि बालिका कान ने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि – मुझे शादी के बन्धन में नहीं बंधना है, पर भाई लाभूरामजी को अपनी बात नहीं कह सकी। दूसरी बात भाई से ज्यादा उनको अपने चाचा से अधिक डर लगता था। इसका कारण उनका उग्र स्वभाव और आग्रह की मनोवृत्ति थी। इसी बीच घर में उनकी सगाई की फुसफुसाहट होने लगी। वे अपनी मानसिकता तैयार कर रही थी कि एक दिन सुबह–सुबह सगाई की तैयारियां होने लगी। आडसर निवासी रतनचन्दजी छाजेड़ के साथ उनकी सगाई निर्णीत हो चुकी थी और उस दिन सगाई की रस्म करने के लिए वे लोग आने वाले थे। ज्योहीं बालिका कान के कानों में यह भनक पड़ी, वह अपने बचाव का उपाय सोचने लगी। वह तत्काल पीछे की गली में स्थित नोहरे में गई और लकड़ियों के पीछे एक बड़े लक्कड़ पर छिपकर बैठ गई। एकान्त में बैठी कान आत्मचिंतन में लीन बन रही थी और कभी साधु जीवन के कष्टों के विषय में तो कभी परिजनों के मोह के विषय में अपने आपको तोलती रही। उन्हें लगा बड़े भाई और चाचाजी से डांट तो पड़ेगी, पर आडसर वाले चले जाएंगे तब अपनी सारी कहानी साफ–साफ सुना देगी। बचपन के भोलेपन ने यह नहीं सोचा कि मेरे बिना सगाई किसकी होगी?

चिन्तन की घाटियों में वह बालिका विचरण कर रही थी। उसे लकड़ियों के बीच सरसराहट सुनाई दी। उसने सोचा, शायद कोई मुझे देखने के लिए यहां पहुंच

गया है। तभी उसकी दृष्टि लकड़ियों से निकलते काले सर्प पर पड़ी। वह उसकी तरफ आ रहा था। कानकंवर उसकी तरफ देखती रही। उस समय उनके मन में भय के प्रकम्पन नहीं हुए। वह निश्चल निश्छल अपनी मस्ती में थी। तभी सर्प ने अपना रास्ता बदल लिया और एक नाले में घुस गया।

परिवार के सदस्यों का बालिका कान को न देखकर चिन्तित होना स्वाभाविक था। किसी ने सोचा वह अपनी मौसी छोगांजी के पास चली गई होगी? जहां जहां बालिका के जाने की संभावना लगी, तलाश करवा ली पर खोज खबर नहीं मिली। लाभूरामजी खोजते खोजते उस नोहरे में गए, वहां कानकंवर बैठी–बैठी गुनगुना रही थी। उन्होंने कड़े मिजाज के साथ कहा – यह क्या? यहां क्यों बैठी हो? तुमने अपने इस व्यवहार से हम सबको परेशान कर डाला। चलो चाचाजी तुम्हारी बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारी सगाई की रस्म अदा करने के लिए आडसर वाले आए हुए हैं, चलो, जल्दी चलो।

अब बालिका कान ने स्पष्ट शब्दों में कहा – मेरा वहां कोई काम नहीं है। न मुझे सगाई करनी है और न शादी करनी है। आपको पता है, मुझे मौसीजी के साथ दीक्षा लेनी है, फिर आपने इतनी झंझटबाजी क्यों की? चाचा चौथमलजी को जब दीक्षा की भावना की अवगति मिली, वे इतने तेज हो गए कि छोगांजी पर बरस पड़े। कानकंवर फिर भी टस से मस नहीं हुई और अपने निर्णय पर अडिग बनी रही। बालिका की दृढ़ता देखकर वहां खड़े तहसीलदार साहब ने कहा – बेटा! तू इतनी छोटी–सी है, इतनी जिद्द क्यों कर रही है? संसार में सुखपूर्वक रहना है, तो विवाह जैसे पवित्र सम्बन्ध को आधार बनाना ही होगा। यह जन्म और मरण की बातें तुम्हें किसने समझा दी। तू विवाह करले, तुम्हारा पति अभी नहीं मरेगा, लो मैं तुम्हे शर्तनामा लिखकर देता हूँ।

बालिका कान की प्रतिभा तेज थी। उन्होंने विनम्र शब्दों में कहा – तहसीलदार साहब! आप मेरे पिताजी के घनिष्ट मित्र थे। आपने अपनी पूरी शक्तिसम्पन्नता हमारे सामने रखी है। आप मेरे पिताजी को स्वर्ग से ला दीजिए, मैं आपकी शक्ति का चमत्कार मान लूंगी। फिर आप मुझे जो कहेंगे मैं वही मान लूंगी। तहसीलदार साहब ने हाथ मसलते हुए कहा – बेटा! यह तो संभव नहीं है।

कानकंवर तपाक से बोल पड़ी – फिर आप मरते हुए को भी रोक नहीं सकेंगे, आपका शर्तनामा बेकार है। आप मुझे इन बातों से फुसलाने का प्रयत्न मत करो।

तहसीलदार साहब ने बालिका का साहस, दृढ़ता और बुद्धि देखकर चौथमलजी से कहा – इस पर वैराग्य का मजीठी रंग चढ़ा हुआ है। यह अपने निश्चय पर अटल है, इसे आत्म कल्याण करने दो। इसकी साधना में हमको बाधक नहीं बनना चाहिए।

परिवार के लोग असमंजस की स्थिति में फंस गए। एक ओर सगाई करने के लिए छाजेड़ परिवार को बुला लिया, सगाई की पूरी तैयारियां कर ली। सगे सम्बन्धी सब एकत्रित हो गए। जिसकी सगाई करनी थी वह स्पष्ट इन्कार हो गई। आखिर चाचा और भाई ने छाजेड़ परिवार वालों के सामने छोटी बहिन रूक्मिणी की सगाई का प्रस्ताव रखा। रतनचन्दजी के साथ रूक्मिणी बाई की सगाई कर दी गई। यह सब देख बालिका कान ने अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किया।

मणिकांचन संयोग

कानकंवरजी सौभाग्यशाली बालिका थी, जिनकी चाह और नियति सिंहपुरुष (अष्टमाचार्यश्री) कालू और उनकी मां के साथ जुड़ गई, जिससे उन्हें अतिरिक्त प्रयत्न, पुरुषार्थ नहीं करना पड़ा। जिनकी दीक्षा के लिए स्वयं संघपति आचार्यश्री मघवागणी सजग थे, उनकी कृपा–कल्पतरु की छांव में सारे मनोरथ स्वयं सिद्ध हो गए। पूज्य मघवागणी ने मुनिश्री आनंदरामजी एवं साध्वी मृगांजी को प्रतिक्रमण एवं तत्त्वज्ञान सीखाने की दृष्टि से श्रीडूंगरगढ भेजा, तब मातुश्री छोगांजी के साथ बालिका कान को ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि का अवसर मिल गया। कहना चाहिए, यह एक ऐसा मणिकांचन योग था, जो साधारणतया मिलना दुष्कर नहीं अतिदुष्कर था।

जब आचार्यश्री मघवागणी का पदार्पण सरदारशहर में हुआ, मातुश्री छोगांजी अपने पुत्र कालू के साथ कानकंवरजी को लेकर पहुंची। उन्होंने तीनों की दीक्षा लेने की भावना श्रीचरणों में निवेदित की। पंचमाचार्यश्री मघवा ने कृपापूर्ण बातचीत की और आश्वासन के साथ यह कहकर दीक्षा टाल दी – कि कालू की अवस्था अभी तक बहुत छोटी है, अतः कुछ समय इंतजार करना पड़ेगा। मातुश्री छोगांजी पुत्र और भानजी को लेकर पुनः श्रीडूंगरगढ लौट आई। वहां आने वाले साधु साध्वियों के उपपात में अपने वैराग्य भाव को बढाती रही।

स्वाति नक्षत्र में मिला संयम का उजला मोती

पुण्यात्माओं को शुभ समय की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, खुद समय ही उनकी प्रतीक्षा में खड़ा मिलता है। सं. 1944 का वर्ष बालिका कान के जीवन में नव

सूर्योदय लेकर उदित हुआ। आचार्यश्री मघवा मेवाड़–यात्रा कर बीदासर पावस प्रवास कर रहे थे। मातुश्री पुनः श्रीचरणों में उपस्थित हुई और संसार–समुद्र से पार पाने के लिए संयम की नौका पर चढने की भावना व्यक्त की। वीतराग कल्प आचार्यश्री मघवा भावी संभावनाओं से भरे पूरे व्यक्तित्वों को देख प्रसन्न थे। उन्होंने आश्विन शुक्ला तृतीया का शुभ दिन दीक्षा के लिए निश्चित किया।

एक ओर मातुश्री छोगांजी, बाल सूर्य कालू तथा होनहार बालिका कान का मन वर्षों से संजोई अभिलाषा की सम्पूर्ति से आल्हादित था, दूसरी ओर लूणिया परिवार और मालू परिवार में एक साथ तीन सदस्यों की दीक्षा से उदासी का वातावरण भी था और प्रसन्नता भी थी। लाभचंदजी बहिन की दीक्षा से आत्म गौरव के साथ आश्वस्त भी थे, क्योंकि मातृसम्मानीय मौसी उनके साथ थी। बीदासर की वीर भूमि, श्रीमघवा की जन्मभूमि, महासती सरदारांजी की तीर्थभूमि में पंचमाचार्यश्री मघवा के कर–कमलों से आश्विन शुक्ला तृतीया, स्वाति नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण कर मुनि कालू, साध्वी छोगा एवं कानकंवर धन्य–धन्य, कृतकृत्य बन गए।

दीक्षा महोत्सव जीतमलजी दूगड़ के नोहरे में हुआ। मघवा सुजश में दीक्षा का वर्णन करते हुए आचार्यश्री माणकगणी ने लिखा –

कालूजी कोठारी जाति छापर तणां जी बले माता छोगांजी पिछाण।

बालक वय चरण गणी। कर लियो जी, तीजा कानकंवर सगाई तज जाण।

आसोज सुद तीज नै दिने जी, दीक्षा दीधी मोटे मंडाण।।

साध्वी छोगांजी एवं साध्वी कानकंवरजी ने साध्वीप्रमुखा नवलांजी के मार्गदर्शन एवं अनुशासन में अपने जीवन निर्माण की सिद्धश्री लिखना प्रारंभ किया। साध्वीप्रमुखा नवलांजी के पावन सान्निध्य में साध्वी कानकंवरजी को साध्वाचार का प्रशिक्षण व ज्ञानार्जन करने का अनुपम अवसर मिला। पांच साल तक आचार्य श्री मघवागणी और दो साल आचार्य माणकगणी के चरणों में रहकर पूर्ण समर्पण भाव से ज्ञानार्जन किया। उन्होंने पांच आगम कंठस्थ किए – दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प, नन्दी और सूत्रकृतांग। तात्त्विक ग्रन्थों में भ्रमविध्वंसन, अनुकम्पा की चौपई और झीणीचर्चा उनको याद थे।

उन्हें लगभग पन्द्रह थोकड़े कंठस्थ थे – महादण्डक, लघुदण्डक, बावन बोल, इक्कीस द्वार, तेरह द्वार, गम्मा, सात सौ गाथाओं की लडियां, हरखचंदजी स्वामी

की चर्चा, पचीस बोल की चर्चा, संजया, नियंठा, कायस्थिति, गतागत, अल्पाबहुत, गुणस्थानद्वार।

भक्तामर, कल्याणमंदिर, सिन्दूरप्रकर के अलावा लगभग एक हजार स्फुटकर संस्कृत श्लोक उनको याद थे।

उनके कंठस्थ व्याख्यान की गणना बहुत लम्बी चौड़ी थी। रामचरित्र, धनजी, शालिभद्र, मानतुंग–मानवती, चित्रसेन–पदमावती, मृगावती–महिपाल आदि सौ से ऊपर छोटे बड़े व्याख्यान। इनके अतिरिक्त चौबीसी आराधना, अनेक गीतिकाएं, दोहा, सोरठा, छप्पय कवित्त आदि उनके व्याख्यान में बहुत अधिक प्रयुक्त होते थे।

साध्वी कानकंवरजी के जीवन पर महासती नवलांजी का विशेष प्रभाव रहा। सहज समर्पण, विनय, नम्रता, अप्रमत्त जीवन शैली के संस्कार उनको जन्मघूंटी के रूप में मिले। यह साध्वी कानकंवरजी का भाग्य था कि जब साध्वीप्रमुखा नवलांजी वृद्धावस्था के कारण बीदासर में स्थिरवासी बनीं, तब वे उनकी सेवा में रहीं। साध्वीप्रमुखा की उन पर वात्सल्यपूर्ण कृपा थी, साध्वी कानकंवरजी सेवा कार्य के साथ इंगित की आराधना में बहुत सजग रहती। प्रत्येक कार्य को साध्वीप्रमुखा की दृष्टि के अनुरूप करने का प्रयत्न करती। साध्वीप्रमुखा उनकी आचार निष्ठा, विनय निष्ठा, समर्पण निष्ठा, कार्य निष्ठा एवं सेवानिष्ठा से बहुत–बहुत प्रभावित थी।

आचार्यश्री माणकगणी के अचानक स्वर्गस्थ होने के पश्चात सप्तमाचार्यश्री डालगणी आचार्य पद पर आसीन हुए। वे नवलसती को दर्शन देने बीदासर पधारे। साध्वीप्रमुखा नवनिर्वाचित आचार्यवर की कृपा पा धन्य बनीं और अस्वस्थता के बावजूद जितनी बन सकी, सेवा उपासना का लाभ लेतीं। एक दिन डालगणी ने नवलसती को सम्बोधित कर कहा – तुम वृद्धावस्था की ओर बढ़ रही हो, शारीरिक दृष्टि से भी अस्वस्थ हो, तुम्हारे मन में कोई इच्छा या भावना हो तो.....?

महासती नवलांजी ने करबद्ध निवेदन किया – साध्वी कानकंवरजी आचारनिष्ठ, सुयोग्य, सेवाभावी, विवेकसम्पन्न और विनयशील साध्वी हैं। मेरी इच्छा है कि मेरे समक्ष मेरी नेश्राय की पुस्तकें देकर उन्हें सिंघाड़े की वन्दना कराने की कृपा करें।

नवलसती की प्रार्थना पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए सप्तमाचार्य ने उसी समय साध्वी कानकंवरजी को अग्रगण्या की वंदना कराई अर्थात उनका सिंघाड़ा बना दिया। संयोग की बात थी कि उसी वर्ष सं. 1955 आसाढ़ वदि पांचम को साध्वीप्रमुखा नवलसती का स्वर्गवास हो गया। उस वर्ष डालगणी का चातुर्मास लाडनूं होने से

साध्वी कानकंवरजी को चातुर्मास में सेवा का अवसर मिल गया।

बाल्यावस्था में आचार की सजगता

साध्वी कानकंवरजी को दीक्षा लिए कुछ वर्ष हुए थे। पंचमाचार्य श्री मघवा का सालासर पधारना हुआ। उस समय कान सती भी साथ में थे। उनका जन्म सालासर में हुआ था, बचपन भी वहीं बीता था, इसलिए गांव के लोग उनसे बहुत परिचित थे। वहां के ठाकुर साहब ने जब सुना साध्वी कानकुमारीजी दीक्षा लेकर यहां आई है, उनके हृदय में हर्ष का पार नहीं रहा। वे आचार्यश्री के पास पहुंचे और बोले – अन्नदाता! आज आपके साथ हमारे सेठों की बेटी कानकंवरजी आए हैं। हम चाहते हैं, गांव के सभी घरों में उनको गोचरी भेजने की कृपा कराएं। ठाकुर साहब और गांव वालों के बार–बार निवेदन करने पर आचार्यवर ने उनको गोचरी जाने का निर्देश दिया। वे भिक्षा के लिए गई, वहां उन्होंने देखा – हर घर में फुलका, चीनी, घी एवं हलवा का भोजन बना था। उन्होंने ठाकुरसाहब से पूछा – आज प्रत्येक घर में एक–समान भोजन कैसे?

ठाकुर साहब बोले – अतिथि सत्कार के लिए क्या नहीं किया जाता। हमने तो केवल घी चीनी हलवा और फुलका ही बनाया है। साध्वी कानकंवरजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा – ठाकुर साहब! यह हमारी कल्पनीय भिक्षा नहीं है, इसलिए हम गोचरी नहीं कर सकते। यह कहकर साध्वीजी अपने स्थान पर लौट गई।

साध्वी कानकंवरजी ने आकर सारी बात आचार्यश्री को सुनाई। आचार्यश्री ने पहले घरों से गोचरी कर आए संतों को बुलाया और सारा आहार परिष्ठापन करने का आदेश दिया। बाल्यावस्था में साध्वी कानकंवरजी की आचार के प्रति सजगता देख आचार्यवर ने प्रसन्नता प्रकट की।

बहिर्विहार का शुभारंभ

आचार्यश्री ने सं. 1955 का मर्यादा महोत्सव बीदासर में किया। मर्यादा महोत्सव पर आचार्यश्री डालगणी ने साध्वी कानकंवरजी को मालवा की यात्रा का निर्देश दिया। इस बात को कालूयशोविलास में उल्लिखित करते हुए आचार्य तुलसी ने लिखा है –

पावस प्रथम पिच्यावनै रे सुजना! शहर लाडणूं ख्यात।

कालू गुरु – चरणां वसै रे सुजना! कानकंवर वलि मात।।

कानकंवरजी रो कियो रे सुजना! सिंघाड़ो गणनाथ।

चौमासो उतरया पछै रे, सुजना! छोगांजी पिण साथ।।

साध्वी कानकंवरजी ने मारवाड़ मेवाड़ का स्पर्श करते हुए मालवा की सीमा में प्रवेश किया। पहला शहर आया नीमच। वहां से प्रस्थान कर तेरह माइल स्थित मल्हारगढ़ पहुंची। उस समय दो सिंघाडे साथ में थे, यानि कुल दस सतियां थी। उस गांव में स्थान की गवेषणा करते–करते शाम के चार बज गए, पर स्थान नहीं मिला। आखिर एक किसान के खेत में एक कमरा दिखाई दिया। साध्वियों ने किसान से पूछताछ की। किसान ने कहा – महाराज! आप यहां रह जाइए, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर इस एरिया में चोरों का बहुत भय है। मैं रात को यहां नहीं रह सकूंगा। सुबह होते–होते मैं आपको संभाल सकता हूं। उस कमरे के खिड़कियां, दरवाजे सब मिलाकर सात थे। अन्य स्थान न मिलने के कारण साध्वियों को वहीं रुकना पड़ा।

साध्वियों के साथ दो काशीद थे। वे बाहर बैठ गए और चिमनी का मंद–सा प्रकाश कर लिया। रात्रि के लगभग आठ बजे होंगे, एक साथ कई जूतों की आवाज सुनाई दी। उन्होंने सभी साध्वियों को आगाह करते हुए कहा – सातों दरवाजे और खिड़कियां इस तरीके से बन्द करलो कि सहजतया खुल न पाएं। साध्वियों ने दरवाजे बन्द किए। सब दरवाजों पर बड़े–बड़े पत्थर लाकर रखे ही थे कि कड़कती आवाज सुनाई दी। उन्होंने जोर से काशीदों को पूछा – तुम कौन हो?

दोनों काशीद बोले – भाई! हम पैदल चलने वाले राही हैं। यहां रात–रात के लिए विश्राम लिया है।

चोर – भीतर कमरे में कौन है?

काशीद – भीतर जैन साधु है।

चोरों ने एक साथ कड़कती आवाज में पूछा – औरतें है या मर्द। रात्रि का शांत वातावरण था, सारी बातें साध्वियां सुन रही थीं। साध्वी कानकंवरजी का जोश जाग पड़ा। अन्दर से सिहनी की भांति दहाड़ती हुई बोली – आप चोर/डाकू या बदमाश हैं, हमने अच्छी तरह जान लिया है और हम जैन साध्वियां हैं, यह आपने समझ लिया है।

इतना सुनते ही वे सब एक साथ बोल पड़े – किंवाड़ खोलिए।

साध्वी कानकंवरजी – दरवाजा नहीं खुलेगा।

चोर – कैसे नहीं खुलेगा, हम इसको तोड़ डालेंगे। इससे अच्छा है, आप खोल ही दीजिए।

साध्वीजी ने निडरता प्रदर्शित करते हुए कहा – कह दिया न यह दरवाजा नहीं खुलेगा।

आवाज सुनकर चोरों ने परस्पर बात की – आवाज से लगता है, भीतर औरते हैं। तोड़ो इन दरवाजों को, आज तो हम खोलकर ही रहेंगे। तभी काशीदों को लाठियां दिखाते हुए कहा – सच बताओ भीतर कौन है?

काशीदों ने भय से कांपते हुए कहा – हम सच बोल रहे हैं, कमरे में जैन साध्वियां ही ठहरी हुई हैं। तभी एक चोर बोला – सफेद कपडे पहने, मुंह पर कपडा लगाए औरतों को हम कई बार देखते हैं, वे ही होंगी। पहले इन दोनों व्यक्तियों को यहां से हटाओ। तभी दूसरा चोर बोला – इन्हें भगाने की गलती मत करना। ये गांव में जाकर लोगों में हो हल्ला कर देंगे और वे यहां आ जाएंगे। इनके हाथ पैर बांधकर एक जगह बैठा दो। चोर सब मिलकर कभी किसी कपाट को तोड़ने की कोशिश करते और कभी किसी दूसरे कपाट को, पर सभी साध्वियों ने हर कपाट को बन्द कर पत्थर रख दिए और स्वयं बैठ गई। कुछ साध्वियां नमस्कार महामंत्र और कुछ साध्वियां ऊँ भिक्षु का जप करने लगी। साध्वी कानकंवरजी ने सबके मनोबल को इतना सबल बना दिया कि वे सब अभय–सी बनी रही और सब में एक नई शक्ति का संचार–सा हो गया। इधर चोरों ने मिलकर अपनी पूरी शक्ति लगाई, पर सफलता नहीं मिली। आखिर में यह कहकर दौड़ गए कि लगता है इन्होंने जादू कर रखा है।

चोर हार मानकर चले गए। देव गुरु और धर्म के प्रताप से साध्वियों के शील की रक्षा हुई। दूसरे शब्दों में कहें तो सत्य और शील की विजय हुई। प्रातःकालीन प्रतिक्रमण कर साध्वियों ने दरवाजा खोला तब साध्वियों ने काशीदों को बन्धे हुई देखा। साध्वी कानकंवरजी ने पास जाकर काशीदों को दर्शन दिए और उनका मनोबल बढाने का प्रयत्न कर ही रही थी, तभी खेत का मालिक वह किसान भाई पहुंच गया। किसान काशीदों की स्थिति देखकर समझ गया कि यहां रात को चोर आए हैं। काशीदों को बन्धन मुक्त कर किसान भाई बोला – महासतीजी! अच्छा हुआ, इन दोनों भाइयों ने उनका सामना नहीं किया, अन्यथा वे कुछ भी कर सकते थे। आपको तकलीफ हुई, इसका मुझे अफसोस है। साध्वी कानकंवरजी ने कहा – तुमने हमको जानकारी दे दी, यह अच्छा किया। हम जागरूक हो गए, इसीलिए बचाव हो गया।

यों बदला चोरों का मन

मालवा के मन्दसौर से साध्वी कानकंवरजी ने विहार किया। उस दिन का प्रवास कचनारा गांव में था। वहां के कृषिकार को मकान में ठहरने के लिए पूछा तो वह बोला – हम परिवार के सभी सदस्य धान काटने के लिए खेत में जाएंगे। अगर आप हमारे घर की सुरक्षा कर सके, तो ठहर सकती है। साध्वी कानकंवरजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा – हम जिस कमरे में या मकान के जिस भाग में ठहरेंगी वह आपको संभालाकर विहार करेंगी। पूरे मकान की सुरक्षा का दायित्व हम कैसे ले सकती हैं? कृषिकार ने मकान के बाहर का भाग साध्वियों को ठहरने के लिए दे दिया और मकान को ताला लगाकर सभी सदस्य खेत में चले गए। उसके मन में आया साधु के रहते यहां कौन आ सकता है।

साध्वियां दिनभर अपनी जीवन चर्या के साथ जन सम्पर्क में व्यस्त रही। रात्रि के समय प्रतिक्रमण कर स्वाध्याय ध्यान जप करने में लीन हो गई। अर्ध रात्रि के करीब उनको लगा, कोई मुख्य द्वार का ताला तोड़ रहा है। साध्वीजी ने उठकर देखा, तीन चोर खड़े हैं। साध्वी कानकंवरजी ने सोचा आज तो इन चोरों को चोरी की आदत छुड़ानी है और कृषिकार ने जो विश्वास किया है, उसे अखण्ड कैसे रखा जाए? चोरी के व्यसन से मुक्त करने का उद्देश्य बनाकर साध्वी कानकंवरजी ने पूछा – भाई! तुम लोग कौन हो? चोरों ने प्रतिप्रश्न करते हुए कहा – तुम कौन हो?

साध्वी कानकंवरजी ने शांतभाव से कहा – हम जैन साध्वियां हैं।

चोर – तुम साधु हो अच्छी बात है, पर चुपचाप बैठी रहो, हमारे काम में बाधक मत बनना, अन्यथा ठीक नहीं रहेगा। साध्वीजी ने सोचा अभी उपदेश देने का समुचित समय नहीं है। यदि हम कुछ भी बोलेंगी तो ये लोग ज्यादा उग्र बनकर सामने आएंगे, इसलिए अभी मौन रहना ही ठीक है, क्योंकि अभी ये लोग लोभ की जघन्य वृत्ति की कैद में गिरफ्त है। वे सभी साध्वियां एक साथ मधुर औपदेशिक गीतों का संगान करने लगी। संगीत के माधुर्य रस ने जैसे उनको बांध लिया। तस्कर सरस स्वर लहरी सुन मुग्ध से हो गए और वे चोरी न कर आध्यात्मिक गीतों को सुनने लगे। उनका रूझान देखकर अब साध्वी कानकंवरजी ने स्तेय वृत्ति पर प्रहार करते हुए उपदेश प्रारंभ किया। साध्वीजी के हृदयस्पर्शी विचारों का चोरों पर जादू का सा प्रभाव हुआ।

चोरों ने अपनी विवशता प्रस्तुत करते हुए कहा – महाराज! आप जो बात

बता रहे हैं, बिल्कुल सही है, लेकिन हमारी भी समस्या है। हमारे पास रहने के लिए मकान नहीं है और खाने के लिए दाना नहीं है। जब हम अपने बच्चों को भूख से बिलबिलाते देखते हैं, तब हमारा उचित अनुचित का विवेक खत्म हो जाता है। हम लोग अधिकतर खेतों से अनाज चुराते हैं। कभी–कभी सूने घरों में भी घुस जाते हैं। आज आपके सामने हम संकल्प करते हैं कि –

- जहां साधु साध्वियों का प्रवास होगा, उस मकान में चोरी नहीं करेंगे।
- हम एक महीने में दो बार से अधिक चोरी नहीं करेंगे।
- हम खाद्य पदार्थ के सिवाय अन्य पदार्थों की चोरी नहीं करेंगे।
- आज आप यहां प्रवास कर रही है, इसलिए इस घर का तिनका भी चोरी करके नहीं ले जाएंगे।

साध्वी कानकंवरजी का साहस और समयज्ञता का ही प्रभाव था कि चोर घर में घुसकर भी चोरी किए बिना चले गए और मकान मालिक कृषिकार का विश्वास भी खण्डित नहीं हुआ।

क्षमा वीरस्य भूषणम्

साध्वी कानकंवरजी सं. 1956 का चातुर्मास मध्यप्रदेश के रतलाम शहर में कर रही थी। एक दिन प्रातः पंचमी समिति के लिए (शौचार्थ) वे जंगल में गईं। वहां एक बदमाश युवक उनके सौन्दर्य से प्रभावित हो उनके पीछे हो गया। उसने साध्वीजी को सुनाकर कहा – "मैं आ रहा हूँ" सुनते ही साध्वी कानकंवरजी ने सिंह गर्जना करते हुए कहा – खबरदार! अगर हमारे नजदीक आ गया तो.....। यह कहकर साध्वियां तेज गति से आगे बढ़ने लगी। तभी वह बदमाश आगे जाकर एक लकीर खींचकर बोला – इसको लांघकर नहीं जा सकती।

साध्वीजी ने तेज आवाज में कहा – हम तो हमारे गुरुजी द्वारा बनाई गई मर्यादा की लकीरों पर चलते हैं।

तभी उसने पुनः धमकी देते हुए कहा – यदि इस लकीर का उल्लंघन करके जाओगी, तो बिल्ली का मांस खाओगी।

साध्वीजी ने प्रतिवाद करते हुए – मैं ऐसी धमकियों से डरने वाली नहीं हूँ। बदमाश ने डराते हुए कहा – यह मेरी मंत्रित लकीर है, अतः जाओगी तो मर

जाओगी।

इतना सुनने पर भी साध्वी कानकंवरजी का धैर्य वैसा का वैसा बना रहा और अपनी गति से चलती रहीं। वह बदमाश बहुत खराब मनोवृत्ति वाला था। उसकी एक भी युक्ति सफल नहीं हो रही थी, इसलिए वह क्रोध से तमतमा उठा। तत्काल उसने अपने पैरों में पहने जूते हाथ में लिए और एक जूता कान सती पर फेंककर भाग गया। साध्वी कानकंवरजी ने पहले दिन लुंचन कराया था, इसलिए मस्तिष्क के पिछले भाग में जबरदस्त चोट लगी। उनको क्षणिक बेहोशी–सी आ गई। योग की बात उस दिन वे दो ही साध्वियां थी। वे प्रायः पांचों साध्वियां एक साथ ही जंगल जाती थी। पहले दिन तीन साध्वियों के उपवास था, अतः वे दो ही साध्वियां थी। उसकी नादानी पर उन्होंने न हो हल्ला किया और न उनके चेहरे पर क्रोध भाव उभरा। सचमुच क्षमाशीलता महानता की पहचान होती है। फिर भी आसपास खड़े लोग वहां इक्कट्ठे हो गए और उस व्यक्ति को उन्होंने पकड़ लिया। अब वे उन्हें मारने पीटने लगे और खूब प्रताड़ित किया। सूचना मिलते ही साध्वी छोगांजी भी वहां पहुंच गई थी। साध्वी कानकंवरजी छोगांजी दोनो ने भाइयों को समझाया – यह तो नादान है, इसने गलती की है। पर अब आप गलती मत कीजिए। थोड़ी देर बाद वह भाई भी आकर गिड़गिड़ाने लगा और गलती के लिए क्षमा मांगने लगा। साध्वियों ने सरल भाव से खमत खामणा कर लिया। उस चातुर्मास में रतलाम की आम जनता में इस घटना की चर्चा रही और जैन साधुओं की साधना ने उनको प्रभावित किया। वे परस्पर बात करते, जैन साधु कितने क्षमाशील होते है, जो अपराधी को भी माफ कर देते हैं।

जब देवता ने भविष्यवाणी की

साध्वी कानकंवरजी ज्ञानाराधना में और स्वाध्याय अप्रमत्त रहने वाली साधिका थी। वे प्रतिदिन नियमित रूप से चार हजार गाथाओं का स्वाध्याय करतीं। प्रातः तीन बजे उठकर कंठस्थ ज्ञान का पुनरावर्तन करती, यही कारण था कि उनका कंठस्थ ज्ञान बहुत पक्का था और स्मरण शक्ति बेजोड़ थी। उन्होंने अपने जीवन में अनेक बार आगम बत्तीसी का पारायण किया। सं 1957 का पावस पेटलावद में बिता रही थी। एक बार उन्हें लगा नींद नहीं आ रही है, वे ग्यारह बजे तक रात में स्वाध्याय करती रही। उनकी सहगामी सभी साध्वियों को नींद आ चुकी थी। उनके कानों में अकस्मात शब्द टकराए – 'साध्वी कानकंवरजी! ध्यान से सुनो'

उन्होंने अपने चारो ओर देखा, कोई दिखाई नही दिया। मन में प्रश्न उठा – कौन है? यह किसकी आवाज है? वे खड़ी हो गई और गहराई से चारो ओर देखा।

तभी पुनः आवाज आई – मैं तुम्हारा संसारपक्षीय दिवंगत भाई खेमराज हूँ। मैं कई बार आपकी सेवा में आया हूँ। कई बार जब जब आप मार्ग में चलते रास्ता भूले हैं, मैं सर्प के रूप में आया और रास्ता बताने का प्रयत्न किया। कई बार अप्रत्यक्ष रूप में सहायता की है। आज एक विशेष बात बताने आया हूँ। बात यह है कि सप्तमाचार्यश्री डालगणी के पश्चात शासन नायक छापर वाले कालूजी होंगे।

इतना कहकर देव मौन हो गए। यह भविष्य वाणी उनके लिए इतनी आह्लाद दायक थी कि वे खुशी बांटे बिना न रह सकी। उन्होंने तत्काल गहरी निद्रा में सोई मातुश्री छोगांजी को जगाया और सारी बात बताई। धीर गंभीर मातुश्री छोगांजी ने कहा – देख, देववाणी सत्य ही हो, यह जरूरी नहीं है, इसलिए यह बात किसी के सम्मुख मत कहना। दूसरी बात, हम तो मंगल कामना करते है, हमारे गुरु आचार्यश्री डालगणी कोड़ दिवाली राज करे और हम उनके संरक्षण में संयम साधना करते रहें। साध्वी कानकंवरजी ने कहा – मेरी भी यही मनोभावना है, पर आपको जैसा मैंने सुना बताया है।

उस चातुर्मास में आचार्यवर के निर्देशानुसार मालवा की वैरागिन को साध्वी कानकंवरजी ने संयम प्रदान किया। झखनावद निवासिनी साध्वी हेतुजी को सं. 1957 फाल्गुन वदि 5 को दीक्षा प्रदान की। सेठिया संग्रह के अनुसार उन्होंने दो बहिनों को दीक्षित किया, पर एक का नाम उपलब्ध नहीं है।

प्रभावशाली वाक् कौशल

मालवा यात्रा के दौरान एक बार साध्वी कानकंवरजी का मंदिरमार्गी जैन सम्प्रदाय के सन्त रामप्रतापजी से मिलना हुआ। वार्तालाप के मध्य उन्होंने तेरापंथ के मंतव्य, आचार्य परम्परा, मर्यादा और व्यवस्था के विषय में कौशल के साथ प्रभावक प्रस्तुति दी। जब उन्होंने डालगणी के निर्वाचन और तेजस्वी अनुशासन तथा संघ संगठन के विषय में विस्तार से जानकारी दी, मुनिजी अत्यधिक प्रभावित हुए। साध्वी कानकंवरजी उस युग की अच्छी विदुषी और व्याख्यान कला में निपुण साध्वी थी। वे सप्तमाचार्य डालगणी एवं कालूगणी के युग में प्रायः साधुओं के स्थान पर मध्याह्न का व्याख्यान देती थी। यह क्रम वर्षों तक चला।

डाकुओं को चरणों में झुकाया

मालवा यात्रा सानन्द सम्पन्न कर सं. 1957 के मर्यादा महोत्सव पर गुरुदर्शन कर साध्वी कानकंवरजी का रोम–रोम पुलकित हो उठा। श्रद्धास्पद डालगणी ने

उनका सं. 1958 का चौमासा श्रीडूंगरगढ़ के लिए घोषित किया। गुरु–सेवा का लाभ उठाकर उन्होंने श्रीडूंगरगढ की ओर विहार किया। यद्यपि उनकी जन्मभूमि श्रीडूंगरगढ नही थी, पर उनके परिवार और ननिहाल दोनों पक्ष के सभी लोग वहां आकर बस गए, तब इस माने में उनके पूर्वजों का वहीं गांव हो गया, इसलिए वे भी श्रीडूंगरगढ की कहलाने लगी। दीक्षित होने के पश्चात श्रीडूंगरगढ़ चौमासा करने का पहला ही अवसर था। परिवार के सभी सदस्यों में अच्छा उत्साह था अतः रास्ते की सेवा में अच्छी संख्या में बहन भाई पहुंच गए। रीड़ी से विहार कर साध्वी कानकंवरजी ढाणी की ओर कदम बढा रही थी। उनके साथ कुछ बहिनें भी चल रही थी। उस समय की परम्परा के अनुसार बहिनें सोने के जेवर अधिक पहनती थी। थोड़ी–सी दूर ही चले थे कि एक कड़कती आवाज ने उन सब पैरों को जैसे बांध दिया। उन्हें आवाज सुनाई दी – ठहर जाओ। चारों ओर देखा तो आठ दस व्यक्ति मुंह बांधे हुए, केवल आंखें खुली थी, कन्धों पर बन्दूके लिए सामने खड़े थे। साध्वीजी की समझ में अच्छी तरह आ गया कि – ये डाकू हैं। बहिनों को अपने पीछे खड़ी कर साध्वीजी कुछ बोलने वाली थी, उससे पहले ही एक डाकू गरज उठा – खबरदार जो आगे बढे तो. ...। तुम लोगों के पास जो कुछ भी है, यहां रख दो, वरना हम जबरन छीन लेंगे।

साध्वी कानकंवरजी दाठीकता से थोड़ी आगे बढी और ललकारते हुए बोली – हम साध्वियां हैं, हमारे पास क्या होगा। हमारी सेवा करने का उद्देश्य लेकर जो बहिनें आई हुई है, उन्हें लूटना क्या आपको शोभा देगा। आप लोगों को विचार करना चाहिए, साध्वियों से ऐसा व्यवहार करना कितना जघन्य काम है।

उन पर किंचित भी असर नहीं हुआ। वे एक दूसरे को संकेत करते हुए छीना झपटी पर उतर आए। विषम भयावह स्थिति को देख साध्वी कानकंवरजी एक बार असमंजस में पड़ गई। दो क्षण बाद उनके दिमाग में बिजली–सी कौंधी। एक बार ध्यान से देखूं – कोई जाना पहचाना व्यक्ति है क्या? सचमुच गहरी दृष्टि डालते ही उनकी समझ में आ गया। डाकुओं के सरदार को पहचान कर कान सती बोली – खंगजी! यह क्या? बाबे से भी डांई? हद हो गई – पहचानो मैं कोन हूं!

अपरिचित व्यक्ति के मुंह से अपना नाम सुन डाकुओं का सरदार सकते में आ गया। खंगजी ने अपना मुंह खोला गौर से देखा और साध्वीजी को पहचान लिया। शर्म से नीचा मुंहकर वे बोले – बाई! मुझे ज्ञात नहीं था। साध्वीजी ने फटकारते हुए कहा – क्या तुम्हें यह भी दिखाई नहीं दिया कि तुम्हारे सामने जैन साध्वियां है।

खंगजी ने विनम्रता से वन्दना करते हुए कहा – बाई हमारी बड़ी भूल हो गई, आप हमको माफ करो।

साध्वी कानकंवरजी परिचय की परतों को खोलते हुए बोली – खंगजी! याद करो, जब मैं छोटी–सी बच्ची थी, तब कितनी बार गोद में बिठाया और खिलाया था। एक बार आपकी गोद में बैठी थी तब मेरा पैर धुनी में जल गया.....कुछ याद आया क्या? सालासर गांव के सेठ लच्छीरामजी के यहां आपका आना जाना था। उनके आसामी ऐसा जघन्य और नीच काम कर सकते हैं? क्षत्रिय होकर आपने ऐसा कार्य अपनाया है?

एक बार खंगजी ने पुनः साहस किया – बाई! क्षमा करो। साध्वी कानकंवरजी ने कहा – खंगजी! इस भयंकर भूल का प्रायश्चित यही होगा कि जीवनभर के लिए इस अमानवीय कृत्य को छोड दीजिए और अपने साथियों को भी समझाइए।

खंगजी ने जीवन भर के लिए संकल्प कर लिया कि आज के बाद कभी डकैती/चोरी जैसा घृणित और अमानवीय कृत्य कभी नहीं करेंगे।

साधना का अचिन्त्य प्रभाव

साध्वी कानकंवरजी मेवाड़ में विहरण करती करती पुर गांव में चातुर्मास करने गईं। वहां के कोठारी परिवार की एक बहिन उपद्रव ग्रस्त थी, जिससे परिवार के सभी सदस्य अत्यधिक परेशान थे। वह सुधबुध रहित हो जाती। खाने पीने की मात्रा का भी उसको होश नहीं रहता। पूरे दिन गालीगलौज करती अथवा अंटसंट बोलती रहती। परिवार के सदस्यों ने बहुत–बहुत प्रयत्न किए पर सफलता नहीं मिली। एक दिन कोठारी परिवार के सदस्य साध्वी कानकंवरजी के पास आए और अपनी व्यथा सुनाई। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि आपकी साधना के प्रभाव से और मंगल पाठ श्रवण से संभव है, हमें इस परेशानी से राहत मिल जाए। साध्वीजी उनकी प्रार्थना पर उनके घर गईं। उस समय वह बहिन अंटसंट बोल रही थी, पर साध्वी कानकंवरजी को देखते ही चुप हो गई। उन्होंने बहिन को समझाने का प्रयत्न किया। तीन दिन तक लगातार उसको मंगल पाठ सुनाया। तीन दिन के बाद वह सदा–सदा के लिए उस उपद्रव से मुक्त हो गई और घर का वातावरण विघ्न बाधा रहित शान्त सुखद बन गया। यह था साध्वी कानकंवरजी की साधना का अचिन्त्य प्रभाव। जब साध्वीजी उनके पास होती, वह बहन कांपने लग जाती और कहती इनका तप तेज मेरे से सहन नहीं होता, इसी कारण से वह स्वस्थ हो गई।

नागदेवता गोद में आ गया

साध्वी कानकंवरजी 1960 का चातुर्मास कालू गांव में व्यतीत कर रही थी। वे जहां भी जातीं व्याख्यान कौशल, जन सम्पर्क और पुरुषार्थ से जन–जन को आकृष्ट कर लेतीं और उत्साहमय, उमंगपूर्ण वातावरण का निर्माण कर देती। उनकी गायन कला सबको लुभा लेती। रात्रि के समय वे रामायण पर व्याख्यान देती थी। जैन अजैन सभी लोग प्रवचन का लाभ लेते। रात्रि का समय था, उस समय बिजली थी नहीं, लालटेन का हल्का–सा प्रकाश होता था। साध्वी कानकंवरजी व्याख्यान तल्लीनता के साथ दे रही थी, अचानक एक काला सर्प उनकी गोद में आकर सर से निकल गया। उन्होंने न ओह किया और न भय। वे तो जिस शान्त भाव से बैठी थी, उसी भाव से बैठी रही और व्याख्यान देती रही। उन्होंने किसी को आभास तक नहीं होने दिया। पास में बैठी साध्वियों और बहिनों को पता चला तब आपने उनको शान्त रहने का संकेत किया, अन्यथा व्याख्यान के बीच भगदड़ मच जाती और अन्धेरे में भगदड़ होने से कितना नुक्शान हो सकता है? कल्पना की जा सकती है। कुछ भाइयों ने अपनी आंखो से सर्प देखा, वे उनकी निर्भयता और निडरता से बहुत–बहुत प्रभावित हुए।

संगीत की सुमधुर स्वर लहरी से पशु को प्रभावित किया

सं. 1961 में उनका चौमासा राजगढ था। वहां के श्रावक नानगरामजी सरावगी ने आग्रह भरी अर्ज की कि आप साध्वी छोगांजी को साथ लेकर एक बार मेरे घर गोचरी पधारो। साध्वीजी गोचरी के लिए रवाना हो गई। एक छोटी संकरी गली से निकल रही थी। उसमें अचानक दो गउएं लड़ती–लड़ती आ गई। अब क्या करें? रास्ता न पाकर साध्वीजी एक तरफ खड़ी हो गई और मधुर स्वर लहरी में गीतिका गाने लगी। गउएं कुछ देर लड़ती रही फिर शान्त होकर संगीत सुनने लगी। साध्वीजी तन्मय बनी वही बैठी रही। तभी गोचरी की भावना भाते–भाते नानगरामजी आगे बढे, गीत सुनाई दिए। उन्होंने गायों को इधर–उधर कर देखा तो साध्वी कानकंवरजी और छोगांजी दोनों खड़ी दिखाई दी। तब मातुश्री ने सारी घटना बताई। साध्वी कानकंवरजी के चेहरे पर न भय की शिकन थी और न चंचलता। वह अपनी भक्ति में मस्त थी।

मृत्यु से भी नहीं डरी

एक बार सती कान बीदासर में प्रवास कर रही थी। इससे पूर्व उनको कई

बार भय की अनुभूति होती और कई बार छुटपुट उपद्रव का भी सामना करना पड़ा। वहां एक रात्रि में साध्वी कानकंवरजी को पीठ में वेदना का अनुभव हुआ और देखा तो अचानक दो गांठे दिखाई दी। उसी समय उन्हें भयभीत करने वाले शब्द भी सुनाई दिए। आसपास बैठी साध्वी भय से थर–थर कांपने लगी लेकिन साध्वी कानकंवरजी शान्त अभीत अपनी जप साधना में लीन बैठी रही। तभी मातुश्री छोगांजी तथा मीरांजी ने पास आकर पूछा – क्या हुआ? क्या बात है? साध्वी कानकंवरजी ने शांत भाव से मातुश्री से कहा – आप जानती ही है कि कभी–कभी उपद्रव हो जाता है। आज आवाज आई कि कल तुम्हारी मृत्यु है। मैंने प्रत्युत्तर में कह दिया – इसमें डर की क्या बात है, यहां कोई अमर है ही नहीं। तुम कितना ही धमकाओ, मैं घबराने वाली नहीं हूँ। फिर साधु का समाधि–मरण तो सर्वोत्तम है, मुझे चिन्ता किस बात की है? सभी साध्वियां यह बात सुनकर उदास खिन्न हो गई और सभी पास में बैठकर भजन स्मरण करने लगी।

सूर्योदय होते होते साध्वी कानकंवरजी को तेज बुखार हो गया। अब तो सभी साध्वियों की धड़कने तेज हो गई और अनिष्ट की संभावना से घबराने लगी। साध्वी कानकंवरजी अपने अंतर्मुखी मनोवृत्ति का परिचय देती हुई बोली – देखो, यदि मेरा आयुष्य इतना ही है, तो बचुंगी कैसे? यदि आयुष्य है, तो कोई मारने वाला नहीं है, पर आप सब मुझे खूब धर्माराधना कराओ। आज मैं उपवास करूंगी, उन्होंने उस दिन भोजन का प्रत्याख्यान कर लिया और उनके साथ वाली सभी साध्वियों ने उपवास किया। बारह बजे तक सभी जप, ध्यान, स्वाध्याय में लीन थी। तभी वहां एक काला सांप आया और फण करके सामने बैठ गया। उसने तीन बार फण को हिलाकर जमीन पर पटका। मातुश्री आदि सभी साध्वियां वहां उपस्थित थी। सबको लगा अभय की साधिका के सामने नागराज अपना सिर जमीन पर लगाकर क्षमा मांग रहा है। अध्यात्म की अनन्त शक्ति जिस आत्मा में होती है, वह अजेय होती है। उसके सामने देव दानव सब हार मान लेते हैं।

डालगणी का अनन्य कृपाभाव

आचार्यश्री डालगणी की साध्वी कानकंवरजी पर अच्छी कृपा थी। जब जब मर्यादा महोत्सव पर कान सती गुरुकुलवास में आती, कृपा पूर्ण शब्द फरमाते। सं. 1965 के मर्यादा महोत्सव के अवसर पर एक दिन आचार्यवर की प्रसन्न मुद्रा देखकर साध्वी कानकंवरजी ने वन्दना कर निवेदन किया – गुरुदेव! ये साध्वियां और पुस्तकें आपके चरणों में सदा के लिए समर्पित करती हूँ।

डालगणी ने पूछा – क्यों, क्या बात है कानकंवरजी?

साध्वी कानकंवरजी ने विनम्र भाव से कहा – गुरुदेव! मैंने श्रीचरणों में प्रार्थना की है कि मुझे एक सहयोगिनी साध्वी की जरूरत है, पर आपने अभी तक गौर नही फरमाया। मैं बार–बार निवेदन करना नहीं चाहती। इसलिए मैं अपना सिंघाडा आपके चरणों में समर्पित करना चाहती हूँ।

आचार्यवर ने साध्वीजी की विनय भरी स्पष्ट–स्पष्ट बात सुनीं और मुस्कराते हुए कहा – लो आज तो अपनी पुस्तकें ले जाओ, इस बार तुम्हारी आवश्यकता की पूर्ति करने का भाव है।

बसंत पंचमी के दिन नवदीक्षिता साध्वी झमकूजी को आचार्यश्री ने साध्वी कानकंवरजी के साथ वंदना करवाई। सुयोग्य मनोनुकूल गुरुकृपा का प्रसाद प्राप्त कर साध्वी कानकंवरजी ने अतिरिक्त आह्लाद की अनुभूति की। यह घटना जब जब स्मृति में आती, वे हर्ष विभोर होकर उल्लेख करतीं।

वैसे डालगणी जब जब नए व्याख्यान आदि की हस्तलिखित प्रतियां आतीं, साध्वी कानकंवरजी को विशेष रूप यह कहकर दिलाते कि तुम मधुर व्याख्यानी हो, इनका अच्छा उपयोग करोगी।

इसी प्रकार समय–समय पर धर्मोपकरण वितरित करते समय उनकी अपेक्षा को ध्यान में रखते और जितना संभव बनता, पूर्ति करवाने की कृपा करते।

मौसी का मां से बढकर सम्मान

मातुश्री छोगांजी और साध्वी कानकंवरजी का आपस में मौसी–भानजी का सम्बन्ध था, पर उनका व्यवहार सदा मां–बेटी जैसा था। मातुश्री का उनके प्रति आत्मीय वात्सल्य भाव था और साध्वी कानकंवरजी उनके प्रति अत्यधिक सम्मान रखती थी। वे उनके मुंह से निकले एक–एक शब्द को महत्त्व देती थी। एक बार साध्वी कानकंवरजी पेटलावद चातुर्मास कर थली जाते समय पुर गांव में ठहरी। दूसरे दिन विहार करना था, पर रात्रि में एक श्रावक के घर वृद्धा माता का देहान्त हो गया। लोगों ने प्रार्थना की कि आपका विहार एक बजे के लिए घोषित है, यदि आप शाम तक कर सके तो हमारे लिए सुविधा रहेगी।

साध्वी कानकंवरजी मातुश्री के उपपात में पहुंची और निवेदन किया – यहां के लोग शाम के विहार के लिए कह रहे हैं, क्या करें? मातुश्री बोली हमारा विहार

का समय निश्चित है, इसलिए विहार उसी समय करना चाहिए। कान सती ने मातुश्री के निर्णय का सम्मान किया और ठीक एक बजे विहार कर दिया। उन्होंने मातुश्री के कथन पर प्रतिप्रश्न तक उपस्थित नही किया।

दूसरी ओर मातुश्री के मन में भी साध्वी कानकंवरजी जो भी बात कहतीं, सहजता से जंच जाती और कानकंवरजी के प्रति हार्दिक वात्सल्य भाव रखती। एक बार मंत्री मुनि और आचार्यश्री कालूगणी के मध्य प्रसंग चल रहा था कि साध्वी कानकंवरजी हर दृष्टि से सक्षम है, उन्हें बहिर्विहार भी कराया जा सकता है। इस प्रसंग को कालूगणी ने एक दिन मातुश्री छोगांजी के सामने दोहराया – छोगांजी! तुम तो अब हमारे पास यहीं रहोगी, पर कानकंवरजी को अलग भेज दें तो? तत्काल मातुश्री जोश के साथ बोल उठी – गुरुदेव! साध्वी कानकंवरजी को अलग बहिर्विहार में भेज दें, यह कैसे हो सकता है। ग्यारह वर्ष तक तो वह मुझे लिए–लिए घूमी और अब उसको अलग भेजें तो पहले छोगांजी जाएगी फिर कानकंवरजी। इस निर्भीक स्पष्टोक्ति से स्वयं आचार्यप्रवर और मंत्रीमुनि एक दूसरे की ओर देखते हुए मुस्कराने लगे।

एक बार आचार्यश्री कालूगणी बीदासर के निकटवर्ती गांवों में विहार करवा रहे थे। उस समय साध्वी कानकंवरजी ने मातुश्री छोगांजी से कहा – आप आस–पास के क्षेत्रों में धीरे–धीरे विहार कर पधार जाए तो आपकी आचार्यवर की सेवा होती रहेगी। साध्वी कानकंवरजी की बात मातुश्री ने आचार्यवर के सामने रखते हुए पूछा – गुरुदेव! मैं भी आपके साथ चलूं?

आचार्यवर ने कहा – यह बात सही है कि हम आसपास के क्षेत्रों में ही विहरण करेंगे और तुम्हारी सेवा भी हो जाएगी, पर लगता है तुम्हें बीदासर वाले जाने नहीं देंगे।

मातुश्री ने कहा – मैं उन्हें ज्ञात ही नहीं होने दूंगी, चुपचाप विहार कर दूंगी। आचार्यवर चाड़वास पधारे, उस दिन बीदासर के लोग चाड़वास गए हुए थे, पीछे से विहारकर माजी महराज बेनाथा पधार गए। यह बात जब श्रद्धानिष्ठ श्रावक शोभाचंदजी बैंगानी को ज्ञात हुई, वे सीधे चाड़वास गए और बोले – यह क्या किया? माजी महाराज को विहार करा दिया। उन्होंने अपने अंतस की पीड़ा व्यक्त करते हुए कहा – हणुतै री मां मरी जद भी इत्ती दोरी कोनी लागी, जित्ती आज लागी।

वे उसी समय बेनाथा पहुंचे और बोले – साध्वी कानकंवरजी! यह सारा आपका काम है। माजी महाराज तो सरल है। आपने कह दिया और उन्होंने मान लिया। मैं दरवाजे के बीच में लेट रहा हूँ, मेरी छाती पर पैर धरकर कोई जाए तो जा सकता है। फरमाओ, आपको किधर जाना है। अपने भक्त की भावना नहीं ठुकरा सके और माजी महाराज साध्वी कानकंवरजी सहित सभी वापिस बीदासर आ गए।

हमारे कालूजी को तो बख्सीस नहीं मिली

सं. 1966 के चातुर्मास में पूज्य डालगणी के स्वास्थ्य की स्थिति अच्छी नहीं थी। अस्वस्थता के समाचार पूरे देश में फैल चुके थे। उस वर्ष साध्वी कानकंवरजी बीकानेर में चौमासा कर रही थी। एक दिन मातुश्री ने किसी भाई से संवाद सुना कि डालगणीराज ने अमुक अमुक सन्तों को पुरस्कृत किया है। मातुश्री छोगांजी ने साध्वी कानकंवरजी से कहा – बहुत से साधु साध्वियों को आचार्यवर ने बख्सीसें की है, पर अपने कालूजी को तो कुछ नहीं मिला। साध्वी कानकंवरजी ने कहा – महासतीजी! आप कैसी बात कर रही है। उनको पुरस्कार क्या मिले, उनको वह मिलने वाला है, जिसमें पुरस्कार देने की सम्पूर्ण क्षमता होती है। आप देखना उनको तो सर्वोच्च पद मिलने वाला है। ऋजुमना मातुश्री यह बात सुनकर आश्चर्य से भर गई और बोली – क्या यह सही है?

श्रमशील कलाकार साध्वी

साध्वी कानकुमारीजी कलाकार और श्रमशील साध्वी थी। उनका हर कार्य कलात्मकता लिए होता था। बीकानेर चातुर्मास में अच्छी और पर्याप्त ऊन उपलब्ध हुई, जो रजोहरण बनाने में काम आने वाली थी। उन्होंने उस चातुर्मास में 11 रजोहरण बनाए। जहां एक रजोहरण बनाना भी श्रम और समय साध्य काम माना जाता है, वहां साध्वी कानकंवरजी ने एक साथ ग्यारह रजोहरण बनाकर, उत्साह, स्फूर्ति और कला–कौशल का परिचय दिया। उसके साथ रजोहरण निर्माण का कीर्तिमान स्थापित कर दिया, जो आज तक कीर्तिमान बना हुआ है। साध्वी कानकंवरजी जिस कार्य के करने का लक्ष्य बना लेती, उसे पूरा करके ही दम लेती थी, यह उनकी विरल विशेषता थी।

मातृत्व धन्य हो गया

सं. 1966 भाद्रव शुक्ला 12 के दिन सप्तमाचार्य डालगणी जैसे तेजस्वी महापुरुष इस संसार से विदा हो गए। तब संघ के आकाश में अष्टामाचार्य के रूप

में मुनि कालू, आचार्य कालू के रूप में देदीप्यमान भास्कर बनकर उदित हुए। आचार्यश्री डालगणी द्वारा अष्टम पट्ट पर कालूगणी का नाम पत्र में प्रच्छन्न रूप में लिखा गया था। जब ये शुभ समाचार मातुश्री ने सुने तब आनन्द का पार नहीं रहा। साध्वी कानकंवरजी भ्राता को आचार्यपद पर प्रतिष्ठित सुन झूम उठी। खुशियों के पंख–से लग गए। चातुर्मास समाप्त होते ही वहां से विहार किया और मिंगसर वदि 13 को सुजानगढ में आचार्यवर के साक्षात दर्शनकर मातृत्व धन्य हो गया, भागिनेयत्व पुलक उठा। मौसी भानजी एक टक श्रद्धाभिभूत हो गुरु दर्शन का अमृतपान करने लगी। उस समय ऐसा लगा मानो देवानन्दा भगवान महावीर के समक्ष खड़ी है।

आचार्यप्रवर ने मातुश्री के सम्मान को वृद्धिगंत करते हुए उन्हें समुच्चय के सर्व काम, वजन तथा भोजन विभाग की बख्सीस की तथा मातुश्री की सेवा में चार साध्वियों को नियुक्त किया। वे चार साध्वियां थी – साध्वी भत्तूजी, मुखांजी, प्रतापांजी और खूमांजी। साध्वी कानकंवरजी को भी आचार्यवर ने उसी दिन दोपहर में समुच्चय के कार्य तथा वजन की बख्सीस की। आचार्य तुलसी ने कालूयशोविलास में इस बात को प्रस्तुत करते हुए लिखा है –

कानकंवरजी नै गणी, तिण ही दिन दोफार।
वारी री बगसीस की और उतार्‌यो भार।।

सं. 1966 से मृगसर महीने से सं. 1970 तक चार चातुर्मास साध्वी कानकंवरजी ने गुरु सान्निध्य में किए। सं. 1971 का ग्यारह साध्वियों से बीदासर चौमासा किया। सं. 1971 में अष्टमाचार्य कालूगणी का चातुर्मास सुजानगढ था। मातुश्री आचार्यवर की सेवा में रही। चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद आचार्यवर ने मेवाड़ की ओर विहार किया तथा मातुश्री बीदासर स्थिरवासी बन गई। इसी वर्ष साध्वीप्रमुखा जेठाजी वृद्धावस्था के कारण विहार करने में अक्षमता महसूस करने लगी। इसलिए वे उसी वर्ष राजलदेसर में स्थिरवासी बन गई। साध्वी कानकंवरजी आचार्यवर की सेवा में मेवाड़ चली गई, तब से वे अनौपचारिक रूप से साध्वीप्रमुखा की भांति साध्वियों का काम करने लग गई।

साध्वीप्रमुखा का दायित्व

यद्यपि उस समय वे साध्वीप्रमुखा पद पर नियुक्त नहीं थी पर साध्वीप्रमुखा की अनुपस्थिति में आचार्यवर के निर्देश से साध्वियों से संबंधित सारे काम साध्वी कानकंवरजी सम्पादित करतीं।

कार्तिक शुक्ला 10 सं. 1981 में साध्वीप्रमुखा जेठाजी का राजलदेसर में स्वर्गवास हो गया। अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने संघ निष्ठा, आत्मनिष्ठा, आचारनिष्ठा, गुरुनिष्ठा और अनुशासननिष्ठा सम्पन्न साध्वी कानकंवरजी को साध्वीसमाज का दायित्व सौंपा। सं. 1981 कार्तिक शुक्ला 13 के शुभ दिन साध्वी कानकंवरजी साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। वे तेरापंथ धर्मसंघ में पांचवी साध्वीप्रमुखा थी।

वात्सल्य और अनुशासन का समन्वय

साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी के मन में साध्वियों के प्रति अत्यन्त वात्सल्य भाव रहता। जब कभी किसी भी साध्वी की गलती हो जाती, वे निष्पक्ष भाव से उसको गलती का अहसास कराती। समय पर कड़ा उपालंभ भी देती पर कुछ समय पश्चात अपने पास बुलाकर उन्हें वात्सल्य के साथ समझाती और जहां तक बन सकता सुधरने का मौका देती। सबसे महत्त्वपूर्ण बात साधना पथ में चलते चलते गलती हो जाती है, इस स्वीकृति के साथ आगे गलती न करने की चेतना जागृत करने का प्रयत्न करतीं।

साध्वी सोनांजी ने बहुत छोटी अवस्था में दीक्षा ग्रहण की। उस समय उनको अक्षर ज्ञान भी नहीं था। साध्वीप्रमुखा ने एक दो लाइन की गाथा कंठस्थ करने के लिए कहा। उनको लगा अक्षर परिचित हो गए, याद कर लूंगी। थोड़ी देर बाद वे सब कुछ भूल गई। बाल साध्वी के मुंह पर उदासी छा गई। पास में बैठी प्रौढ़ साध्वी ने पूछा, क्या बात है? साध्वीजी ने सारी स्थिति जानकर मजाक के मूड में अर्थहीन पद्य सिखा दिया। साध्वी सोनाजी ने वही सीख लिया। इस बार भूल न जाऊं, यह भय था, अतः पक्का याद कर लिया।

जब साध्वीप्रमुखाजी स्थान पर आईं, साध्वी सोनांजी को देखते ही पूछा – बोलो, गाथा याद कर ली। उन्होंने बड़े उत्साह के साथ जो उटपटांग पद्य सिखाया था, बोल दिया। तत्काल अनुशासनात्मक शब्दों में पूछा, यह पद्य किसने सिखाया, उन्होंने सरलता से कहा – साध्वी किस्तुराजी राजलदेसर ने। साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने उनको बुलाकर दण्ड देते हुए कहा – बाल साध्वी को अच्छे संस्कार देने चाहिए या. .....। सब साध्वियों को शिक्षा देते हुए कहा – बाल साध्वियों को अच्छी शिक्षा देनी चाहिए।

प्रेरणा और प्रोत्साहन

साध्वी समाज में उस समय शिक्षा के प्रति जागृति के भाव नही थे। मात्र कण्ठस्थ ज्ञान की परम्परा चलती थी, उसमें भी शुद्धाशुद्धि की चेतना भी नहीं थी। पढ़ाई जीवन के लिए आवश्यक है, यह सोच राजस्थानी महिला–समाज से कोसों दूर थी। इसलिए ज्ञान की न पिपासा थी, न रूचि थी। बाल साध्वियों को जब–जब साध्वीप्रमुखाश्रीजी दशवैकालिक, थोकड़े अथवा व्याख्यान आदि सीखने की प्रेरणा देतीं, वे उससे बचने का प्रयत्न करतीं। इस सन्दर्भ में साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने एक नया क्रम अपनाया। बाल साध्वियों को कंठस्थ करने के लिए बुलाती और अपने पास बैठा लेती, स्वयं कमरे के दरवाजे पर बैठ जाती, ताकि निर्धारित संख्या में पद्य याद किए बिना कोई साध्वी बाहर नही जा सकती। जो साध्वी जितने अधिक पद्य याद करतीं, उन्हें प्रोत्साहित करतीं। कभी पूज्य कालूगणी के सामने सीखे हुए पद्यों का साध्वियों द्वारा उच्चारण कराती। एक बार ऐसा ही उपक्रम चल रहा था। कुछ साध्वियों ने दशवैकालिक की गाथाएं शुद्ध सुनाई तो कुछ साध्वियों ने अशुद्ध सुनाई। तभी बाल साध्वी सिरेकंवरजी ने निवेदन किया – गुरुदेव! मेरी प्रति में तो ऐसा ही लिखा हुआ है। आचार्यवर ने हाथ में प्रति ली और देखा तो अशुद्ध ही लिखा हुआ था। तत्काल कालूगणी ने शुद्धप्रति उनको दी और कहा – अब इस प्रति से सीखो। गुरु का वात्सल्य पा साध्वी सिरेकंवरजी की मानसिकता खिल उठी और दुगने जोश के साथ कंठस्थ करने लगी।

इसी प्रकार कभी–कभी बाल साध्वियों को गीतिका गाने तथा उसकी व्याख्या करने की प्रेरणा देती। रात्रि में प्रतिक्रमण के पश्चात बाल साध्वियों द्वारा कंठस्थ की गई गीतिकाएं सुनतीं और लोगों को कैसे समझाना चाहिए सीखाने का प्रयत्न करतीं। इन छोटे छोटे उपक्रमों से बाल साध्वियों का हौसला बढ़ाती, जिससे समवयस्क बाल साध्वियों में बोलने का उत्साह जाग जाता।

लेखनकला का विकास

तेरापंथ धर्मसंघ में हस्तलिखित प्रतियों के माध्यम से ज्ञानार्जन किया जाता था। संघ का अपना हस्तलिखित पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय था। उसे समृद्ध बनाने के लिए लिपिकला का विकास अपेक्षित होता है। इस दिशा में तेरापंथ के आचार्य सदैव जागरूक रहे हैं। साधुओं ने इस क्षेत्र में साध्वियों की अपेक्षा अधिक विकास किया। साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने अपना ध्यान इस दिशा में केन्द्रित किया। वे नवदीक्षिता साध्वियों को प्रारंभ से ही लिपि कौशल प्राप्त करने के लिए

प्रेरणा देती। प्रतिदिन खडिया मिट्टी से पाटी पर अक्षर जमाने का अभ्यास कराती। कभी–कभी रेत में स्वयं लिखकर साध्वियों को प्रशिक्षण देती। निरन्तर अभ्यास और श्रम करते–करते साध्वी प्रमुखाजी की प्रेरणा से कई साध्वियां तैयार हो गई। उनकी विद्यमानता में ही कई साध्वियों ने आगम की, नाममाला आदि की प्रतियां लिखकर संघीय पुस्तक भंडार को समृद्धि दी और इससे साध्वीप्रमुखाजी को बड़ा आत्मतोष मिला।

भगवती सूत्र लेखन की प्रेरणास्रोत

एक बार साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी मातुश्री की सेवा में बैठी थी। वहीं मातुश्री की सेवा में संलग्न साध्वी खूमांजी थी। उन्होंने साध्वी खूमांजी से कहा – तुम भगवती सूत्र की प्रतिलिपि करो। साध्वी खूमांजी अच्छी लिपिकार थी, उन्होंने कई सूत्र सूक्ष्माक्षरों में लिखे, पर उस समय उनकी मानसिकता कम थी और दूसरी बात सबसे बड़े सूत्र को लिखने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। उस दिन साध्वीप्रमुखा ने बहुत प्रेरणा दी। कुछ दिनों के अन्तराल के बाद एक दिन उन्होंने साध्वी खूमांजी से पुनः भगवती सूत्र लिखने के लिए कहा और साथ में यह भी कह दिया कि जब तक तुम इस काम को प्रारंभ नहीं करोगी, मेरा तुमसे बोलने का भाव नहीं है। साध्वी खूमांजी के सामने अब कोई विकल्प नहीं था। उन्होंने उसी समय दृढसंकल्प कर लिया कि वे भगवती सूत्र लिखेंगी। साध्वीप्रमुखा न बोले, यह साध्वीखूमांजी को मान्य नहीं था। उन्होंने उसी दिन से भगवती सूत्र लिखना प्रारंभ कर दिया और उसके साथ टब्बा भी लिखा। इसी क्रम में साध्वी खूमांजी ने जयाचार्यश्री कृत भगवती जोड़ भी लिखी। उल्लेखनीय है कि भगवती सूत्र और उसका टब्बा तथा भगवती जोड़ लिखने वाली आज तक धर्मसंघ में साध्वी खूमांजी इकलौती साध्वी है। इस अति महत्वपूर्ण कार्य के पीछे एक मात्र प्रेरणा स्त्रोत थी – साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी।

कला के क्षेत्र में विकास

साध्वीप्रमुखा स्वयं संघीय उपकरणों के निर्माण में विशेषदक्ष थीं। सिलाई, रंगाई, रजोहरण निर्माण में उनकी क्षमता अद्भुत थी। एक चातुर्मास में ग्यारह रजोहरण का निर्माण कलाप्रियता के साथ हस्तलाघव एवं स्फूर्ति का भी प्रतीक है। वे नवदीक्षिता साध्वियों से लेकर प्रौढ़ साध्वियों की रूचि की ओर विशेष ध्यान देती और जिनमें जैसी संभावना नजर आती, उन्हें उसी दिशा में बढने की प्रेरणा देती। उनकी प्रेरणा से साधारण प्रतिभा वाली साध्वियां कलाकार साध्वियां बन गईं। कला के क्षेत्र में जुड़ने वाली बाल, युवा, प्रौढ़ सभी साध्वियों को साध्वीप्रमुखा स्वयं सिखाने

का प्रयत्न करती। जो–जो साध्वियां विशेष उत्साह दिखाती अथवा थोड़े समय में अच्छा विकास करती, उनको प्रोत्साहित करने में वे कभी कमी नहीं रखती, प्रत्युत समय–समय पर आचार्यवर के समक्ष उनका उल्लेख करती और आवश्यक लगता तो उनकी कलाकृतियां दिखाकर उनकी मानसिकता को प्रोत्साहित करती।

वर्चस्वी व्यक्तित्व

साध्वीप्रमुखा का जीवन अप्रमत्तता की नजीर था। वे किसी भी साध्वी का जीवन प्रमाद बहुल देखना नहीं चाहती थी। वे प्रतिक्षण जागरूक रहने की प्रेरणा देतीं। जब भी साध्वीप्रमुखा की दृष्टि साध्वियों पर टिकती, वे स्वाध्याय, ध्यान, जप, सेवा अथवा अन्य कार्य में व्यस्त दिखाई देती, उन्हे प्रसन्नता होती। लेकिन जब कभी कोई साध्वी नींद लेती अथवा बातें करती दिखाई देती तो उन्हें समझाने का प्रयास भी करती। साध्वीप्रमुखा का वर्चस्वी व्यक्तित्व था, जब साध्वीप्रमुखा बाहर से स्थान पर पधारतीं सभी साध्वियां विशेष जागरूक बन जातीं और सलक्ष्य अपने अपने कार्य में लग जाती। तत्त्वचर्चा में उनकी विशेष रूचि थी। बहिनों को थोकड़े सीखाने के लिए कई साध्वियों को नियुक्त रखती। कहते हैं साध्वीप्रमुखाजी की प्रेरणा से एक–एक बहिन ने 20–20 थोकड़े याद किए।

उन्नत चिन्तन की धनी

संघीय प्रचार प्रसार की दृष्टि से साध्वीप्रमुखा का अपना उन्नत चिन्तन रहता था। वे समय–समय पर आचार्यवर के श्रीचरणों में अपने विचार व्यक्त करती रहती। उनका कहना था – बहिर्विहारी साधु साध्वियों पर संघ की प्रभावना और संघ के विस्तार की जिम्मेदारी होती है। वे गांव–गांव, शहर, नगर, ढाणी में जाकर काम करते हैं। इसलिए उनको शक्ति–सम्पन्न बनाना चाहिए। जहां साधु साध्वियों की आचारनिष्ठा, मर्यादानिष्ठा, संघ संघपति निष्ठा काम करती है, वहां उनके पास व्याख्याता साधु साध्वियां भी जरूरी होते हैं। व्याख्यान कला में विशेष योग्यता अर्जित करने के लिए वे साध्वियों को बार–बार प्रेरित करती और इस दिशा में अधिक श्रम करने के लिए कहती।

साध्वीप्रमुखा का व्याख्यान कौशल प्रसिद्ध था। वे आचार्यों के स्थान पर जब भी निर्देश मिलता व्याख्यान देती थी। जीवन के अन्तिम वर्षों में जब वे राजलदेसर में स्थिरवासी बनीं, एक बार वहां मुनिश्री सूरजमलजी (भादरा) पधारे। वे जिस स्थान पर ठहरे, वहां साध्वीप्रमुखाजी वन्दना करने गई, खमतखामणा कर निवेदन किया –

मुनिश्री! व्याख्यान का समय हो गया है। उन्होंने संकोच के साथ कहा – मैं आपके सामने व्याख्यान नहीं दूंगा.....। साध्वीप्रमुखाजी ने कहा – आप क्या कहते हैं, आप तो मुम्बई तक जाकर प्रतिबोध दे आए हैं। मैं तो आपके सामने क्या हूँ। फिर भी मुनिश्री जब व्याख्यान के लिए तैयार नहीं हुए तो उन्होंने कहा – लो मैं अपने ठिकाणे चली जाती हूँ, आप निश्चिंत होकर व्याख्यान सुनाएं।

कहतें हैं मुनिश्री ने तभी व्याख्यान दिया जब साध्वीप्रमुखाजी अपने आवास–स्थल पर पधार गईं।

इसी प्रकार मुनिश्री सोहनलालजी (सुजानगढ) राजलदेसर पधारे। वे प्रतापमलजी बोथरा के तिरबारे में ठहरे। साध्वीप्रमुखाजी से वन्दन खमत खामणा कर सन्त कमरे में अपना बोझभार रखने के लिए गए। तिरबारी भाई बहिनों से खचाखच भरी हुई थी। थोड़ी देर प्रतीक्षा की, पर जब सन्त नहीं आए तब साध्वीप्रमुखाजी ने आवाज दी – मुनिश्री! व्याख्यान देने के लिए पधारिए।

उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा – मैं आपके सामने व्याख्यान नहीं दूंगा।

साध्वीप्रमुखाजी ने निवेदन किया – क्या मैं यहां से चली जाऊं?

मुनिश्री सोहनलालजी बोले – न तो मैं आपको जाने दूंगा और न व्याख्यान दूंगा। आज तो आपको ही व्याख्यान देना होगा।

साध्वीप्रमुखाजी ने सोचा जनता ऐसे ही वापिस लौटे, यह ठीक नहीं है, तत्काल व्याख्यान प्रारंभ कर दिया। राजलदेसर की जनता को साध्वीप्रमुखाजी का व्याख्यान वैसे ही अधिक पसन्द था, उस दिन भी उन्होंने भावविभोर होकर प्रवचन सुना। व्याख्यान की सम्पन्नता पर मुनिश्री सोहनलालजी ने कहा – आजतक तो आपके व्याख्यान की महिमा ही सुनी थी, पर साक्षात सुनने का मौका मिल गया। आपका प्रवचन वास्तव में ही लक्ष्य को और हृदय को छूने वाला है। साध्वीप्रमुखाजी ने कहा – मुझे तो आपका व्याख्यान सुनना था। यदि आप फरमाते तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती।

आंख का ऑपरेशन : सफल : असफल

साध्वीप्रमुखा को सं. 1987 में मोतयाबिन्द के कारण आंखों से दिखना बिल्कुल बंद हो गया। लाडनूं में उस समय नेत्र विशेषज्ञ डाक्टर थे, उनका नाम था – प्रेमसुखजी। उन्होंने देखकर कहा – ऑपरेशन से ऑख ठीक हो सकती है। पर

समस्या थी, ऑपेरशन कौन करें? साध्वी संतोकांजी (लाडनूं) प्रतिभा सम्पन्न, कलाकार और सूझबूझ की धनी साध्वी थी। उन्होंने अष्टमाचार्यश्री कालूगणी से निवेदन किया – यदि आपकी कृपा हो तो मैं ऑपरेशन के समय डाक्टर साहब के पास रहकर सीखने की कोशिश करूं। आचार्यवर से अनुज्ञा प्राप्त कर साध्वी संतोकांजी नेत्र ऑपरेशन की विधि सीखने लगी। जब साध्वी संतोकांजी और डाक्टर को विश्वास हो गया कि यह साध्वी ऑपरेशन कर सकती है, तब डाक्टर ने आचार्यवर से निवेदन कर दिया। एक दिन आचार्यवर ने साध्वी संतोकांजी से पूछा – क्या ऑपरेशन कर सकोगी?

साध्वी संतोकांजी ने विनम्र शब्दों में निवेदन किया – प्रभो! मैंने सीखने का प्रयास किया है, मुझे विश्वास है, मैं कर सकूंगी। तत्काल कालूगणी ने साध्वीप्रमुखाजी से कहा – साध्वी संतोकांजी के हुनर का उपयोग करो, देखो आंख ठीक हो जाए तो.....। साध्वीप्रमुखाजी आंख की रौशनी चली जाने के बाद स्वाध्याय ध्यान में आ रही बाधा से व्यथित थी। इसलिए उन्होंने निवेदन किया – भंते! आपकी कृपा से और तो कोई बात की कमी नही है, पर स्वाध्याय में बहुत कमी आ गई। यद्यपि साध्वियां आगम का स्वाध्याय कराती है, पर मैं तो विवश हो गई।

साध्वी संतोकांजी डाक्टर प्रेमसुखजी की देखरेख में आंख का सफल ऑपरेशन कर कृतार्थ हो गई। ऑपरेशन सं. 1987 बीदासर में किया गया। सातवें दिन जब आंख की पट्टी खोली तब साध्वीप्रमुखा को सब कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगा। इस सफल ऑपरेशन से साध्वीप्रमुखा और साध्वी संतोकांजी ही नहीं, पूरा संघ खुश था। पर यह खुशी अधिक समय नहीं टिक पाई। डाक्टरी दृष्टि से सब कुछ ठीक ठाक था पर अचानक एक दिन साध्वीप्रमुखाजी को अजीब सी अनुभूति हुई और आंख खोलकर देखा तो कुछ भी दिखाई नहीं दिया। साध्वी संतोकांजी का मन खिन्नता से भर गया। साध्वीप्रमुखाजी ने बड़े धैर्य और मनोबल के साथ अपने कृत कर्मों का योग मानकर इसे स्वीकार कर लिया।

वचन सिद्ध साधिका

सप्तमाचार्य डालगणी के युग की घटना है। साध्वी कानकंवरजी उस समय गुरुकुल में प्रवास कर रही थी। एक दिन वे दुलीचंदजी दूगड़ के घर गोचरी गईं। ये वे ही दुलीचंदजी दूगड़ थे, जिन्होंने मुनिपतजी के प्रकरण में जयाचार्य के सामने संघभक्ति का परिचय दिया और वीरता के साथ मोर्चे पर डटे रहे। उनको बोलचाल की भाषा में दूलजी कहा करते थे। वे अपने सिद्धान्तों और प्रण के पक्के थे। जो बात

जच गई उसे किसी हालत में छोड़ना उनके लिए बहुत मुश्किल था। वे उस समय पक्षाघात से पीड़ित हो गए थे। साध्वी कानकंवरजी को अपने घर में गोचरी के लिए देखकर प्रसन्न हुए और जब वे रसोई में गोचरी कर रही थी, बाहर जाने के सारे दरवाजे बन्द करवा दिए और सबको हिदायत दे दी कि मेरी आज्ञा के बिना कोई दरवाजा नहीं खोलेगा। साध्वी कानकंवरजी बाहर जाने का रास्ता देखने लगी। सब दरवाजे बन्द दिखाई दिए तब उन्होंने पूछा – दरवाजे बन्द किसने किए?

दुलीचंदजी बोले – महाराज! मैंने करवाए हैं?

साध्वीजी – क्यों?

दुलीचंदजी – कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता।

साध्वीजी – मैं जानना चाहती हूँ कि इसके पीछे कारण क्या है?

दुलीचंदजी – मेरे मन की भावना सुनो। मैं चाहता हूँ कि आज आप मुझको वचन दो कि – मैं ठीक हो जाऊंगा।

साध्वीजी – न तो मैं वचन दे सकती और न मैं ऐसा कह सकती हूँ कि आप ठीक हो जाएंगे।

दुलीचंदजी ने अपनी भावना स्पष्ट करते हुए कहा – मुझे विश्वास है कि आप जो भी कहेंगे वह सत्य होगा। यदि ठीक होने का शब्द निकल गया तो मैं निश्चित स्वस्थ बनूंगा। कान सती ने बहुत समझाने का प्रयास किया पर वे नहीं माने और अपनी बात पर अड़े रहे।

आखिर साध्वी कानकंवरजी को यह कहना पड़ा कि शायद ठीक होने पर डालगणी के जल्दी ही दर्शन होंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। बिना किसी उपचार, दवा आदि लिए वे चार पांच दिन बाद स्वस्थ हो गए और डालगणी के दर्शन करने धर्मस्थान में नियमित आने लगे। उल्लेखनीय है कि इससे पहले वे दर्शन करने आने में असमर्थ थे।

साध्वी आशांजी के कान में भयंकर दर्द हो गया। दर्द इतना असहनीय था कि वे व्यथा से भर गई। किसी ने दवा बताई पर वह दवा वहां उपलब्ध नहीं हो सकी। दर्द बढता ही जा रहा था, उन्होंने साध्वीप्रमुखाजी से निवेदन किया दवा मिल नही रही है, क्या करूं? साध्वीप्रमुखा ने धैर्य बंधाते हुए कहा – गोचरी के लिए जाओ तब घरों में तलाश करना, संभव है, दवा मिल जाए। साध्वियों ने दवा के लिए पुरुषार्थ

करने में कोई कमी नहीं रखी थी। जहां जहां उन्हें दवा मिलने की संभावना लगी वहां वहां उन्होंने खोज की। इसलिए साध्वियों के मन में दवा मिलने की आशा नहीं थी, फिर भी साध्वीप्रमुखाजी के निर्देश की अनुपालना करने के लिए दवा की गवेषणा की। आश्चर्य तो तब हुआ जब कुण्डलिया परिवार में वह दवा उपलब्ध हो गई। उस परिवार के सदस्य उसी दिन कोलकाता से आए थे, उनके पास वह दवा उपलब्ध थी।

साधना और सत्यनिष्ठा का सुपरिणाम था कि साध्वीप्रमुखाजी के मुख से निकला शब्द प्रायः सत्य की परिक्रमा करता–सा प्रतीत होता। भले वह पदार्थ/उपकरण, आहार पानी के विषय में हो, साधु साध्वियों के सन्दर्भ में हो अथवा श्रावक श्राविका से सम्बंधित हो। प्रायः उनके द्वारा कही गई बात मिल जाती।

राजलदेसर में स्थिरवास

साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी का स्वास्थ्य वैसे कम ही अनुकूल रहता था, पर उनका मनोबल, धैर्यबल और साधनाबल इतना प्रबल था कि वे अपने दायित्व का कुशलता से निर्वहन कर रही थी। दूसरी ओर गुरु सेवा और आत्म साधना भी इप्सित गति से चल रही थी। सं. 1987 में जब से नेत्र ज्योति क्षीण हुई, आगम स्वाध्याय वाचन में एक अवरोध पैदा हो गया। यद्यपि इसकी सम्पूर्ति में साध्वियां सतत जागरूक थी। वे हमेशा आगम का नियमित स्वाध्याय करवाती।

इसके साथ–साथ साध्वीप्रमुखाजी की पीठ में दो छोटी–छोटी गांठे थी और उसके बाद पेट में नाभि के ऊपर एक बहुत बड़ी गांठ हो गई, उनके शरीर में अतिरिक्त वेदना पैदा हो गई, जिससे चलने फिरने में काफी कठिनाई का अनुभव होने लगा। सं. 1987 से 1990 तक साध्वीप्रमुखाजी कानकंवरजी की उपस्थिति में ही साध्वी झमकूजी साध्वीप्रमुखा के निर्देशानुसार साध्वियों का सारा कार्य करतीं। साध्वी झमकूजी दीक्षित होते ही साध्वीप्रमुखा के पास रही और उनका विनय, समर्पण भाव भी अद्‌भुत था। जो भी कार्य करतीं, साध्वीप्रमुखा के आदेश निर्देश से करतीं और वह कार्य आचार्यवर की दृष्टि के अनुसार जैसे संपादित होता, उनको निवेदन कर देतीं। संवादशैली के साथ साध्वी झमकूजी की कार्यपद्धति से साध्वीप्रमुखाजी को बड़ा आत्मतोष और संतोष का अनुभव होता।

सं. 1990 का मर्यादा महोत्सव लाडनूं के लिए घोषित था। उससे पूर्व आचार्यश्री कालूगणी बीदासर में विराजमान थे। मातुश्री छोगांजी तथा साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ होते हुए भी जितना बन सकता, गुरु सेवा का लाभ उठा रही थी। आचार्यवर की आगामी यात्रा मारवाड़–मेवाड़ के लिए घोषित

थी। जब तक आसपास के क्षेत्रों में विहरण होता रहा, साध्वीप्रमुखाजी आचार्यवर की सन्निधि में रहीं, पर दूर क्षेत्र में विहरणकर जाना उनके लिए संभव नही था। स्वास्थ्य की विवशता को ध्यान में रखकर आचार्यवर ने साध्वीप्रमुखाजी को राजलदेसर स्थिरवासी बनने का निर्देश दिया। सचमुच यह निर्णय न स्वयं आचार्यश्री को अभीष्ट था और न साध्वीप्रमुखाजी को। क्योंकि साध्वीप्रमुखाजी आचार्यवर की सेवा छोड़कर एक दिन भी रहना नहीं चाहती थी।

"एक बार सरदारशहर चातुर्मास सम्पन्नकर आचार्यवर चूरू की ओर पधार रहे थे। उस समय साध्वी कानकंवरजी एक मंजिल पीछे विहार कर रही थीं। उल्लेखनीय है कि कालूगणी के युग तक गुरुकुलवास में साध्वियां प्रायः आगे पीछे विहार किया करती थी। इसका कारण संभवतः स्थान का अभाव रहा हो। साध्वी कानकंवरजी विहार कर मंजिल पर पहुंची ही थी कि एक भाई ने आकर निवेदन किया – रात्रि में आचार्यवर की तबियत ठीक नहीं थी, जुकाम बहुत थी और उसके कारण बुखार भी हो गया। आचार्यश्री की अस्वस्थता के संवाद सुनते ही उसी समय बिना कुछ खाए पीए वहां से विहार कर दिया। साथ में यह संकल्प कर लिया कि दर्शन किए बिना मुंह में कुछ नहीं लूंगी। आचार्यवर की पावन सन्निधि में पहुंची, तब तक दोपहर हो चुकी थी। ज्योहीं उन्होंने दर्शन किए आचार्यवर ने पूछा – अभी कैसे? उन्होंने निवेदन किया – गुरुदेव! आपकी अस्वस्थता के समाचार सुनकर मन नहीं लगा..... ।"

उपरोक्त घटना से स्पष्ट है कि गुरु–सन्निधि को छोडना मानसिक दृष्टि से कितना कष्टप्रद था। साध्वीप्रमुखा ने मन की व्यथा प्रकट करते हुए निवेदन किया – आर्यप्रवर! आपने मेरे स्वास्थ्य की स्थिति को देखकर राजलदेसर जाने का निर्देश दिया, आपने कृपा की। मैं चाहती हूँ मारवाड़ मेवाड़ से आप जब पधारे तब मैं आपकी सेवा में रहूँ। दूसरी बात मैं मर्यादा महोत्सव के बाद तक बीदासर में रहकर मातुश्री की सेवा करूं। आचार्यवर निर्देश दे, उससे पहले ही मातुश्री ने प्रार्थना की – सर्दी–सर्दी मेरे पास रहे, यह मैं चाहती हूँ। गर्मी में साध्वीप्रमुखा को अधिक तकलीफ का अनुभव होता था, इसलिए हल्की–हल्की सर्दी में वे राजलदेसर पहुंच गई। वह 1990 चैत्र शुक्ला द्वितीया का दिन था। यह वही राजलदेसर था, जहां पहले साध्वीप्रमुखा जेठांजी ने स्थिरवास किया था। राजलदेसरवासियों के लिए आज का दिन विशेष था। आज से उन्हें साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी का सतत सान्निध्य मिलने वाला था। यद्यपि साध्वीप्रमुखाजी की मानसिकता में आचार्यश्री कालूगणी जब तक मेवाड़ यात्रा करेंगे, तब तक राजलदेसर रहने की थी। लेकिन इतना तो स्पष्ट था कि

अभी एक दो वर्ष तक इसी धरती पर साधना करते हुए यहां के श्रावक समाज की आत्म साधना में सहयोगी बनना है।

आगम अमृत वर्षा

साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी जिस समय राजलदेसर पधारी, उस समय राजलदेसर के कई श्रावक आगम वाचन, तत्वज्ञान एवं तेरापंथ दर्शन में विशेष रूचि रखने वाले थे। स्वयं साध्वीप्रमुखाजी की आगम स्वाध्याय में विशेष रूचि थी इसलिए उन्होंने श्रावक समाज के बीच भगवती सूत्र, आचारांग, जीवाभिगम, उत्तराध्ययन ठाणं समवायांग आदि सूत्रों का वाचन साध्वियों से करवाती और स्वयं वहीं विराजती। कहते हैं साध्वीप्रमुखाजी प्रतिवर्ष एक बार आगम बत्तीसी का पारायण कर लेती। आगम अमृत रस का पान आसपास रहने वाली साध्वियों को भी कराती। रात्रि में साध्वियों एवं बहिनों को थोकड़े सीखने के लिए प्रेरित करतीं और प्रश्नोत्तर के माध्यम से तत्त्वचर्चा की सूक्ष्मता बताती। इसके साथ व्याख्यान कला में साध्वियों को निष्णात बनाना उनका एक प्रमुख लक्ष्य था। जो–जो साध्वियां व्याख्यान देतीं, उनका व्याख्यान सलक्ष्य स्वयं सुनती और जहां–जहां परिष्कार की अपेक्षा लगती, उनका मार्गदर्शन करतीं। जब कभी जो साध्वी अच्छा व्याख्यान देती उन्हे खुले दिल से प्रोत्साहित करती।

चार साध्वियों को एक साथ रजोहरण बनाना सिखाया

एक दिन साध्वी छगनांजी (बोरावड़) रजोहरण बनाने की ऊन लेकर आई। साध्वी छगनांजी साध्वीप्रमुखाजी के प्रति सर्वात्मना समर्पित और सेवाभावी साध्वी थी। उन्होंने निवेदन किया – ऊन चार रजोहरण बनाएं जितनी है। साध्वीप्रमुखाजी ने तत्काल साध्वी आशाजी, सिरेकंवरजी, चम्पाजी और रायकंवरजी को बुलाया और कहा – लो यह ऊन ले जाओ और चारों रजोहरण बनाना सीखो। चारों साध्वियों ने श्रम के साथ अभ्यास किया और एक अवधि में रजोहरण बना लिए। जब उन्होंने रजोहरण बनाकर साध्वीप्रमुखाजी के चरणों में उपहृत किए, उन्होंने अपने पास रख लिए। क्योंकि साध्वीप्रमुखाजी नेत्र ज्योति क्षीण होने के कारण अच्छी तरह परीक्षण नहीं कर पा रही थी। साध्वी हुलासांजी (सरदारशहर) जब राजलदेसर आईं, उन्हें चारों रजोहरण देकर परीक्षा करने के लिए कहा। साध्वी हुलासांजी ने रजोहरणों को कला की कसौटी पर परखते हुए निवेदन किया – यदि ये चारो साध्वियां अभ्यास करेंगी तो श्रेष्ठ रजोहरण तैयार कर सकती हैं। पहली बार बनाकर सभी ने अच्छे बनाए है, पर इन चारों में तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो अमुक रजोहरण अच्छा है। वह

रजोहरण साध्वी सिरेकंवरजी (श्रीडूंगरगढ) द्वारा निर्मित था। साध्वीप्रमुखाजी ने तत्काल पुरस्कार देकर उनके उत्साह को बढाया और शेष तीन साध्वियों को भी प्रोत्साहन देकर कौशल प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया।

इसी प्रकार पात्रियां रंगना, हरी पाटियां बनाना, पुस्तक–बांधना, लेखनकला आदि आदि सभी कामों में सभी साध्वियों को पारंगत बनाना चाहती थी। उनके उन्नत चिन्तन में स्वावलम्बी जीवन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। शिक्षा की दृष्टि से बाल साध्वियों को प्रेरित करना, अध्ययन में नियोजित करना, उस समय बड़ा श्रमसाध्य काम था। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण था – साध्वी समाज शिक्षा के महत्व को ही नहीं समझता था और न पढने में उनकी रूचि थी। इसलिए उच्च शिक्षा का तो सवाल ही नहीं था, आत्मसाधना के लिए और साधु जीवन की अनिवार्यता के लिए आवश्यक अध्ययन करने में भी साध्वियां जागरूक नहीं थी। फिर भी साध्वीप्रमुखाजी ने साध्वियों के नजरिए को यत्किंचित बदलने में सफलता प्राप्त की और योग्य साध्वियों को आगे बढाया।

अपूर्व आत्म तृप्ति का अनुभव

थली से विहार कर आचार्यवर ने पहला चातुर्मास जोधपुर में किया और मर्यादा महोत्सव सुधरी (बगडी) में किया। उस महोत्सव में सम्मिलित होने वाली साध्वी सुन्दरजी लाडनूं महोत्सव के बाद विहार कर थली आने वाली थी। आचार्यवर कालूगणी ने अनुग्रह कर उनके साथ साध्वीप्रमुखाजी के पास दो साध्वियों को भेजा, जिनमें एक जोधपुर में नवदीक्षित साध्वी गोगाजी थी और दूसरी साध्वी मोहनांजी टमकोर थी। वह दिन साध्वीप्रमुखाजी के लिए अनुपम विलक्षण और आत्मिक शांति देने वाला था। क्योंकि आचार्यवर के मरूधर यात्रा में प्रस्थान करने के बाद साध्वीप्रमुखाजी के कान प्रथम बार सुख–संवाद सुन अपूर्व तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। साध्वीप्रमुखा का रोम–रोम खिल उठा। जब तक जितने दिन साध्वियां वहां रहतीं, घंटे दो घंटे गुरुकुल के सुख संवाद पूछती रहतीं, उस समय उनकी मानसिकता, भावभंगिमा परम प्रसन्न बन जाती। इसके साथ–साथ आने वाली एक–एक साध्वी की सार संभाल करती। उन्हें आगे बढने की प्रेरणा देती और आचार विचार में सजग एवं सावधान करतीं।

एक अज्ञात आशंका

उदयपुर चातुर्मास के समय जब साध्वीप्रमुखाजी आचार्यवर के सुख संवाद सुनती, मन मयूर अतिरिक्त आह्लाद से नाच उठता। राजलदेसर और बीदासर में

क्षेत्रीय दूरी अधिक नहीं होने से वहां आने वाले आचार्यवर के संवाद भी मिलते रहते। पर चातुर्मास के पश्चात साध्वीप्रमुखाजी के मन में एक अज्ञात आशंका व्याप गई। वे जब जब सुखसाता के समाचार सुनती अन्त में एक ही बात कहती गुरुदेव के तनुरत्न में सुखसाता रहे, यही सब मंगल कामना करो।

आचार्यवर मालवा में सानन्द मर्यादा महोत्सव सम्पन्न कर पुनः मेवाड़ की ओर पधार रहे थे। एक दिन राजलदेसर के प्रमुख श्रावक हीरालालजी बैद पत्र लेकर आए और आचार्यवर के सुख संवाद सुनाकर वापिस लौट गए। साध्वीप्रमुखाजी गुरुगुणगान करतीं करतीं 'किन्तु' शब्द बोल मौन हो गयी और उस समय उनके चेहरे पर गहरी उदासी उतर आई।

उस दिन साध्वी छगनांजी और साध्वी सिरेकंवरजी ने हिम्मतकर पूछा – साध्वीप्रमुखाजी! आजकल जब जब आप गुरु–गुणगान करती हैं अथवा कालूगणी की स्मृति करती हैं। आपके चेहरे पर विषाद के भाव आ जाते हैं, इसका क्या कारण है। इससे पहले हमने आपके मुख पर ऐसे भाव कभी नहीं देखे। साध्वीप्रमुखाजी कुछ क्षण के लिए गहरी मौन हो गई और फिर बोली – आजकल मेरा मन अज्ञात चिन्ता से व्याकुल रहता है।

साध्वियों ने हिम्मत कर पुनः पूछा – कैसा और किस बात का चिन्तन आता है? साध्वीप्रमुखाजी ने गंभीर होते हुए गद्‌गद् स्वर में कहा – आचार्यवर का तनुरत्न स्वस्थ रहें और सुखद यात्राकर मातुश्री को दर्शन दे दें। बस यही मंगल कामना सफल हो जाए.....।

यद्यपि साध्वी–समाज यह जानना चाहता था, इस कथन के पीछे राज क्या है? कोई आभास हुआ है, कोई दुःस्वप्न आया है अथवा और कोई कारण है पर साध्वीप्रमुखाजी की भारी मानसिकता के सामने कुछ भी पूछ नहीं पाई। उसी समय साध्वीप्रमुखाजी ने भी सब साध्वियों से कहा – जाओ सब अपने–अपने काम करो. .....।

साध्वीप्रमुखाजी की भूख और नींद दोनों कम हो रही थी। खाने में रूचि अत्यधिक कम होने से कभी–कभी साध्वियों के आग्रह पर कुछ खाती तो वमन हो जाती। इसी बीच आचार्यवर के वामहस्त में फुंसी के समाचार आ गए और जिस दिन यह संवाद सुना कि मंडपिया गांव में आचार्यवर की अंगुली का ऑपरेशन किया गया है।

ऑपरेशन और वह भी भीलवाड़ा जैसे बड़े शहर से पहले छोटे से गांव में होना साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के लिए बहुत बड़ा आघात था। पहले से मन आशंकित था, उस दिन के बाद उनकी नींद और भूख दोनों गायब हो गई। थोड़ा बहुत तरल पदार्थ का उपयोग करती थीं पर उससे भी प्रायः वमन हो जाता।

आषाढ सुदी 3 का दिन था। अचानक साध्वीप्रमुखाजी बेहोश हो गई; हाथ पांव ठंडे हो गए और शरीर में अत्यधिक बेचैनी हो गई। पीठ में, पेट में गांठ का दर्द और व्यथा दोनों बढ रही थी। अचानक बेहोशी को देखकर आसपास रहने वाली साध्वियां घबरा गई और मोह में ऐसी उलझी कि जाप तक सुनाना भूल गईं। जब साध्वीप्रमुखाजी को होश आया और शरीर में कुछ साता का अनुभव हुआ। आपने सभी साध्वियों को सम्बोध देते हुए कहा – शरीर नाशवान है, उसका इतना मोह क्यों? आज की स्थिति देखकर लगता है तुम लोग मुझे अन्तिम समय में आध्यात्मिक सहयोग कैसे दे पाओगी? देखो तुम सब साध्वियां समय पर हिम्मत रखना सीखो। जप, स्वाध्याय से आध्यात्मिक सहयोग दो। यद्यपि तुम लोगों ने मेरी बहुत–बहुत सेवा की है क्योंकि मेरा शरीर वर्षों से रोगाक्रान्त है, तुम सभी साध्वियां समर्पण भाव के साथ दिन रात तत्पर रहती हो, इससे मुझे बहुत साता और समाधि मिली है।

महाप्रयाण की तैयारी

साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी ने जब से आचार्यवर की अस्वस्थता के समाचार सुने तब से शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टि से अशक्यता अनुभव करने लगी। नाभि के ऊपर वाली गांठ में मवाद आने लगा और उसके कारण उदर में दर्द तथा बेचैनी रहने लगी। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन साध्वीप्रमुखाजी ने सभी साध्वियों को सम्बोधित करते हुए कहा – हम सब बहुत भाग्यशाली हैं, जिन्हें तेरापंथ धर्मसंघ एवं अष्टमाचार्यश्री कालूगणी जैसे प्रतापी आचार्य मिले है। हमें इस संघ में साधना करने का सौभाग्य मिला है, यह भी हमारा अहोभाग्य है। हमें साधना में पूर्ण सजग रहते हुए संघपति के चरणों में समर्पित रहना है। गुरु आज्ञा ही हमारा धर्म है, प्राण है और सबकुछ है। संघ, संघपति और आत्मा के प्रतिकूल कदम तो क्या चिन्तन भी न आए, ऐसा प्रयत्न करते रहना है।

उस दिन साध्वीप्रमुखाजी जिस प्रवाह के साथ बोल रही थी उससे सबको स्पष्ट आभास हो रहा था – वे खुलकर साध्वी समाज को अपने मन की भावना बता रही थी। वे जिन सपनों का साध्वी समाज देखना चाहती थी, उसी का चित्र उकेर रही थी।

दूसरी बात उनके कथन से ऐसा लग रहा था कि वे अन्तिम शिक्षा, प्रेरणा दे रही थी और जो हृदय में है, वह बताना चाह रही थी, पर शरीर बाधक बनकर उपस्थित हो गया। शारीरिक व्यथा और बेचैनी इस कदर हावी हो गई कि चाहने पर भी बोल नहीं पाई। सांस फूलने से बोलने में अत्यधिक कठिनाई होने लगी। अंत में यह कहकर उन्होंने विराम ले लिया – साध्वियों! आज मैं कहना तो बहुत कुछ चाहती थी, पर बोल नहीं पा रही हूँ। तुम लोग मुझे साधु वन्दना, आराधना, चौबीसी आदि सुनाओ.....।

श्रावण के शुक्ल पक्ष की सप्तमी से भाद्रव कृष्णा तीज तक का समय बड़ी कसौटी का रहा। फिर भी साध्वीप्रमुखा की सहनशीलता, धीरता और मनोबल गजब का था। एक–एक दिन कैसे निकल रहे थे, समझ से परे था। भाद्रकृष्णा तीज को कुछ बेचैनी कम होने पर साध्वियों से कहा – देखो मैं आचार्यवर के श्रीचरणों में अपनी जीवन नैया पार कर लूंगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। पर मातुश्री के लिए मन में बार–बार विचार आता है, लम्बा आयुष्य.....इतना कह फिर मौन हो गई।

उसी समय साध्वीप्रमुखाजी ने साध्वीप्रमुखा नवलांजी और मातुश्री छोगांजी के अनन्त उपकार की स्मृति की और आचार्यवर के गुणगान करते हुए निरोगता की मंगल कामना की। संयोग की बात थी कि साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी और साध्वीप्रमुखा नवलांजी दोनों विद पांचम को स्वर्गवासी हुई। साध्वीप्रमुखा नवलांजी की पुण्यतिथि अषाढ़ कृष्णा पंचमी है।

भाद्रव कृष्णा पंचमी का दिन साध्वीप्रमुखा के जीवन का अंतिम दिन था। सूर्योदय के कुछ समय पश्चात उन्होंने अपनी बढ़ती अस्वस्थता, बेचैनी, श्वास की अस्तव्यस्तता अनुभव करते हुए कहा – आज का दिन पूज्य मघवागणी तथा साध्वीप्रमुखा नवलांजी की मासिक पुण्य तिथि का है। पूज्य मघवागणी मेरे संयम प्रदाता गुरु हैं और साध्वीप्रमुखा नवलांजी मेरी जीवन निर्मात्री महासती हैं। संभव है आज के दिन मेरा शरीर भी बिछुड़ जाए.....। तुम सब सावधान रहना। प्रातःकाल साध्वीप्रमुखाजी ने पूर्ण जागरूकता के साथ महाव्रतों का उच्चारण किया और ज्ञात अज्ञात में हुई भूलों के लिए सबके सामने 'मिच्छामि दुक्कडं' बोलकर अपने आपको निःशल्य एवं पवित्र बनाने का प्रयत्न किया। मध्यान्ह में आगम का स्वाध्याय तन्मय बन्कर सुना। सायंकाल मकान की ऊपरी मंजिल में साध्वियों के सहारे पधारी। ऊपर जाकर ज्योंहीं पट्ट पर पद्मासन मुद्रा में बैठकर नमोत्प्पुणं की पूरी पाटी का उच्चारण किया और त्याग है बोली। आसपास खड़ी साध्वियों ने यह सारा दृश्य देखा पर उन्होंने समझने का प्रयत्न नहीं किया और न उन्होंने इस सन्दर्भ में कुछ पूछा।

उसके पश्चात श्वास और बेचैनी में प्रतिस्पर्धा–सी पैदा हो गई पर प्रतिक्रमण, तन्मय बनकर किया और संकेत कर स्वाध्याय सुनती रही। लगभग 11 बजे करवट बदलने की इच्छा बताई, साध्वियों ने सहारा देकर करवट बदली और उसी समय वह दीप शिखा सदा–सदा के लिए बुझ गई।

साध्वीप्रमुखा का चले जाना सबके मन में रिक्तता की अनुभूति पैदा करने वाला था पर अष्टमाचार्यश्री कालूगणी की बढ़ती अत्यधिक अस्वस्थता समूचे संघ के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ था। ऐसी स्थिति में समझदार व्यक्तियों के मुंह से यह भी सुना गया कि – साध्वी प्रमुखा बड़ी सौभाग्यशाली थी, गुरु चरणों में जीवन नैया पार करली।

जब अष्टमाचार्य कालूगणी ने यह संवाद सुना – आत्मिक तोष व्यक्त करते हुए कहा – "साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के शरीर का मेरे मन में बड़ा विचार रहता था। बहुत अच्छा हुआ वे मेरी उपस्थिति में चली गईं।"

राजलदेसरवासियों ने दूसरे दिन बड़े ठाटबाट व धूमधाम से चरमोत्सव मनाया। आसपास के गांवों के तथा राजलदेसर के जैन अजैन हजारों–हजारों व्यक्तियों ने अंतिम यात्रा में भाग लिया।

साध्वीप्रमुखा की अन्तिम समय तक विशेष सेवा करने वाली साध्वियों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। इसके साथ–साथ उन्होंने अपना सौभाग्य भी माना कि साध्वीप्रमुखा की दुर्लभ सेवा का अवसर उन्हें मिला और उस निर्जरा के महायज्ञ में यथाशक्ति आहुति देकर धन्यता का अनुभव किया। जिन–जिन महाभाग साध्वियों को यह अवसर मिला – वे बारह साध्वियां थी और उनके नाम निम्न हैं –

1. साध्वी छगनांजी
2. " किस्तुरांजी
3. " आशांजी
4. " संतोकांजी (चूरू)
5. " सिरेकंवरजी (श्रीडूंगरगढ़)
6. " पूनाजी (श्रीडूंगरगढ़)
7. " लाधूजी (गंगाशहर)
8. " चंपाजी (राजगढ़)
9. " रायकंवरजी (राजलदेसर)
10. " गोगांजी (श्रीडूंगरगढ़)

11. " लिछमांजी (सरदारशहर)
12. " केसरजी (श्रीडूंगरगढ़)

साध्वीप्रमुखा के परिवार के दीक्षित सदस्य

जिस परिवार की आचार्यश्री कालूगणी जैसे कोहिनूर हीरे ने आब बढ़ाई, और साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी एवं मातुश्री छोगांजी ने जन्म लिया उस परिवार का सौभाग्य स्वयंभू प्रमाणित है। उसके साथ–साथ इसी परिवार से जुड़े सदस्यों ने तेरापंथ धर्मसंघ में संयम साधना कर संघ को अपनी सेवाएं दी, उनकी भी उल्लेखनीय संख्या है। इस परिवार से सम्बंधित कुल सौलह सदस्य दीक्षित हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं –

1. अष्टमाचार्यश्री कालूगणी
2. मुनिश्री कोडामलजी
3. " जीवराजजी
4. " सम्पतमलजी
5. " कन्हैयालालजी
6. साध्वीश्री सिणगारांजी
7. " पेमाजी
8. " अणचांजी
9. " साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी
10. " छगनांजी
11. " किस्तुरांजी
12. " आशांजी
13. " सिरेकंवरजी
14. " पूनांजी
15. " केशरजी
16. " मातुश्री छोगांजी

आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्राप्त सम्मान एवं मूल्यांकन

आचार्यश्री तुलसी ने तेरापंथ के इतिहास को समय–समय पर अपनी लेखनी से उजागर कर अनेक–अनेक व्यक्तियों को गरिमा प्रदान की। उनमें एक महनीय व्यक्तित्व है – साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी। कालूयशोविलास में अनेक स्थलों पर आचार्यवर ने उनके कर्त्तृत्व को अभिव्यक्ति दी है और उनके विषय में एक गीत का

निर्माण भी किया। उनके स्वर्गवासी होने पर आचार्यश्री तुलसी ने उनके सम्बन्ध में कुछ दोहे लिखे –

1. गुरुभगिनी मासी सुता, कानकंवर गुण–पात्र।
   बरसां स्यूं रहतो व्यथित, उदर–ग्रन्थि स्यूं गात्र।।

2. राजलदेसर थाणपति, कीन्हो स्वर्ग प्रयाण।
   पांचम विद पख भादवै, जीवन रो कल्याण।।

3. पाल्यो संयम सांतरो, बरस उणपच्चास।
   बाल्यकाल ब्रह्मचारिणी, सदा हृदय सोल्लास।।

4. सरस शास्त्र स्वाध्याय में, सतत राखती जोर।
   समभावे वेदन सही, काटचा कर्म कठोर।।

5. सिंघाड़ो अति दीपतो, आकर्षक व्याख्यान।
   नवलां जेठांजी पछै, साध्वीप्रमुखा स्थान।।

6. जीते जी नहिं देखियो, भाई सुगुरु वियोग।
   अति धन्या पुण्या सती, साध्यो सफल प्रयोग।।

7. प्रभुवर स्वमुख प्रशंसियो, पण्डित–मरण प्रकार।
   म्हारै आरै अंग रो, रहतो प्राय विचार।।

साध्वीप्रमुखाओं की शृंखला में आचार्य श्री तुलसी ने महासती कानकुमारीजी की स्मृति में एक गीत के माध्यम से सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सांगोपांग प्रस्तुति दी है –

लयः गणि गुण गावो रे.....।
जपो नर–नारी रे,
जपो नर नारी रे श्री कानकंवर रो जाप।
सदा जयकारी रे।।

1. थली देश धोरां री धरती, पुर डूंगरगढ भारी रे।
मालू लच्छीराम घरे, चनणां वनिता सुख कारी रे।

2. तिणरा जाया जुगल–पुत्र, पुत्री है तीन सुप्यारी रे।
दो भगिनी शुभ–लगिनी बीच में प्रसवी कानकुमारी रे।।

3. तीसै जनम चमालीसै छोगां कालू सह धारी रे।
बीदासर में संयम दीधो मघवा अतिशयधारी रे।।

4. गुरुकुलवास रही उमही, फिर नवल सती चरणां री रे।
दो वर्षां लग सजग सलूणी सारी सेवा सारी रे।।

5. छप्पनै साल डाल गच्छाधिप सिंघाड़ो सुविचारी रे।
कियो सती रो बडो सधीरो, विचरी बहिर्विहारी रे।।

6. छयासट्ठे मासी – सुत कालू बण्या संघ–अधिकारी रे।
कानकंवर छोगांजी साथे भेट्या चरण उदारी रे।।

7. उण ही दिन मध्याह्ने गणिवर आपी आ रिझवारी रे।
सर्व काम अरू बोझ भार बगसीस सुधारस झारी रे।।

8. शासनपति सेवा में तब स्यूं शान्त सुधा संचारी रे।
गणि आज्ञा तल्लीन लीन प्रमुखा रो पद स्वीकारी रे।।

9. दशवैकालिक, उत्तराध्ययन अरू नन्दी ज्ञान पसारी रे।
वेदकल्प, सुयगडांग पांच सूत्र कण्ठाग्र करारी रे।।

10. आगम री स्वाध्याय सहज करती हरती अघ भारी रे।
समता स्यूं मानस संवरती, निज आतम उद्धारी रे।।

11. उदय असात वेदना आई अपणी संचित सारी रे।
पेट पीठ में गांठ भयंकर दीखत ही विकरारी रे।।

12. वेदन खमती संयम रमती, दमती दुरित–दरारी रे।
क्रोध आदि अरि नै उपशमती, वमती विषय विकारी रे।।

13. अंतिम तीन बरस लग श्रमणी राजलदेसर धारी रे।
कारणवश स्थिरवास रही, सखी मन में हुंशियारी रे।।

14. उगणीसै तेराणू वर्षे, भाद्रव मास मझारी रे।
विद पांचम दिन श्वास वेग स्यूं स्वर्गा सती सिधारी रे।।

15. गुरुवर–विरह न देख्यो भागण अपणो काम समारी रे।
बीदासर छोगांजी पासे 'तुलसी' कीर्ति उचारी रे।।

सम्मान व स्मृति पत्र

सं. 2033 फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को आचार्यश्री कालू जन्म शताब्दी के विशालतम आयोजन में आचार्यश्री तुलसी ने तेरापंथ धर्मसंघ के विशिष्ट संघनिष्ठ सेवाभावी साधु साध्वियों के कर्तृत्व का सम्मान करते हुए उन्हें विशेष रूप से याद किया, उनमें एक थीं – साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी। इस अवसर पर उनके नाम एक स्मृति पत्र भी लिखा गया।

स्मृति पत्र

पूज्य गुरुदेव श्री कालूगणी की इस जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर मैं उन दिवंगत साधु साध्वियों का विशेष रूप से स्मरण करता हूँ, जिन्होंने गुरुदेव की कृपा दृष्टि का आराधन किया और संघ की गौरव वृद्धि में अपनी उल्लेखनीय सेवाएं दी। उनमें एक थी – साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी। उन्होंने गुरु दृष्टि की सफल आराधना की। उनको गुरुदृष्टि आराधिका के रूप में याद करता हूँ।

आचार्य तुलसी

12. साध्वी मुखांजी (सरदारशहर) (544)

साध्वी मुखांजी का जन्म थली के प्रसिद्ध शहर सरदारशहर में हुआ। उनका जन्म सं. 1935 में हुआ। उनकी माता का नाम प्रतापांजी तथा पिता का नाम जुहारमलजी डागा था। जुहारमलजी धर्मनिष्ठ, श्रद्धानिष्ठ और तत्त्व के जानकार श्रावक थे। इसलिए घर का वातावरण सहज धार्मिक था। उनकी सुपुत्री मुखांजी होनहार तथा संकल्प निष्ठ बालिका थी। पूर्व जन्म के संस्कारों तथा साधु साध्वियों के सम्पर्क में रहने से बालिका के बाल मन में वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। नौ वर्ष की अल्पावस्था में बालिका ने साहस का दीपक हाथ में लिया और एक दिन परिषद् के बीच खड़ी होकर आजीवन विवाह न करने का संकल्प स्वीकार किया।

सं. 1944 का मर्यादा महोत्सव पंचमाचार्य मघवागणी का बीकानेर में था। उस अवसर पर बालिका मुखां ने अपने माता-पिता के साथ मघवागणी के दर्शन किए। बचपन की सरलता, आकृति की सुन्दरता और वैराग्य की पवित्रता का संगम वहां सबके लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया। जब बालिका ने मघवागणी को विनम्रता से निवेदन किया- "आप सरदारशहर पधारने की कृपा करें तथा मुझे संयम रत्न प्रदान कर कृतार्थ कराए।" वहाँ उपस्थित जनता ने सुनी तो सबके मन में आश्चर्य हुआ और अनेक लोग ने उसके पास आकर प्रश्न पूछने लगे। छोटी अवस्था होने पर भी बालिका मुखा ने निर्भयतापूर्वक जो स्पष्ट उत्तर दिए प्रभावित करने वाले थे।

बालिका मुखां की वैराग्यमयी और भावभरी प्रार्थना सुनकर मघवागणी ने विशेष अनुग्रह कर बीकानेर से सीधे सरदारशहर पधारने की घोषणा की। अकस्मात गुरु-कृपा प्राप्त कर सरदारशहर वासी श्रावक समाज में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। मघवागणी के मुखारविन्द से बालिका मुखां की दीक्षा तिथि की घोषणा सुनकर वहां के लोगों का हर्ष और उत्साह द्विगुणित हो गया। जहाँ उनके माता पिता ने बड़े डाटबाट से दीक्षा महोत्सव मनाया वहां गांव वालों ने भी खूब लाडकोड किए।

साध्वी मुखांजी की दीक्षा चैत्र शुक्ला नवमी (रामनवमी) को सरदारशहर के विशाल ताल मैदान में हुई। उन्होंने नाबालिग अवस्था में माता-पिता तथा विपुल सम्पदा को छोड़कर दीक्षा ग्रहण की इसका चारों ओर वैराग्यवर्धक प्रभाव पड़ा। उनके साथ साध्वी छोगांजी (कालू) तथा सेरांजी (सरदारशहर) भी दीक्षित हुई। मघवागणी ने मुखांजी की योग्यता व होनहारिता को देखकर उन्हें साध्वी छोगांजी और सेराजी से

दीक्षा-पर्याय से बड़ा रखा। चैत्र शुक्ला नवमी के दिन पुष्य नक्षत्र था। नक्षत्र का शुभ संयोग बाल साध्वी मुखांजी के शुभ भविष्य की पुण्यवत्ता प्रकट करने वाला साबित हुआ।

साध्वी मुखांजी की विनय नम्रता और समर्पण ने आचार्य मघवागणी एवं माणकगणी को विशेष प्रभावित किया। इसी की बदौलत उन्होंने आचार्यद्वय का विशेष अनुग्रह प्राप्त किया। पंचमाचार्य मघवागणी ने तो एक बार उनके व्यक्तित्व में छिपी विशेषताओं का मूल्यांकन करते हुए कहा-"मेरे पास मुखांजी जैसा कोई साधु हो तो मुझे पिछले प्रबन्ध के लिए किसी प्रकार की चिन्ता न रहे।" आचार्यवर के मुखारविन्द से निकले ये शब्द उस व्यक्तित्व में छिपी महान संभावना को व्यक्त करते है तो उनके प्रति सम्मान और गौरव की अभिव्यक्ति भी देते हैं।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तेरापंथ समाज भी उनको ऊंची दृष्टि से देखता था। मघवा सुजस तथा माणक महिमा जैसे गौरवशाली ग्रन्थों में उनके नाम का उपयोग सम्मान के साथ किया है- आचार्य तुलसी ने माणक महिमा में लिखा है -

हां रे आतो मुखांजी निज मन मुट्ठी में कीध जो।
अल्पायु गुरु-मघवा-वचन अखी रहो रे लोय॥ माणक महिमा पृ. 45

तेरापंथ धर्मसंघ का व्यवस्था पक्ष समता परक रहा है। तेरापंथ में दीक्षित होने वाला व्यक्ति समाज व्यवस्था के अनुरूप जीवन जीता है। खान-पान रहन-सहन शयन आदि सारी व्यवस्थाएं दीक्षा क्रम से निर्धारित की जाती है पर इस सन्दर्भ में साध्वी मुखांजी गुरु-कृपा से इस व्यवस्था की जीवन भर अपवाद रही। उनकी आहार पानी की पांती (विभाग) कभी नहीं हुई। दीक्षित होने के पश्चात साध्वी मुखांजी प्राय: आचार्यों की सन्निधि में रही। सं. 1945 से 1449 तक पांच चातुर्मास उन्होंने आचार्य श्री मघवा के सान्निध्य में किए। गुरु सन्निधि में उन्होंने आगम वाचन अध्ययन तथा वक्तृत्व कला का अच्छा विकास किया। साध्वी मुखांजी ने मात्र ग्यारह वर्ष संयम साधना की। बीस वर्ष की अल्पायु में उनका स्वर्गवास हो गया। उनका स्वर्गवास पौष कृष्णा चौथ को बीदासर में हुआ।

13. साध्वी मीरांजी (सिरसा) (553)

साध्वी मीरांजी का जन्म पुनलसर गांव के सेठिया गोत्र में सं. 1921 में हुआ। उनके पिता का नाम भोजराजजी था। उनका विवाह सिरसा के बालमुकन्दजी बरड़िया के साथ हुआ। उस समय सिरसा पंजाब राज्य की सीमा में था। वर्तमान में हरियाणा में है। अल्पावस्था में उन पर वैधव्य का वज्रपात हुआ। भयंकर दुखद क्षणों में उनके मानस में वैराग्य की भावधारा प्रवाहित हुई। साधु साध्वियों के पावन सान्निध्य से उनका वैराग्य पुष्ट हुआ और दीक्षित होने का संकल्प फलवान बना। सं. 1945 कार्तिक कृष्णा अष्टमी को पंचमाचार्य मघवागणी के कर-कमलों से सरदारशहर में संयम श्री प्राप्त कर मीरां बाई साध्वी मीरा बनी।

यद्यपि 'मघवा सुजस' में साध्वी मीरांजी का नामोल्लेख नहीं है। इसका कारण संभवत: यही रहा है कि मघवा सुजस ग्रन्थ में माणक गणी ने तपस्या के सन्दर्भ में साधु साध्वियों के नामों का उल्लेख किया है। उस वर्ष दीक्षित होने के पश्चात उपवास आदि तपस्या न की हो इसलिए उनका नाम मघवा सुजस में नहीं हो सका।

साध्वी मीरांजी पहले मातुश्री छोगांजी के सान्निध्य में रही। आचार्यश्री कालूगणी की उन पर अत्यधिक कृपा थी। मातुश्री की सन्निधि में तथा जब भी जहाँ भी मौका मिला, उन्होंने अपनी प्रतिभा का अच्छा उपयोग किया। सभी प्रकार की योग्यताएं प्राप्त होने पर पूज्य कालूगणी ने संवत 1967 में उनको अग्रगामी बनाया। संवत 1967 से 1996 तक अनेक प्रदेशों में विहरण कर तेरापंथ धर्मसंघ के प्रचार-प्रसार में अपनी शक्ति का उपयोग किया। सं. 1997 में जब वे चलने फिरने में कठिनाई महसूस करने लगी तब से वे मोमासर में स्थिरवासी बन गई। सं. 2004 तक उन्होंने मोमासर में स्थिरवास किया।

एक बार जब वे छापर में प्रवास कर रही थी, उन दिनों पूज्य कालूगणी बीदासर में विराजमान थे। मात्र चार कोस दूरी पर गुरु का प्रवास उनके मन में दर्शन की भावना जगा रहा था। कालूगणी ने भंयकर गर्मी के मौसम को देखते हुए बीदासर आने की स्वीकृति नहीं दी।

मातुश्री छोगांजी को जब उनकी मानसिकता ज्ञात हुई तब उन्होंने साध्वी मीरांजी को दर्शन करने के लिए बीदासर आने को कह दिया। माजी महाराज के संवाद सुन वे प्रसन्नता से खिल उठी और उसी समय विहार कर बीदासर पहुंच गई। ज्योंही उन्होंने

वन्दना की, आचार्यवर ने कड़ी नजर से देखते हुए उपालंभ के लहजे में कहा- तुम कैसे आ गई, मैंने मना किया था, अभी वापिस जाओ। साध्वी मीरांजी विनयावनत हो मौन खड़ी रही। मातुश्री छोगांजी उस समय वहीं आर्चायवर की उपासना में खड़ी थी। मातुश्री ने विनय भाव से निवेदन किया- गुरुदेव! आपने मना किया है, यह मुझे ज्ञात नहीं था। मैंने इसको दर्शन के लिए कहला दिया। कालूगणी ने माजी महाराज की बात सुन शान्तभाव से कहा- "ठीक है। साध्वी मीरांजी को मातुश्री की करुणा से सेवा का अमूल्य अवसर उपलब्ध ही नहीं हुआ। कालूगणी के मन में विश्वास के भाव भी जम गए।

साध्वी मीरांजी की तपस्या में सहज रुचि थी। उनके जीवन में तपस्या का प्रवाह सतत चालू रहा और उनका नाम तपस्वी साधु साध्वियों की शृंखला में जुड़ गया। उन्होंने उपवास से लेकर तेरह दिन तक की लड़ी की। उनकी समग्र तपस्या निम्न है।

उपवास	-	3188
बेला	-	173
तेला	-	6
चोला	-	9
पांच	-	6
6 से 13 तक सब एक बार		

उनकी तपस्या के कुल दिन 3694 अर्थात् दस वर्ष 3 महीने चार दिन होते है।

अन्तिम समय में वृद्धावस्था के कारण वे मोमासर में स्थिरवासी बन गई। उन्होंने लगभग आठ साल तक वहां प्रवास किया। उस स्थायी प्रवास से मोमासर वासियों ने साध्वीजी से अच्छे संस्कार और आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की। परिणामस्वरूप श्रावक श्राविकाओं में अच्छी धर्म जागरणा हुई।

सं. 2004 ज्येष्ठ कृष्णा तीज के दिन आधा घंटे के तिविहार अनशन में उनका स्वर्गवास हो गया। उन्होंने मघवागणी से तुलसीगणी तक पांच आचार्यों का शासन काल देखा। आचार्य तुलसी ने उनके सन्दर्भ में एक सोरठा कहा-

मीरा सति सुखकार, मघवागणि कर दीक्षिता।
तुलसीगणि-बरतार, मूमासर सुरपुर गमन॥

14. साध्वी जड़ावांजी (बीदासर) (558)

साध्वी जड़ावांजी का पीहर और ससुराल दोनों बीदासर में था। उनका पीहर बीदासर के चौरड़िया परिवार में और ससुराल बैंगाणी परिवार में था। पति के देहान्त होने के बाद उन्होंने आचार्यश्री मघवागणी के हाथ से बीदासर में संयम स्वीकार किया। दीक्षा लेने के पन्द्रह दिन बाद ही वे गण से पृथक् हो गई।

उनके संदर्भ में कहा जाता है कि – प्रकृति से वे बहुत जटिल थी। दीक्षा लेते ही स्वयं के और साथ रहने वाली साध्वियों के असमाधि पैदा करने लगी। एक दिन मघवागणी के सम्मुख अपनी कठिनाई रखते हुए उन्होंने कहा – मैं ठंडा आहार नहीं खा सकती।

परम कारुणिक दयानिधान मघवागणी ने समाधान दिया – तुम्हें गर्म आहार करा दिया जाए, ऐसी व्यवस्था कर देंगे।

फिर बोली – मेरे से पात्रों का पानी नहीं पिया जा सकता।

मघवागणी – कोई बात नहीं एक मटकी रख ली जाएगी।

जड़ावांजी – मैं गन्दे मलिन कपड़े नहीं पहन सकती।

मघवागणी – तुम्हे नए कपड़े दे दिए जाएंगे और पुराने कपड़े अन्य साध्वियां उपयोग में ले लेंगी।

जड़ावांजी – मैं इन साध्वियों के साथ नहीं रह सकती। यह भी उन्होंने अपशब्दों का प्रयोग कर कहा।

तब मघवागणी ने कहा – संयम पालने की इच्छा हो तो अन्य सुविधाएं दे सकते हैं पर रहना तो इन्हीं साध्वियों के साथ पड़ेगा। आखिर उनकी विवेकहीनता और संयमपालन की भावना न देखकर उनको गण से बहिष्कृत कर दिया।

15. साध्वी जड़ावांजी (चाड़वास) (562)

साध्वी जड़ावांजी मोमासर के हजारीमलजी पटावरी की पुत्री थी। उनका जन्म सं. 1925 की अक्षय तृतीया को हुआ। बचपन खेलकूद हंसी खुशी में गुजर गया। शैशव वय में उनका विवाह चाड़वास के सुप्रसिद्ध सेठिया परिवार में चुन्नीलालजी सेठिया के साथ हुआ। उनके एक पुत्र हुआ, जिनका नाम जुहारमलजी था। जब वे मात्र छह महीने के थे, तभी चुन्नीलालजी दिवंगत हो गए। जड़ावांजी की शादी हुए केवल सात वर्ष हुए थे, उनपर वैधव्य का उल्कापात हो गया। ऐसे समय में संसार से विरक्ति होना स्वाभाविक है। जड़ावांजी को अपने मामा मुनि आनन्दरामजी से अवसर की अच्छी प्रेरणा मिली। उन्होंने वैराग्य को गहरा सिंचन दिया। उसी का परिणाम था कि तीन वर्षीय पुत्र को छोड़ उन्होंने दीक्षा लेने का निर्णय कर लिया। अपने पुत्र को सास को सौंपकर सं. 1947 भाद्रव शुक्ला चतुर्दशी को मघवागणी से बीदासर की पावन धरती पर संयम रत्न प्राप्त किया। दीक्षित होने के पश्चात मघवागणी ने उनको साध्वी मखतूलांजी (385) के सिंघाड़े में रखा। इक्कीस वर्ष वे साध्वी मखतूलांजी के साथ रही और अच्छी शोभा प्राप्त की।

सं. 1979 में साध्वी मखतूलांजी के दिवंगत होने पर अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने साध्वी जड़ावांजी का सिंघाड़ा बनाया। लगभग 28 वर्ष तक मारवाड़ मेवाड़, थली और हरियाणा में विहरण कर गांव, नगर पुर में धर्म का प्रचार–प्रसार किया। साध्वी जड़ावांजी तपस्या में रूचि रखने वाली साध्वी थीं। उन्होंने अपने जीवन में 3739 दिन का तप तपा। उन्होंने लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की पहली परिपाटी की। उनकी तपस्या का क्रम इस प्रकार है –

उपवास	–	2425	छह	–	4
बेला	–	295	सात	–	5
तेला	–	115	आठ	–	3
चोला	–	41	नौ	–	3
पंचोला	–	21			

इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक एकासन और आयंबिल किए। उन्होंने पांच बार अढाई सौ पच्चक्खाण किए। सं. 1995 के शेषकाल में उनका प्रवास मोमासर में था, उस समय उन्होंने जीवनभर एकान्तर तप करने का संकल्प किया। सं. 1996 के शेषकाल में उन्होंने लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की पहली परिपाटी शुरु की। उस वर्ष अर्थात 1997 का उनका चातुर्मास डीडवाना घोषित था। तपस्या के साथ विहार करते

हुए वे डीडवाना चातुर्मास करने सकुशल पहुंच गईं। परिपाटी के क्रम में चढते समय दूसरी बार नौ की तपस्या चल रही थी। सं. 1997 भाद्रव शुक्ला नवमी को रात्रि के दस बजकर बीस मिनिट पर वे उठी। अचानक तेज आवाज में अरिहंत, सिद्ध तथा आचार्यवर को वन्दना कर सभी साध्वियों के सम्मुख तिविहार अनशन स्वीकार किया। परिपाटी में चढते समय की गई तपस्या से उनका शरीर अत्यधिक क्षीण हो गया था। उन्हें यह अनुभव होने लग गया कि परिपाटी पूर्ण होना कम संभव है। अतः आचार्यवर से उन्होंने अनशन के लिए आज्ञा मंगवा ली। उस वर्ष आचार्यश्री का चातुर्मास लाडनूं में ही था।

सं. 1997 भाद्रव शुक्ला त्रयोदशी भिक्षु चरमोत्सव के ऐतिहासिक दिन सांयकाल 6 बजकर पैंतीस मिनिट पर चौविहार अनशन किया जो मात्र सवा प्रहर का आया। सं. 1997 भाद्रव शुक्ला त्रयोदशी की रात को ग्यारह बजकर सात मिनिट पर डीडवाना में स्वर्गवास हो गया।

साध्वी जड़ावांजी की आंख में फूला होने से अनेक वर्षों से उन्हें बिल्कुल दिखाई नहीं देता था। पर अनशन में ऐसा चमत्कार घटित हुआ कि एक आंख से स्पष्ट दिखाई देने लगा।

16. साध्वी छगनांजी (रासीसर) (575)

साध्वी छगनांजी देशनोक निवासी गिरधारीमलजी नाहटा की पुत्री थी। उनका जन्म सं. 1935 में हुआ। उनका नाम सुगना था। वे जब नौ साल की अवस्था में थी तभी उनका विवाह देशनोक के निकटवर्ती गांव रासीसर के चतरोजी छाजेड़ के पुत्र भौमराजजी छाजेड़ के साथ हुआ। नियति का योग ही ऐसा था कि विवाह के एक वर्ष बाद उनके पति का देहावसान हो गया। छगनांजी जीवन की वर्णमाला का अर्थ समझ पाती, उससे पहले ही जीवन अर्थहीन हो गया। एक ओर विरह के बादल थे तो दूसरी ओर विपक्ष के तूफान। ऐसे दुखद और अन्धकार भरे क्षणों में संयमी साधु साध्वियों के सम्पर्क ने दीपक बनकर उनके जीवन में उजाला फैलाया। साध्वियों की प्रेरणा से उन्होंने प्राथमिक तत्त्वज्ञान सीखा और संयमी जीवन की ओर उनका अनुराग बढ़ने लगा। चार वर्ष तक त्याग और संयम साधना के प्रयोग से उनका वैराग्य पुष्ट बन गया। पति वियोग के पश्चात् चवदह वर्ष की अवस्था में संवत 1949 की मार्गशीर्ष कृष्णा एकम को देशनोक में उनकी दीक्षा हुई। उन्होंने साध्वी हुलासांजी (392) के हाथ से हुई।

वे मघवागणी के युग की अन्तिम साध्वी थी। दीक्षित होने के बाद जब उन्होंने मघवागणी के दर्शन किए। गुरुदेव ने उनको सुगना के स्थान पर साध्वी छगना कहकर सम्बोधित किया। इसी दिन से उनका नाम परिवर्तित हो गया। दीक्षित होने के पश्चात वे ज्ञान ध्यान स्वाध्याय के साथ साधुचर्या में जागरूक बन विकास के पथ पर अग्रसर होने लगी। उनकी जागरूक जीवन शैली सहज प्रभावशाली थी।

एक बार वे अपनी अग्रगण्या साध्वी हुलासांजी के साथ चूरू में प्रवास कर रही थीं। रात्रि के समय परिष्ठापन के लिए वे मकान से बाहर गई। उस समय स्थानीय प्रमुख श्रावक गुरुमुखरायजी कोठारी खड़े थे। उन्होंने साध्वीजी की चाल तथा परिष्ठापन की जागरूकता देखी। और वे प्रभावित हुए। एक दिन अवसर देख अग्रगण्या साध्वी हुलासांजी से कहा- इस नवदीक्षित साध्वी का भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि ये अभी से साधु चर्या के प्रति सजग है, हर कार्य सावधानी से करती है। अनुभवी और संघनिष्ठ श्रावक द्वारा कही गई बात उनके जीवन में सही साबित हुई। उनमें सेवाभावना का सहज गुण था और व्यवहार में कौशल था अत: जहाँ भी आचार्यों ने उनको रखा, उन्होंने सफलता प्राप्त की। कुछ वर्ष वे अपनी संसारपक्षीया बुआ साध्वी चौथांजी के साथ रही। फिर उन्हें गुरुकुलवास में गुरु सन्निधि में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुकुलवास में रहकर उन्होंने वर्षों तक आचार्यश्री

तथा नवदीक्षित साधु साध्वियों के लिए गोचरी की। उन्हें जब जहाँ आचार्यों ने नियुक्त किया, उन्होंने सेवा भावना से कार्य किया। उनकी सेवा भावना से प्रसन्न होकर सप्तमाचार्य डालगणी ने उनको चार हजार गाथाओं से पुरस्कृत किया।

अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने पदासीन होते ही प्रथम मर्यादा महोत्सव पर सं. 1966 में तीन नए सिंघाड़े बनाए, उनमें एक साध्वी छगनांजी का था। अग्रगामी अवस्था में उन्होंने पन्द्रह चातुर्मास किए। मारवाड़, मेवाड़ और थली में ही प्राय: उनका विहरण हुआ। जहाँ-जहाँ चातुर्मास किया, लोगों में अच्छी धर्म जागरणा हुई।

अष्टमाचार्य कालूगणी ने उन्हें संवत 1981 का चातुर्मास देवगढ़ करने का आदेश दिया। उस समय वे शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ थी। उन्हें अत्यधिक कमजोरी अनुभव हो रही थी, फिर भी गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर साहस के साथ वे मंजिल की दिशा में चल पड़ी। छोटी-छोटी मंजिल कर गांव ढाणी में प्रवास करती-करती वे देवगढ़ पहुंच गई। स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शारीरिक अक्षमता ने उनको चिन्तन की नई दिशा दी। एक दिन उन्होंने अपनी अनुगामी साध्वी सुन्दरजी (तारानगर) के सामने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा- शरीर साथ नहीं दे रहा है, अत: अनशन करने की मानसिकता है।

साध्वी सुन्दरजी ने निवेदन किया- आप एक बार धीरे-धीरे संलेखना करें पर अनशन की बात न करें। साध्वीश्री छगनाजी की मानसिकता संकल्प की आंच पक चुकी थी, अत: उन्होंने सुनी सबकी पर की अपने मन की। एक दिन अन्तिम निर्णय अनशन का सबके सामने प्रस्तुत किया। उनकी प्रबल भावना और अटूट मनोबल के सामने सब विनत हो गए। आश्विन कृष्णा एकादशी (11) को देव गुरु का स्मरणकर विधिवत अनशन स्वीकार कर लिया। संथारा स्वीकार करने के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य में सुधार शुरू हो गया। संथारा में स्वास्थ्य वृद्धि देख एक बार तो आसपास के वातावरण में विचार-सा पैदा हो गया। साध्वीजी की चट्टान सी दृढ़ता और वर्द्धमान भाव धारा को देख सब आश्वस्तं हो गए। अनशन में ध्यान, मौन के साथ स्वाध्याय करना उनकी उल्लेखनीय विशेषता थी।

साध्वी छगनांजी के प्रभावी अनशन के संवाद जहां-जहां मिले लोग अच्छी संख्या में दर्शनार्थ पहुंचे। देवगढ़ के ठाकुर साहब को जब ज्ञात हुआ तो वे भी साध्वीजी के दर्शन करने आए और भूखे न रहने का आग्रह भरा निवेदन किया। साध्वियों ने अनशन के

सन्दर्भ में जानकारी देते हुए कहा- इन्होंने भोजन सदा के लिए त्याग दिया है। अब ये भोजन नहीं करेंगी।

ठाकुर साहब पुन: बोले- यदि रोटी आदि का त्याग कर चुकी हैं तो अन्य पदार्थ ले लें। मेरे राज्य में कोई भूखा नहीं रह सकता। हम सब तो खा रहे हैं और आप भूखी रहे यह कैसे हो सकता है?

साध्वियों और ठाकुर साहब के बीच चल रहे प्रश्नोत्तर को सुन साध्वी छगनांजी ने ओजस्वी वाणी में कहा- ठाकुर साहब! मैंने रोटी न मिलने के कारण अनशन नहीं दिया है। मुझे आन्तरिक शक्ति के जागरण से प्रेरणा मिली और मेरा आत्मबल जाग उठा। इसलिए मैंने आंतरिक वैराग्यभाव से भोजन न करने का संकल्प किया है। मुझे रंच मात्र भी कष्ट की अनुभूति नहीं होती, प्रत्युत अन्त:करण में आनन्द का स्रोत-सा प्रवाहित हो रहा है। साध्वी के पवित्र आभावलय और अन्त:करण से निकले शब्दों से ठाकुर साहब समझ गए और उनके अनशन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए शुभकामना करने लगे। इस अनशन से भैक्षव शासन की प्रभावना बहुत हुई। उन्हें 37 दिन का संथारा आया।

आचार्यश्री भारीमालजी के युग में साध्वी गुमानांजी को 60 दिन का संथारा आया था। उसके बाद साध्वी समाज में इतना लम्बा अनशन साध्वी छगनांजी को आया। इस संदर्भ में आचार्य तुलसी ने कालूयशोविलास में लिखा है -

1. **छगना सती सिंघाड़पति, देवगढ चउमास।**
   तनु कारण जाणी कियो अनशन अति उल्लास॥
2. **अंग अरोग हुयो तभी, भारी बण्यो विचार।**
   दिल दृढ़ता स्यूं सीझियो, दिन सैंतीस निकार॥
3. **भारमल्ल-शासन पछै, इसड़ो अनशन अन्य।**
   श्रमणी गण में इण कियो, गणिवर पुण्य अनन्य॥

चमत्कार

कार्तिक शुक्ला एकम को साध्वी छगनांजी ने चौविहार अनशन किया। उसी रात्रि में साध्वियों के स्थान पर दिव्य प्रकाश हुआ। वह प्रकाश इतना अधिक चकाचौंध करने वाला था कि वहां बैठे भाई बहिन उस देख नहीं सके। उस समय वहां तीन लालटेन जल

रही थी। उस प्रकाश-पुंज के कारण एक लालटेन बुझ गई और दो गिरकर टूट गई। यह सब देखकर साध्वी सुन्दरजी बोली- यह सारा क्या है? क्या चमत्कार है? तभी साध्वी छगनांजी ने कहा- यह देव-माया है। तभी उन्होंने दूसरा प्रश्न किया। क्या और भी चमत्कार होंगे? साध्वी छगनांजी बोली- मेरे जाने के बाद देख लेना।

कार्तिक शुक्ला- 2-3 (संयुक्त) को अनशन के सैतीसवें दिन परम समाधि पूर्वक साध्वीजी ने पण्डित मरण प्राप्त किया। उन्हें छह घंटे का चौविहार अनशन आया। ज्योहीं अनशन की सम्पन्नता के संवाद चारों ओर पहुंचे, शोभायात्रा में सम्मिलित होने के लिए हजारों लोग देवगढ़ पहुंच गए। लम्बे जुलूस के साथ श्मशान में शव को चित्ता पर रखा चित्ता को अग्नि द्वारा प्रज्वलित करते ही शव अदृश्य हो गया।

दूसरा चमत्कार तब हुआ जब धूं-धूंकर चिता पूरी जल गई पर चित्ता पर सवा हाथ का कपड़ा जिस पर दो स्वस्तिक बने हुए थे बिना जले सुरक्षित पड़ा था। इसके अतिरिक्त चांदी के कलश भी ज्यों के त्यों पड़े रहे। चिता की अग्नि इन सबको नहीं जला सकी। यह सारा आश्चर्य वहा खड़े सभी लोगों ने आंखों से देखा और विस्मय विमुग्ध हो गए। उस समय वे यह निर्णय नहीं कर पाए कि इन्हें अपने साथ ले जाए या नहीं। इसी ऊहापोह में कई श्रावक साध्वी सुन्दरजी के पास पहुंचे और दर्शन कर चामत्कारिक घटना की पूरी जानकारी दी। साध्वी सुन्दरजी ने पूछा- न जलने वाली वे सारी चीजें कहां है?

भाइयों ने कहा- वे तो वहीं पड़ी है। तभी साध्वीजी के मुख से सहज शब्द निकले- "भाग्य के बिना कुछ भी उपलब्ध नहीं होता।" सुनते ही कुछ श्रावक वे चीजें लेने के लिए श्मशान की ओर दोड़े पर वहां कुछ नहीं मिला तो वे निराश होकर पश्चात्ताप करते हुए लौट आए।

जब इस सारे घटना-क्रम की जानकारी ठाकुर साहब को मिली। तब श्रावक समाज को सम्बोधित कर उन्होंने कहा वणिक होकर भी तुम लोग मूर्ख निकले। यदि कोई समझदार होता तो ये वस्तुएं हाथ से नहीं गंवाता। यदि तुम शुभ-अशुभ की आशंका में अपने पास रखने में विचार करते तो मैं खुशी खुशी संभालकर रख लेता। अब तो पश्चात्ताप के सिवाय कुछ था नहीं।

षष्ठमाचार्य माणकगणी के युग की साध्वियां

1. साध्वी विरधांजी बोरज (577)
2. " सुवटांजी राजलदेसर (584)
3. " नानूंजी सरदारशहर (591)
4. " मघूजी रीड़ी (593)
5. " वाल्हांजी सिरसा (598)
6. " धन्नांजी जसोल (600)

1. साध्वी विरधांजी (बोरज) (577)

साध्वी विरधांजी मेवाड़ के बोरज की पुत्रवधु और सिसोदा की पुत्री थी। उनका जन्म सं. 1925 भाद्रव कृष्णा 9 को हुआ। पचीस वर्ष की युवावस्था में तीव्र वैराग्य भाव के साथ पति वियोग के पश्चात मुनि जयचंदलालजी केलवा के हाथ से अपनी जन्मभूमि में दीक्षा स्वीकार की। दीक्षित होने के बाद उन्हें गुरु सन्निधि में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनमें दो महत्त्वपूर्ण असाधारण विशेषता थी। वे प्रकृति से भद्र, सरल और ऋजु थी। दूसरी बात उनकी सेवाभावना विलक्षण थी। सेवा उनका जीवनव्रत था। उन्होंने आचार्यों एवं साध्वीप्रमुखा की सेवा कर अनमोल अवसर का जिस उत्साह, उमंग और निर्जरा भाव से लाभ लिया, उसी तरह जब कभी वृद्ध, बाल और ग्लान को अपेक्षा हुई वे उसी प्रसन्नता के साथ उनकी सेवा में जुट गई। माणक महिमा में आचार्य तुलसी ने उनकी इन्हीं विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है –

.....विरधांजी बोरज वारी।
घणा बरस लग भद्र प्रकृति, गुरु सेवा सारी।।

सं. 1984 में पूज्य कालूगणी ने उनको अग्रगण्या बनाया। यद्यपि वे बहुत पढ़ी लिखी नहीं थी पर श्रमशील थीं और स्वकल्याण के साथ परकल्याण की भावना प्रबल थी। वे जब–जब जिस क्षेत्र में चातुर्मास करने गईं उस क्षेत्र के लोगों का अच्छा उपकार किया। उनका अपना एक सिद्धान्त था कि चौमासा करने गुरु भेजें वहां अपने सामर्थ्यानुसार यदि काम न करें तो स्वयं की शोभा नहीं होगी, संघ की प्रभावना नहीं होगी। वह चौमासा नहीं तमाशा बन जाएगा।

सं. 1991 में साध्वी विरधांजी की लाडनूं सेवा केन्द्र में चाकरी थी। लाडनूं श्रावक समाज पर उन्होंने अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा और सेवा भावना का अच्छा प्रभाव छोड़ा। उन्होंने बड़ी तन्मयता और आत्मीयभाव से वृद्ध साध्वियों के दिल को जीत लिया। चाकरी सम्पन्न कर उन्होंने जब अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के दर्शन किए। आचार्यवर ने प्रसन्नता के साथ कृपा भाव बरसाते हुए कहा – पढी लिखी न होने पर भी डोकरी ने चाकरी में बहुत शोभा ली है।

सं. 1994 में उनका चौमासा सरदारशहर था। शहर बहुत बड़ा था। श्रावक समाज भी वहां का प्रभावशाली था। वहां वे स्वयं गोचरी जाती और एक दिन में लगभग 90 घरों की गोचरी कर लेती। साथ जाने वाली साध्वी के हाथ में पानी का तुम्बा दे देती और कहती – जिन घरों में बहनों या भाइयों को कच्चे पानी का त्याग

है उन सबके घर से पानी का व्रत निपजाओ। इस प्रकार पूरे श्रम और पुरुषार्थ के साथ एक एक घर को संभाला और कर्मनिर्जरा का महान लाभ कमाया।

उनका स्वभाव कोमल और मृदु होने के साथ सरल बहुत था। गण–गणपति के प्रति अटूट आस्था थी। गुरु के मुंह से जो भी शब्द निकल जाता वे उसे सफल बनाने का पूरा प्रयत्न करतीं, भले स्वयं को कठिनाई का भी सामना करना पड़ा। सं. 1995 रतनगढ मर्यादा महोत्सव था। बहिर्विहारी वयस्थविर श्रुतस्थविर साध्वियां आचार्यश्री सेवा में बैठी थी। आचार्यश्री तुलसी ने वहां उपस्थित सभी साध्वियों को सम्बोधित करते हुए कहा – तुम प्रायः सभी अवस्था प्राप्त अनुभवी हो। अवस्था के कारण अधिक विहार करने में कठिनाई है। तुम लोगों के पास योग्य साध्वियां हैं, उनका यदि उदार भाव से विसर्जन करो तो वे संघ के प्रचार प्रसार में काम आ सकती है। नए सिंघाडे बनाकर उनको भेजा जा सकता है।

वहां उपस्थित लगभग सभी साध्वियों ने उत्तर देने में कठिनाई महसूस की, पर साध्वी विरधांजी ने तत्काल बद्धांजलि निवेदन किया – गुरुदेव! मेरे पास साध्वी जतनकुमारी राजगढ काम करने वाली साध्वी है। व्याख्यान अच्छा देती है, समझदार है, आप जहां मरजी हो काम में लें। जब कि स्थिति यह थी कि उनके पास एक मात्र वे ही काम करने वाली थी। आचार्यश्री ने उसी समय उनको अग्रगामी बना दिया।

वे तपस्विनी थी पर छोटी छोटी तपस्या करतीं। उपवास बेला आदि करती ही रहती।

उपवास	–	3014	चोले	–	10
बेले	–	321	पांच	–	3
तेले	–	11	दस	–	1

अन्तिम समय में वृद्धावस्था के कारण उन्हें दो साल रतनगढ़ रहना पड़ा। उनकी सहज सरलता, संघनिष्ठा, समर्पण भावना का जनता में अच्छा प्रभाव रहा। अन्त में सं. 2006 पौष शुक्ला तृतीया को सवा सात घंटों के चौविहार अनशन में उनका स्वर्गवास हो गया।

2. साध्वी सुवटांजी (राजलदेसर) (584)

साध्वी सुवटांजी राजलदेसर निवासी गिरधारीमलजी बैद की पुत्री थी। उनका जन्म सं. 1934 में हुआ। सं. 1951 की पोष शुक्ला द्वितीया को उन्होंने अपनी जन्मभूमि में आचार्यश्री माणकगणी के हाथों दीक्षा स्वीकार की। उस समय उनकी अवस्था सतरह साल की थी। इसी बीच उनका विवाह राजलदेसर के कुण्डलिया परिवार में हुआ। वैधव्य का वज्राघात भी सहन किया और वैराग्य की परीक्षा देकर कसौटी में स्वर्ण की भांति खरी भी उतरी।

दीक्षा लेते ही उन्हें साध्वी कानकुमारीजी (साध्वीप्रमुखा) के कुशल संरक्षण में संयम साधना और ज्ञानाराधना करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने विनय, भक्ति और विनम्रता की त्रिवेणी में अवगाहन करते हुए आगम अध्ययन में अपने आपको नियोजित किया। आगम के रहस्यों को समझने का प्रयत्न किया और व्याख्यान–कला में विशेष दक्षता प्राप्त की। उनमें लिपिकला का अच्छा कौशल था। कहते हैं उन्होंने लाखों पद्य लिपिबद्ध किए जो इतिहास की धरोहर है।

वे निर्भीक और साहसिक मनोवृत्ति वाली साध्वी थी। उनके व्यक्तित्व की अपनी पहचान थी, अपना प्रभाव था। उनके हिम्मत की धाक सी पड़ती थी। सं. 1963 में सप्तमाचार्यश्री डालगणी ने उन्हें अग्रगामी बनाया। आचार्य तुलसी ने माणक महिमा में वजनदार शब्दों में लिखा है –

सुवटांजी दाठीक, दीपतो हो सिंघाडो रे।

उन्होंने मेवाड़, मारवाड़, थली, ढूंढाड, हरियाणा और मालवा में विहरण कर जनता का अच्छा उपकार किया और अनेक लोगों को श्रद्धालु बनाया।

सं. 1986 का चातुर्मास करने के लिए जा रही थी। लाडनूं के पास खानपुर में वे अचानक अत्यधिक बीमार हो गई। विहार करने की उनकी स्थिति नहीं रही। उस समय आषाढ का महीना था। अष्टमाचार्यश्री का चातुर्मास लाडनूं था। आचार्यप्रवर चातुर्मास करने लाडनूं पधार गए थे। साध्वी सुवटांजी की अस्वस्थता के संवाद मिलते ही पूज्य कालूगणी ने कुछ साध्वियों को खानपुर भेजा। वे कम्बल आदि से व्यवस्थित सुखपाल बनाकर अपने कन्धों पर उठाकर उन्हें लाडनूं लेकर आई। आषाढ शुक्ला चतुर्दशी को लाडनूं के प्रसिद्ध श्रावक पृथ्वीराज बरमेचा के मकान में उनका स्वर्गवास हो गया। गुरु दर्शन का सौभाग्य और गुरु चरणों में जाने का मौका किसी भाग्यशाली को ही मिलता है, वह दुर्लभ अवसर साध्वी सुवटांजी को मिला।

3. साध्वी नानूजी (सरदारशहर) (591)

तपस्विनी साध्वी नानूजी के जन्म, विवाह तथा दीक्षा तीनों संस्कार सरदारशहर की पावन धरती पर हुए। वे छाजेड़ परिवार की पुत्री तथा दूगड़ परिवार की पुत्रवधु थी। सं. 1952 ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को आचार्यश्री माणकगणी के पवित्र क़र–कमलों से संयम साधना स्वीकार की। उन्होंने तप साधना से विपुल कर्म निर्जरा कर अपने आपको धन्य बनाया और धर्मसंघ की प्रभावना एवं गरिमा को वृद्धिंगत करने में अपना योगदान दिया। उनकी तपस्या का क्रम इस प्रकार है –

उपवास	–	1386	दस	–	4
बेला	–	547	ग्यारह	–	5
तेला	–	92	चवदह	–	1
चोला	–	124	पन्द्रह	–	3
पंचोला	–	66	सोलह	–	1
छह	–	13	सतरह	–	1
सात	–	10	अठारह	–	1
आठ	–	9	बांवीस	–	1
नौ	–	4			

साध्वी नानूजी सं. 1997 वैशाख कृष्णा सप्तमी को लाडनूं में दिवंगत हुई।

4. साध्वी मघूजी (रीडी) (593)

श्रीडूंगरगढ और बीदासर के मध्य एक गाँव है रीड़ी। वहां पहले ओसवाल परिवार अच्छी संख्या में रहते थे। साध्वी मघूजी का ससुराल रीड़ी के भंसाली परिवार में था। उनके पति का नाम प्रतापमलजी भंसाली था। उनके पिता बीदासर निवासी उदयचन्दजी मरोठी थे उनका जन्म संवत 1934 मिगसर कृष्णा द्वितीया को हुआ। उनका विवाह कब हुआ, यह जानकारी उपलब्ध नहीं है पर साध्वी मघूजी ने पति वियोग के पश्चात सं. 1953 में आचार्यश्री माणकगणी के कर-कमलों से बीदासर में दीक्षा स्वीकार की।

साध्वी मघूजी को माणकगणी का सान्निध्य बहुत कम मिला। गुरु आज्ञा से जहाँ-जहाँ वे रही अपनी कर्मठता से अच्छा सुयश प्राप्त किया। विनय भाव से उन्होंने बड़ों का अच्छा वात्सल्य पाया। संवत 1968 में उनकी योग्यता का अंकन कर अष्टमाचार्य कालूगणी ने उनका सिंघाड़ा किया। उन्नीस सौ अड़सठ से दो हजार बारह की साल तक उन्होंने अग्रगामी के रूप में संघ को सेवा दी। सं. 2008 से 2012 तक वे चाड़वास में स्थिरवासी रही। चाड़वास के लोगों के मन में उनका अच्छा प्रभाव रहा। उनके द्वारा दिए गए संस्कार आज भी जीवित है।

कसौटी के क्षणों में

साध्वी मघूजी साहसी और समय पर सही निर्णय लेने वाली साध्वी थी। सं. 1964 में उनका चातुर्मास जोजावर था। वहां अचानक प्लेग की भयंकर बीमारी फैल गई और राज्य की ओर से गांव खाली करने का आदेश जारी हो गया। देखते-देखते प्रायः गांव खाली होने लगा। वहां के लोग आसपास के गांवों में जाने लगे। साध्वियों के सामने समस्या उभर आई कि क्या करें? तभी जोजावर के श्रद्धानिष्ठ वरिष्ट श्रावक गणेशमलजी संचेती ने निवेदन किया- महाराज! जोजावर के लोग गांव छोड़कर जा रहे हैं, आपका क्या विचार है? हम तो आपकी सेवा में है। ऐसे संकट के क्षणों में आपको छोड़कर हम कहीं नहीं जाएंगे।

साध्वी मघूजी ने अपनी निर्णायक शक्ति का उपयोग करते हुए कहा- यद्यपि चातुर्मास में विहार का विधान नहीं है। पर उपद्रव, रोग का आतंक, राजा की आज्ञा आदि कुछ स्थितियों के उपस्थित होने पर जैसा उचित हो, अपवाद भी है। हमारे लिए आप लोग भयंकर रोग के आतंक में यहां रहो, यह भी उचित नहीं है। इसलिए आप लोग जहाँ जाएंगे वही हमारा जाने का भाव है। क्योंकि विशेष परिस्थिति में चातुर्मास में भी विहार का

विधान है।

गणेशमलजी ने जोजावर से दो कोश दूर राणानाडी गांव में जाने का निर्णय किया। साध्वियां भी उनके साथ राणानाडी पहुंच गई। लगभग नौ व्यक्ति उनके साथ थे। राणानाडी में साध्वियां वहां के उदोजी रावत के चबूतरे में ठहरी। वह पूरा गांव आमिभोजी था अत: साध्वियाँ गांव के घरों की गोचरी कर सके वह अनुकूलता नहीं थी। इसलिए साध्वियां एक दिन गणेशमलजी संचेती के घर की गोचरी करती और दूसरे दिन सभी साध्वियां चौविहार उपवास करती। उपवास के दिन मात्र आधा सेर पानी लाते और उसी से पूरे दिन काम चलाते। गणेशमलजी के पास दो भैंसे थी। वे उनका आधा दूध साध्वियों को बहरा देते और आधे से अपना और परिवार का काम चलाते।

उन दिनों वर्षा ने भी भयंकर रूप धारण कर लिया। साध्वियों के पास रहने के लिए पूर्ण सुरक्षित स्थान नहीं था, फिर वर्षा के कारण पुस्तकों की सुरक्षा भी एक समस्या बन गई। साध्वी मघूजी ने अपने अनुभव को काम में लिया। एक बड़ा सा मटका गांव के घरों से लाई और उसमें पुस्तकों को रखकर उनकी सुरक्षा की।

उन्हीं दिनों गणेशमलजी को उनके भाई की मृत्यु के समाचार मिले उन्होंने अपने भतीजे को उनके संस्कार करने के लिए भेजा, वह भी वहां प्लेग की चपेट में आ गया। अब संचेतीजी के सामने संकट आ गया। वे गांव जाए तो साध्वियों की संभाल कौन करें? उन्होंने पारिवारिक दायित्व से अधिक संघीय सेवा को महत्त्व दिया। एक आदमी के हाथ रुपए भेजें और गाँववासियों को कहला दिया कि आप उसका अन्तिम संस्कार कर देना। मैं साध्वियों को अकेले छोड़कर नहीं आ सकता।

राणानाडी गांव का कष्टप्रद दो महीने का प्रवास सम्पन्न किया। तब तक जोजावर भी प्लेग से मुक्त हो गया। तब साध्वियां वहां से विहार कर पुन: जोजावर आ गई। ज्योंही चातुर्मास सम्पन्न हुआ, साध्वी मघूजी कंटालिया पहुंची। उस समय मारवाड़ के सभी गांव प्राय:-प्राय: खाली हो चुके थे क्योंकि सभी को प्लेग का भय था। दूसरी बात साध्वियां एक गांव से दूसरे गांव जाना भी चाहें तो गांववासी अपने-अपने गांव में इसलिए नहीं आने देते कि इनके साथ बीमारी आ जाएगी।

उस समय संचार साधन बहुत कम थे, अत: किसी के साथ ही समाचार या संवाद एक दूसरे स्थान पर पहुंचाया जा सकता था। अन्यथा सब एक दूसरे के सुख संवाद से वंचित ही रहते थे। साध्वी मघूजी के मन में कई बार विचार आया कि मारवाड़ से मेवाड़

चले जाएं पर जाए कैसे? इस संदर्भ में आचार्यवर का कोई आदेश हमारे पास नहीं है। कोई श्रावक आकर अपने गांव आने की प्रार्थना करें तो भी जा सकते है। अन्यथा हम तो विहार कर चले जाए और गांव वाले मना कर दें तो .....। इसी उधेड़बुन में प्रतिकूलता भरे दिन बीत रहे थे। एक अचानक टॉडगढ निवासी विजयराजजी पित्तलिया ने साध्वीजी के दर्शन किए। साध्वियों ने उनसे पूछा-क्या आप हमें लेने आए हैं?

श्रावक विजयराजजी साध्वियों की स्थिति से परिचित थे। उन्होंने विनम्रता से निवेदन किया- मैं तो व्यावसायिक दृष्टि से इधर आया हुआ था इसलिए दर्शन करने आ गया। मैं चाहता हूँ कि आप हमारे टॉडगढ़ पधारे पर वर्तमान में प्लेग के आतंक ने सबको भयभीत बना रखा है। पहले मैं साध्वी चान्दांजी को गांव वालों को पूछे बिना ले गया था। तब उन्होंने मुझे बहुत गालियाँ दी। वे कहने लगे- यह (विजयराज) हमारे गांव में मान्दगी (बीमारी) फैलाएगा। अत: मैं पहले जाकर गांव वालों को जानकारी दूंगा। यदि वे चाहेंगे तो मैं तत्काल आकर निवेदन कर आपको ले जाऊंगा। गांव वालों को चारित्रात्माओं का सान्निध्य मिलेगा। यह उनका सौभाग्य होगा।

विजयराजजी टॉडगढ़ जाकर पुन: बहुत जल्दी कंटालिया पहुंच गए। साध्वियां पहले से इन्तजार कर ही रही थी। विजयराजजी ने दर्शन कर निवेदन किया -महाराज! आप हमारे गांव पधारे, यह टॉडगढवासियों के लिए प्रसन्नता की बात है पर जहां तक गुरुदेव के आदेश निर्देश का प्रश्न है, हमारे या आपके पास नहीं है। साध्वी मधूजी ने विवेकशीलता का परिचय देते हुए कहा- वर्तमान में जो परिस्थिति है, हम आचार्यवर को निवेदन कर देंगी।

कंटालिया से विहार कर साध्वियां टॉडगढ पहुंची। उन्होंने कुछ दिन वहां प्रवास किया। उसके पश्चात् आचार्यवर के दर्शनों का आदेश प्राप्त हो गया। उन्होंने वहां से विहारकर थली में अष्टमाचार्य कालूगणी के दर्शन किए और चातुर्मास में बीती सारी घटना आचार्यवर को निवेदित की।

पूज्य कालूगणी ने साध्वीजी के धैर्य और साहस को साधुवाद देते हुए कहा- जोज़ावर में प्लेग का भंयकर उपद्रव हुआ, उस समय हमने तो सोचा साध्वी मधूजी शायद ही बचेगी। पर अपनी सूझबूझ एवं साहस से सकुशल यहां पहुंच गईं। पुस्तकों को भी सुरक्षित रख लिया।'' साध्वीजी के साथ-साथ निष्ठाशील श्रावक गणेशमलजी संचेती की हिम्मत और संघनिष्ठा की भी आचार्यवर ने सराहना की।

सं. 1993 में साध्वी मघूजी का चातुर्मास मेवाड़ के पितास गांव में था। पूज्य कालूगणी की अस्वस्थता के समय भाद्रव महीने में वे पितास से विहार कर गंगापुर पहुंची। वहां गुरु सेवा का दुर्लभ अवसर उन्हें प्राप्त हुआ।

यद्यपि वे बहुत लम्बी तपस्याएं नहीं करती थी पर उनकी गणना तपस्वी साध्वियों में होती थी। उन्होंने अपने जीवन में दो हजार चार सौ उनसठ दिन तपस्या में बिताए।

उपवास	–	2208	चोले	–	8
बेले	–	76	पांच	–	5
तेले	–	11	नौ	–	1

साठ साल तक संयम साधनाकर सं. 2012 माघ शुक्ला द्वितीया को चाड़वास में उन्होंने समाधिमरण प्राप्त किया।

♦

5. साध्वी वाल्हांजी (सिरसा) (598)

साध्वी वाल्हांजी की जन्मभूमि तारानगर थी। उनके पिता का नाम दुरजनदासजी डागा था। उनका ससुराल सिरसा के नवलखा परिवार में था। उनका जन्म सं. 1938 भाद्रव कृष्णा अष्टमी को हुआ। उनके पति का बहुत छोटी अवस्था में स्वर्गवास हो गया। वे उस समय नाबालिग थी। साधु साध्वियों की प्रेरणा से वैराग्य भाव बढा और दीक्षा लेने की भावना तीव्र हो गई। उन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में साध्वी भूरांजी (378) लाडनूं के पास सं. 1953 में वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन संयम–रत्न स्वीकार किया। सिरसा के नवलखा परिवार की अष्टमाचार्यश्री के युग में चार दीक्षाएं–मुनि केवलचंदजी, धनराजजी, चन्दनमलजी और साध्वी दीपांजी की हुई। साध्वी वाल्हांजी उसी परिवार की थी।

साध्वी वाल्हांजी ने तपस्या बहुत की। उन्होंने एक बार कर्मचूर तप, एक बार धर्मचक्र तप, एक बार वर्षीतप तथा लघुसिंह निष्कीड़िततप की पहली परिपाटी की। उनकी तपस्या का आंकडा रोमांच पैदा करने वाला है। उन्होंने अपने जीवन में 4306 दिन का तप किया। उपवास आदि तप का क्रम इस प्रकार रहा –

उपवास	–	1744	दस	–	2
बेला	–	622	ग्यारह	–	2
तेला	–	88	बारह	–	2
चोला	–	60	तेरह	–	2
पंचोला	–	50	चवदह	–	2
छह	–	15	पन्द्रह	–	3
सात	–	6	सोलह	–	2
अठाई	–	18	सतरह	–	2
नौ	–	3	मासखमण	–	1

साध्वी वाल्हांजी अवस्थागत अक्षमता के कारण सं. 1991 से लाडनूं सेवाकेन्द्र में स्थिरवासिनी रही। सं. 1997 में लघुसिंहनिष्कीडित तप की पहली परिपाटी उन्होंने लाडनूं में की। उनके मन में एक इच्छा थी कि साध्वी दीपांजी सिरसावाली लाडनूं सेवाकेन्द्र में आएं और मैं संथारा संलेखना कर अपना आत्मकल्याण करूं। आचार्यश्री तुलसी ने सं. 2009 के मर्यादामहोत्सव पर साध्वी दीपांजी को लाडनूं सेवाकेन्द्र में जाने का आदेश दिया। सं. 2009 के वैशाख महीने में साध्वी वाल्हांजी ने अपनी मनोकामना को आकार देने के लिए संलेखना तप चालू किया। 30 दिन तक परम समाधि के साथ

उनकी तपः साधना चलती रहे। तीसवें दिन बड़े साहस और उल्लास के साथ आजीवन अनशन कर धन्यता का अनुभव किया। उन्हें चार दिन का अनशन आया। सं. 2009 द्वितीय वैशाख शुक्ला एकम रविवार की रात्रि में उन्होंने समाधि मरण को प्राप्त किया।

6. साध्वी धन्नांजी (जसोल) (600)

साध्वी धन्नांजी तेरापंथ धर्मसंघ की एक ऐसी साध्वी थी जिन्होंने तेरापंथ में प्रवेश किया उस समय माणकगणी का स्वर्गवास हो चुका था और डालगणी का निर्वाचन नहीं हुआ था। उस अन्तरिम कालावधि में साध्वी धन्नांजी की दीक्षा साध्वी तीजांजी (छोटी खाटू)के द्वारा बालोतरा में हुई। उनकी दीक्षा तिथि 1954 मिगसर शुक्ला एकम थी।

साध्वी धन्नांजी जसोल (मारवाड़) की थी। उनका पीहर और ससुराल दोनों जसोल में थे। पीहर मणोत परिवार में था और ससुराल कोठारी (चोपड़ा) परिवार में। उनके पिता का नाम मोटरामजी मणोत था तथा पति का नाम गुलाबचन्दजी कोठारी था। उनके पति की अल्पावस्था में मृत्यु हो गई। उस समय उनकी कितनी अवस्था थी। वैधव्य के बाद वे कितने दिन बाद दीक्षित हुई, यह सब अज्ञात है।

साध्वी धन्नाजी की आरंभ से तपस्या में रुचि थी। दीक्षित होने के पश्चात उन्होंने अपनी पूरी शक्ति तप: साधना में नियोजित कर दी। उन्होंने उपवास से लेकर बत्तीस की तपस्या तक लड़ी की, मात्र चार थोकड़े उन्होंने नहीं किए- नौ, अठारह, सत्ताईस और उनतीस। एक बार 55 और 61 दिन की तपस्या की। इन सबके अतिरिक्त उन्होंने धर्मचक्र और कर्मचूर तप भी किया। सं. 1980 में लघुसिहनिष्क्रीडित तप की चौथी परिपाटी सम्पूर्ण की।

तेरापंथ धर्मसंघ में अनेक साधु साधिवयों ने लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की चौथी परिपाटी प्रारंभ की, पर कोई भी पूर्ण नहीं कर सके, बीच में ही दिवंगत हो गए। साध्वियों में अब तक चार साध्वियों ने चौथी परिपाटी तप प्रारंभ किया। उनमें तीन साध्वियों ने पूर्ण कर ली, एक दीर्घ तपस्विनी साध्वी पन्नाजी पूर्ण नहीं कर सकी, वे बीच में ही दिवंगत हो गई। वे चारों साध्वियों के नाम इस प्रकार है-

1. साध्वी मुखांजी ने कालूगणी के युग में सं. 1977 राजलदेसर में चौथी परिपाटी पूर्ण की।
2. साध्वी धन्नांजी जसोल ने भी कालूगणी के युग में चौथी परिपाटी में सफलता प्राप्त की।
3. दीर्घतपस्विनी साध्वी अणंचाजी (श्रीडूंगरगढ) ने आचार्य तुलसी की शासनकाल में सं. 1996 में वीरभूमि बीदासर में चौथी परिपाटी का तप तपा।

4. दीर्घतपस्विनी साध्वी पन्नाजी ने लाडनूं में आचार्य महाप्रज्ञ के पावन सान्निध्य में चौथी परिपाटी प्रारंभ की। वे पूर्ण नहीं कर सकी।

उन चारों साध्वियों में दीक्षा-पर्याय में साध्वी धन्नांजी सबसे बड़ी साध्वी थी, लेकिन लघुसिंहनिष्क्रीडित तप की चौथी परिपाटी करने का पहला अवसर साध्वी मुखांजी सुजानगढ़ को मिला। साध्वी मुखांजी ने सं. 1977 में की और साध्वी धन्नांजी ने 1980 में की। आचार्य तुलसी ने माणक महिमा ग्रन्थ में साध्वी धन्नांजी के सन्दर्भ में उनकी तपस्याओं का उल्लेख करते हुए लिखा है -

धन्ना सती जसोलवासिनी अन्तरकाले दीक्षा रे,
भारी तपी तपस्या, धारी सदगुरु-शिक्षा रे,
मास खमण दो, पिचपन, इकसठ धर्मचक्रकर्मचूरा रे,
चौथी परिपाटी की पूरी, सती सनूरा रे। माणक महिमा पृ. 71

सं. 1993 चैत्र कृष्णा चतुर्थी को सुधरी में साध्वी धन्नांजी ने समाधि मरण प्राप्त किया।

लघुसिंह निष्क्रीडित तप की विधि

जैन आगमों में लघुसिंहनिष्क्रीड़ित नाम का एक विशिष्ट तप वर्णित है। इस तप की आराधना महासती महाकाली ने की थी। इस तप की विधि निम्न प्रकार है –

यह तप सिंह की चाल से उपमित है। सिंह दो कदम आगे बढ़ता है, फिर दो कदम पीछे रखता है फिर दो कदम आगे बढता है। इसी प्रकार इस तप में भी पूर्व–पूर्व आचरित तप की पुनः आराधना करता हुआ साधक तप में आगे बढता है। इस तप में कम से कम उपवास और अधिक से अधिक नव की तपस्या की जाती है। इसका क्रम यह है –

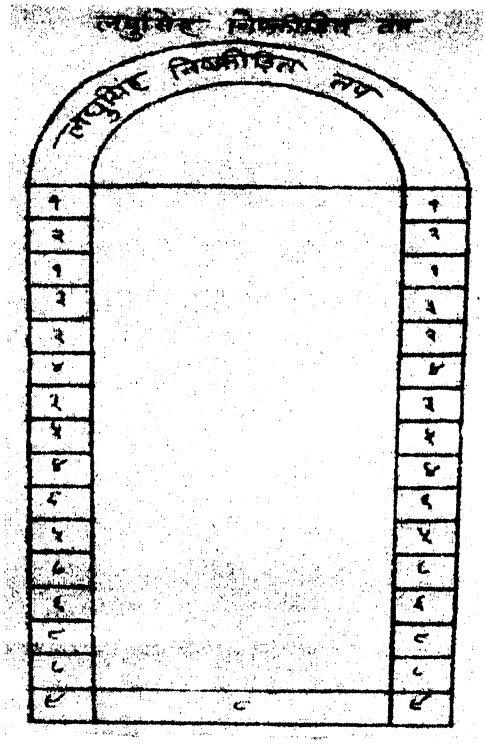

इस तप की एक परिपाटी में छह मास सात दिन लगते हैं। जिसमें 154 दिन का तप होता है और तेतीस दिन पारणे के लगते हैं। इस तप की चार परिपाटी (आवृति) होती है। चारों परिपाटी के तप का क्रम एक ही रहता है, केवल पारणे में अन्तर आता है।

पहली परिपाटी के पारणे में साधक सब विगय ले सकता है।

दूसरी परिपाटी के पारणे में साधक सब विगय का वर्जन करता है।

तीसरी परिपाटी के पारणे में साधक लेप लगने वाली वस्तु का वर्जन करता है।

चौथी परिपाटी के पारणे में साधक आयंबिल करता है।

इस प्रकार चार आवृतियों में यह तप पूर्ण होता है, जिसमें दो वर्ष अट्ठाबीस दिन लगते हैं।

सप्तमाचार्य डालगणी के युग की साध्वियाँ

1,2.	साध्वी	दाखांजी पुर (601, 602)
3.	"	लाडांजी लाडनूं (610)
4.	"	हीरांजी नोहर (620)
5.	"	रतननांजी सुजानगढ (624)
6.	"	लाधूजी सरदारशहर (632)
7.	"	मौलांजी चाड़वास (643)
8.	"	बख्तावरजी मोखणुंदा (646)
9.	"	दाखांजी खरणोटा (653)
10.	"	जडावांजी डीडवाना (655)
11	"	दरियावांजी किसनगढ (661)
12.	"	भूरांजी टॉडगढ (670)
13.	"	पारवतांजी छापर (671)
14.	"	सोनांजी सरदारशहर (674)
15.	"	सुन्दरजी तारानगर (683)
16.	"	नानूजी जसोल (689)
17.	"	चम्पाजी बालोतरा (692)
18.	"	खूमांजी लाडनूं (700)
19.	"	सुखदेवांजी लाडनूं (702)
20.	"	भूरांजी पुर (704)
21.	"	हुलासांजी सरदारशहर (708)
22.	"	प्रतापांजी सरदारशहर (712)
23.	"	मैनांजी झाबुआ (720)
24.	"	चांदाजी सरदारशहर (722)
25.	"	संतोकांजी सरदारशहर (725)

1, 2 साध्वी दाखांजी (पुर) (601) (602)

साध्वी दाखांजी द्वय सास–बहु के रूप में तथा दोनों मां और पुत्र के रूप में दीक्षित होने वाला अद्‌भुत जोड़ा था। सप्तमाचार्य डालगणी के युग की यह सर्वप्रथम दीक्षाएं थीं। जिसमें दो माताएं अपने पुत्रों के साथ संयम-स्वीकार कर रही थी। दूसरे शब्दों में मां, पुत्र, पुत्रवधु और पौत्र – एक साथ तीन पीढी के सदस्य दीक्षित होकर नए इतिहास का सर्जन कर रहे थे। तीसरी विशेषता सास और बहु – दोनों का एक ही नाम था। साध्वी दाखांजी के पूरे परिवार का सम्बन्ध मेवाड़ के पुर गांव से था। गोत्र से बंवलिया थे। सं. 1954 चैत्र कृष्णा तृतीया को मां दाखांजी, पुत्र कनीरामजी, उनकी पत्नी, दाखांजी की पुत्रवधु तथा शक्तमलजी की मां दाखांजी एवं पौत्र शक्तमलजी ने बीदासर में सप्तमाचार्यश्री डालगणी के कर–कमलों से संयम–श्री स्वीकार की। इनकी दीक्षा का डालिम चरित्र में वर्णन करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है –

मुनि कनीराम अरु शक्तमल्ल की माता,
दोन्यूं दाखां पाई संयम में साता।
बीदासर साल चौपनै निज कर तारी,
सप्तमगुरु गण में खुली खान दीक्षा री।
"अहासुहं देवाणुप्पिया' पाठ दृग डारी,
डालिम वरतारै सुणो ख्यात सतियां री।। डालिम चरित्र पृ. 139

साध्वी दाखांजी (सास) सं. 1972 में पौषकृष्णा एकम् ईडवा में दिवंगत हो गई और दूसरी साध्वी दाखांजी (बहू) ने अच्छी तपस्विनी साध्वी के रूप में गण में गरिमा प्राप्त की। उन्होंने चार बार तीर्थंकरों की लड़ी तप किया। जिसमें एक लड़ी में 300 उपवास किए जाते हैं। जैसे प्रथम तीर्थंकर का एक, दूसरे का दो यावत् चौबीसवें तीर्थंकर का चौबीस उपवास करते हैं। उन्होंने अपने जीवन में एक हजार आयम्बिल तथा सात महीने एकान्तर तप किया। उनकी तपस्या की तालिका इस प्रकार है –

उपवास	–	2700	छह	–	2
बेला	–	250	सात	–	2
तेला	–	25	आठ	–	2
चोला	–	35	दस	–	1
पंचोला	–	35			

जीवन के अन्तिम समय में जब वे साध्वी पारवतांजी छापर के सिंघाड़े में थी

भयंकर रूप से अस्वस्थ हो गई। उनके पूरे शरीर में सूजन आ गया, ज्वर और खांसी ने हमला–सा बोल दिया। रोग असाध्य था। थोड़े दिनों बाद शरीर से पानी फूटकर निकलने लगा और पूरा तन व्रणमय बन गया। कहीं कहीं एक डेढ ईंच गहरे घाव हो गए। इस भयंकर वेदना को साध्वी दाखांजी ने समता से सहन की और साध्वी पारवतांजी ने अग्लान भाव से सेवा की – दोनों आदर्श थे। सं. 2002 से 2004 तक इसी कारण से सुजानगढ रहीं और 2004 की पौष शुक्ला नवमी को वे दिवंगत हो गई।

3. साध्वीश्री लाडांजी (लाडनूं) (610)

साध्वी लाडांजी का जन्म लाडनूं (राजस्थान) में बोरड़ परिवार में सं. 1944 कार्तिक कृष्णा ग्यारस बृहस्पतिवार को हुआ। उनके पिता का नाम मुलतानमलजी तथा माता का नाम छोगांदेवी था। एक भाई डालचन्दजी के बाद उनका जन्म होने से वह सबकी लाडली थी अत: उनका नाम ही लाडां रख दिया गया। लाडां का पालन-पोषण बड़े लाड़ प्यार से हुआ। गौर वर्ण, सुन्दर नाक नक्स सबको आकर्षित करने वाले थे। वे जब मात्र पांच साल की थी, उनकी सगाई लाडनूं निवासी हीरालालजी घोड़ावत से कर दी गई। छह साल बाद उनके विवाह की तैयारियां होने लगी, गीत गाए जाने लगे। उनकी तिथि तय की गई बैशाख शुक्ला पांचम।

सौभाग्य से उन्हीं दिनों सप्तमाचार्य डालगणी का लाडनूं में पदार्पण हुआ। लाडां बाई के पिता मुलतानमलजी का देहान्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था, इसलिए उस समय की परम्परा के अनुसार उनकी मां छोगांदेवी दर्शन करने नहीं आती थी। मुनिश्री कालूजी (बड़ा) प्राय: उनको दर्शन देने जाया करते थे। एक दिन बालिका लाडां अपनी मौसी अणची बाई के साथ आचार्यश्री के दर्शन करने गई। उनकी मौसी के मन में दीक्षा की भावना थी। उन्होंने बालिका लाडां से कहा-तू आचार्यवर के निकट जाकर प्रार्थना कर कि आचार्यवर! मेरी मौसी को दीक्षा देने की कृपा कराएं।

बालिका ने बड़ी शालीनता और निर्भीकता के साथ अपनी बात आचार्यश्री डालिम के चरणों में रख दी। डालगणी ने मुसकराते हुए कहा- ''तुम्हारी मौसी को तो नहीं तू यदि दीक्षा लेना चाहे तो तुझे दे सकता हूँ।'' लाडांबाई ने सारी बात वापिस आकर अपनी मौसी को कह दी। मौसी ने समझाते हुए कहा- शादी विवाह में क्या धरा है। जब स्वयं गुरु तुम्हें कल्याण के लिए प्रेरणा दे रहे हैं, यह कितना सौभाग्य है, जा वापिस जाकर गुरुदेव को निवेदन कर। मौसी की प्रेरणा का बालिका पर ऐसा वैराग्य का मजीठी रंग चढ़ा कि लाडां बनड़ी से वैरागिन बन गई। उसने जाकर निवेदन किया- मैं भी दीक्षा लूंगी, आप कृपा कराएं।' सुनते ही डालगणी के मुखारविन्द से सहसा शब्द निकले- यदि तू दीक्षा लेगी तो मीरा बन जाएगी। मुनि कालूजी ने प्रतिबोध दिया, प्रेरणा दी तथा साधु साध्वियों के सम्पर्क से वैराग्य का दृढ़ीकरण हो गया। उन्होंने प्राथमिक तत्त्वज्ञान सीखा और दीक्षा के लिए कटिबद्ध हो गई।

बालिका लाडां ने जब अपनी वैराग्य भावना परिवार जनों के सामने रखी तो वे

बिल्कुल इन्कार हो गए। उन्होंने शादी के विविध प्रलोभनों में फसाने का प्रयत्न किया पर वे उनमें आसक्त नहीं हुई। दूसरा प्रयत्न उन्हें भयभीत करने का किया। एक दिन परिवार वालों ने धमकाते हुए पैर बांध दिए जिससे वे साधु साध्वियों के पास न जा सके। एक दिन उनको डराने भयभीत करने के लिए एक सिपाही को घर लेकर आए। सिपाही ने घर में प्रवेश करते ही सामने सुन्दर सुकन्या के पैर बचे हुए देखे। उसने पहला प्रश्न किया- इस बच्ची के पैर क्यों बान्ध रखे हैं? सिपाही ने पुनः दूसरा प्रश्न बालिका से किया कि- तुम साध्वी क्यों बनना चाहती हो?

बालिका तपाक से बोली- मैं जनम-मरण के दु:खों से छुटकारा पाने के लिए साध्वी बनना चाहती हूँ। सिपाई ने बच्ची की कसौटी करते हुए पूछा- तुम्हारा तो विवाह होने वाला है फिर तुम्हें किस बात का डर है? बालिका लाड ने निस्संकोच भाव से कहा- शादी के बाद विधवा न होने की गारन्टी यदि आप ले लें तो मैं दीक्षा नहीं लूंगी। इस प्रकार सिपाही ने समझाने का बहुविध प्रयास किया पर बच्ची पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपने संकल्प पर चट्टान की भांति अडिग रही। आखिर घर वाले भी परीक्षा करते और समझाते-समझाते थक गए तब उन्होंने दीक्षा की स्वीकृति दे दी।

विवाह की तैयारियां दीक्षा महोत्सव के माहौल में बदल गई। शादी के गीतों का स्थान वैराग्य बढ़ाने वाले गीतों ने ले लिया। तत्कालीन परम्परा के अनुसार दीक्षा का उत्सव भी धूमधाम से मनाने लगे। जिस दिन बनौरी निकाली गई, बोरड़ परिवार में उत्साह का होना स्वाभाविक था पर घोड़ावत परिवार भी उस प्रसन्नता से सम्मिलित था। कहते हैं कि घोड़ावत परिवार वाले एक थाली भर गहने पहनने के लिए लाए और बालिका को पहनाए। मात्र सगाई से जुड़े सम्बन्ध को स्वयं हीरालालजी ने तथा उनके चारों पुत्र- सोहनलालजी, झाऊमलजी, मूलचंदजी कन्हैयालालजी ने जीवनभर मातृत्व सम्बन्ध बनाए रखें। घोड़ावत परिवार के सदस्यों ने पुत्र, पौत्रों का दायित्व निभाया और वे उन्हें 'माउसा महाराज' के नाम से ही सम्बोधित करते थे।

सं. 1955 वैशाख कृष्णा पांचम को शुभ समय में सप्तमाचार्य डालगणी के कर-कमलों से बालिका लाडां साध्वी बन गई। जन्मभूमि को ही दीक्षाभूमि बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके साथ राजगढ़ के भाई तोलारामजी की दीक्षा भी हुई। ऐसा डालगणी की ख्यात में वर्णन उपलब्ध है। डालिमचरित्र में उनकी दीक्षा के सम्बन्ध में आचार्य तुलसी ने लिखा है -

डालिम बोरड़ री भगिनी लाडां बाई,
ली शहर लाडनूं दीक्षा, छोड़ सगाई॥ डालिम चरित्र पृ. १४०

साध्वी लाडांजी की वैराग्य भावना और दीक्षा दोनों के मध्य अन्तराल बहुत कम रहा। दूसरी बात प्राकृत भाषा सीखने में भी उनको कठिनाई हुई क्योंकि वह युग शिक्षा का नहीं था, इसलिए साधु प्रतिक्रमण वे विलम्ब से सीख पाई। उनकी छेदोपस्थापनीय (बड़ी दीक्षा) चार महीनों के पश्चात हुई। उनको आठ साल तक गुरु-सन्निधि में रहने का सौभाग्य मिला। यह समय उनके व्यक्तित्व निर्माण के लिए स्वर्णिम-समय था। एक ओर जीवन मूल्यों-विनम्रता, शालीनता, अनुशासन निष्ठा और आचारनिष्ठा का विकास किया तो दूसरी ओर जागरूकता के साथ विद्या-अध्ययन में अपने आपको नियोजित किया। परिणाम स्वरूप उन्होंने सैद्धान्तिक तात्त्विक तथा इतिहास विषयक गंभीर धारणाएं की। व्याख्यान कला, लिपिकला में महारत हासिल की। तत्त्वचर्चा तथा बातचीत में उन्होंने अच्छा कौशल प्राप्त किया।

अनवरत पुरुषार्थ करते-करते वे प्रखर बुद्धि सम्पन्न बन गईं। उन्होंने हजारों पद्य कंठस्थ किए। उनके द्वारा कंठस्थ किए गए ग्रन्थों की सूची लम्बी चौड़ी है। वह इस प्रकार है-

आगम- आवश्यक, दशवैकालिक (चूलिका सहित) उत्तराध्ययन, नन्दी, वृहत्कल्प सूत्रकृतांग का छठा अध्ययन।

संस्कृत - भक्तामर, कल्याणमंदिर, देवगुरुस्त्रोत, सिन्दूरप्रकर तथा शांतसुधारस के कुछ गीत।

थोकड़े-

1. पच्चीस बोल
2. पाना की चर्चा
3. तेराद्वार
4. पच्चीस बोल की चर्चा
5. जाणपणै के पच्चीस बोल
6. हित शिक्षा के पच्चीस बोल

7. लघुदण्डक
8. बावन बोल
9. कर्मप्रकृति (यंत्र सहित)
10. इक्कीस द्वार
11. इगतीस द्वार
12. गतागत
13. कायस्थिति
14. संजया
15. नियंठा
16. खंडाजोयण
17. अल्पाबहुत
18. हरकचंदजी स्वामी की चर्चा (बड़ी)
19. गमा (पाँच सौ गाथा की)
20. गांगेयजी का भांगा
21. पदवी का थोकड़ा
22. सेरया
23. शासता-अशासता
24. सर्वबन्ध, देशबन्ध
25. गुणस्थानद्वार
26. विरहद्वार
27. अवधिद्वार
28. सिजंत द्वार
29. योनिपद
30. गर्भेज
31. क्रोध का बावन सौ भांगा
32. चरम पद का भांगा

33. सन्निवाय का भांगा
34. बंधीशतक
35. पच्चीस बोल की दो लड़िया
36. गुणस्थान की दो लड़िया
37. ज्योतिषचक्र
38. अंगडाई
39. पांच ज्ञान का थोकड़ा
40. श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा
41. जैन तत्त्व प्रवेश (प्रथम भाग)
42. कालू तत्व शतक
43. पन्नवणा की ढाल
44. झीणी चर्चा की 15 ढालें

चौबीस, आराधना, कर्मचन्दजी स्वामी का ध्यान, साधु बन्दना (बडी), अन्य साधु वन्दना, नौ आचार्यों की गुणात्मक गीतिकाएं आदि।

व्याख्यान :

1. शालिभद्र
2. मुनिपत
3. चंदचरित्र
4. कमलावती
5. नेमचरित्र
6. हरिवंश
7. रामचरित्र
8. अंजना
9. यशोभद्र
10. नन्दीषेण
11. सागर राजा

12. मैतारज
13. छहदमड़ी
14. अमरकुमार
15. कुण्डरीक पुण्डरीक
16. कीचक
17. असरावती

स्फुटकर- संस्कृत श्लोक लगभग	200
राजस्थानी दोहा, पद, छन्द लगभग	500
सवैया लगभग	50
औपदेशिक गीतिकाए लगभग	100

अग्रगामी :-

सं. 1963 में आचार्यश्री डालगणी ने लाडसती की योग्यता को देखकर उनका सिंघाड़ा कर दिया। साध्वी लाडांजी का सिंघाड़ा प्रभावशाली था। वे जहाँ भी जाती अपने व्यक्तित्व की अच्छी छाप छोड़ती। उनका व्याख्यान शैली प्रभावक थी और उनमें जन सम्पर्क की कला अद्‌भुत थी। उनमें धैर्य, साहस और निर्भीकता के साथ विवेक तथा समझदारी का योग था। मृदु व्यवहार और मधुर वाणी से वे सबको आकृष्ट कर लेती। संस्कार भरने में वे दक्ष थी। वे जिस क्षेत्र में विहरण करती वहां के श्रावक श्राविकाओं में धार्मिक संस्कारों के साथ-साथ गहरे संघीय संस्कार भरकर उन्हें श्रद्धानिष्ठ बनाती। अपने पास रहने वाली साध्वियों के व्यक्तित्व निर्माण में भी वे अच्छा श्रम करतीं। साध्वियों को परोटने में भी उन्होंने दक्षता प्राप्त की।

साध्वी लाडांजी ने विहार चर्या के साथ अपनी दिनचर्या को सदा व्यवस्थित रखा। जितना वे अपनी साधना के हर पहलू को महत्त्व देती, उतना ही सम्पर्क में आने वाले हर श्रावक श्राविकाओं के विकास को महत्त्व देती। यही कारण था कि साध्वी लाडांजी को भाई बहिनों के नाम बहुत याद थे। सबको आध्यात्मिक प्रेरणा देती और कण्ठस्थ ज्ञान कराने में सदा तत्पर रहती। वे स्वाध्याय ध्यान में श्रावक समाज को नियोजित करती रहती।

ऐतिहासिक घटनाओं की उन्हें काफी जानकारी की। जब-जब वे अपनी धुव्र

स्मृति के आधार पर घटना वृत्त सुनाती श्रोता भाव विभोर बन जाते। शब्द संयोजना और वाणी की ओजस्विता उनकी निराली थी। मंगल पाठ सुनाने की विधि भी उनकी अपनी विशेष थी। जब भी ग्रामान्तर या देशान्तर जाने वाले भाई बहिन मंगल पाठ सुनने के लिए आते वे उदात्तघोष के साथ आद्योपान्त मंगल पाठ का उच्चारण करती। उसके बाद कुछ स्वरचित मांगलिक पदों का समुच्चारण करती जिससे श्रोताओं को अतिरिक्त आत्मतोष का अनुभव होता। वे जिन पद्यों को मंगल पाठ के साथ सुनाती, संघीय आस्था के साथ संस्कार भरे हुए होते थे।

अभूतपूर्व कीर्तिमान-

साध्वी लाडांजी ने अपने जीवन काल में चार अभूतपूर्व कीर्तिमान बनाए। जो चतुर्विध धर्मसंघ को आश्चर्यान्वित करने वाले थे। उन्होंने -

1. 82 वर्ष संयम पर्याय का पालन किया
2. 73 वर्ष अग्रगण्या-पद पर रहीं।
3. 33 वर्ष एक स्थान पर स्थिर वासी रही।
4. 21 वर्ष तक तेरापंथ साध्वी समाज में प्रथम साध्वी के रूप में रही।

इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि 82 वर्ष के साधना-काल का आधा समय 41 वर्ष श्रीडूंगरगढ़ की धरती पर व्यतीत किए।

अपनी संसारपक्षीया मां साध्वी छोगांजी की वृद्धावस्था के समय आठ साल श्रीडूंगरगढ़ प्रवास किया।

स्वयं की वृद्धावस्था के कारण तैंतीस साल श्रीडूंगरगढ़ में स्थिरवास किया।

- एक सुदीर्घ अवधि तक श्रीडूंगरगढ़ में प्रवास कर वहां के लोगों की अनन्य श्रद्धा उन्होंने प्राप्त की। वहां के लोगों का जो उपकार किया वह भी उल्लेखनीय है। उनकी प्रेरणा से एवं सार संभाल से श्रीडूंगरगढ़ एक सजग सक्रिय और विकासशील क्षेत्र बना, जिसका प्रतिबिम्ब आज सबके सामने है। श्रावक श्राविकाओं के मन में उनकी साधना का अच्छा प्रभाव था, वे उन्हें 'जूनी जोगण' 'मीरां' आदि श्रद्धासूचक विशेषण से सम्बोधित करते।

विनय निष्ठा सम्बोधन

आचार्य तुलसी के आचार्य पद की रजत जयंती को धवल समारोह के रूप में मनाया गया। उस ऐतिहासिक अवसर पर वि. सं. 2018 फाल्गुन कृष्णा दशमी को गंगाशहर में आचार्य तुलसी ने उनको विनयनिष्ठा के सम्बोधन से सम्बोधित किया –

विनयनिष्ठा सुशिष्या लाडांजी (बड़ा)

तुम्हारी सहज विनम्रता से मैं प्रसन्न हूँ। इस धवल समारोह के अवसर पर मैं तुम्हारा 'विनय निष्ठा' के रूप में सम्मान करता हूँ।

आचार्य तुलसी

साध्वी लाडांजी की विनयनिष्ठा को कई बार कसौटी के क्षणों से गुजरना पड़ा। प्रारंभ से ही विनय के संस्कार उनमें गहरे थे। जब वे बाल्यावस्था में थी, उन्हें गुरुसेवा का अवसर प्राप्त था। उस समय साधु साध्वियों के भोजन विभाग की व्यवस्था सामूहिक एवं सम्मिलित रूप में होती थी। साध्वी लाडांजी एक बार भोजन विभाग का काम कर रही थी। कुछ संत अपने विभाग का आहार लेकर चले गए। थोड़ी देर पश्चात साध्वीजी को ध्यान आया कि साग (व्यंजन) का विभाग करने में भूल रह गई। वे संतों के पास गई और पूर्व विभाजित साग के पात्र वापिस ले लाई। पुनः विभाग करने से साग एकमेक हो गए। कुछ सन्तों ने इस बात की डालगणी के पास शिकायत कर दी। डालगणी ने उक्त भूल के लिए एक सौ परठने का दण्ड दिया। बाल साध्वी ने उसे सहर्ष स्वीकार करते हुए बड़ी विनम्रता से वन्दना करने लगी। 95 बार उठ बैठ कर वन्दना हो चुकी थी तब वहां उपस्थित साधु साध्वियों ने कहा- सौ में पाँच ही बाकी है, अब पांच बार की वन्दना क्यों बाकी रहती है। उन्होंने जिस विनम्रता के साथ गलती स्वीकार की और भक्ति भाव से गुणग्राम करते -करते वन्दना की, उससे डालगणी बहुत बहुत प्रसन्न हुए और दण्ड स्वरूप दिए गए सौ परठनों को माफ कर दिए।

दूसरी घटना का सम्बन्ध आचार्य तुलसी के शासन काल से है। सं. 1999 का साध्वी लाडांजी का चातुर्मास पड़िहारा घोषित था। चातुर्मास पूर्व वे सुजानगढ़ में प्रवास कर रही थी। उस समय उनकी सहगामी साध्वी इन्द्रुजी (698) के शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे पड़िहारा नहीं पहुंच सकी। उन्हें वह चातुर्मास सुजानगढ़ ही करना पड़ा। उस वर्ष सुजानगढ़ में मुनिश्री नथमलजी बागौर का पहले से चातुर्मास निर्धारित था। इस प्रकार

सुजानगढ़ वासियों को दो सिंघाड़ों की सेवा का चौमासा में लाभ मिला।

किसी एक भाई ने आचार्यवर के दर्शन कर शिकायत कर दी कि साध्वी लाडांजी पड़िहारा जा तो सकती थी पर उनका मन नहीं था। चातुर्मास की सम्पन्नता के पश्चात जब उन्होंने सरदारशहर में आचार्यवर के दर्शन किए तब आचार्यवर ने साधु साध्वियों के बीच उन्हें कड़ा उपालम्भ दिया। साध्वीजी तहत तहत तहत एक ही शब्द का बार-बार उच्चारण करती रही। साथ-साथ वे अत्यन्त विनम्र शब्दों में यह भी निवेदन करती रही- गुरुदेव! मेरी गलती के कारण आपको भारी मेहनत करनी पड़ी, आपको बड़ी तकलीफ हुई ..... कुछ दिनों के पश्चात जब आचार्यवर को यथार्थ स्थिति की जानकारी मिली, उन्होंने साध्वी लाडांजी को बुलाया और उनकी विनय, नम्रता और गंभीरता के प्रति हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए जो दण्ड दिया था, वह माफ किया तथा कृपापूर्ण शब्द व्यक्त करते हुए कहां- ''लाडांजी! थांरो विनय ख्यात में खतीजण जिसो है'' अर्थात् तुम्हारा विनय तेरापंथ शासन के इतिहास में लिखा जाने जैसा है।

आचार्यों की अनन्य कृपा

साध्वी लाडांजी ने सप्तमाचार्य डालगणी से लेकर नवमाचार्य तुलसीगणी का युग देखा तथा आचार्य महाप्रज्ञ के युवाचार्य के रूप में दर्शनों का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनका यह सौभाग्य था कि उन्हें सभी आचार्यों की कृपा, वात्सल्यभाव मिला। तेजस्वी पुरुष डालगणी की प्रांरभ से करुणा प्राप्त थी। डालगणी को उनके कर्त्तृत्व पर विश्वास था।

एक बार डीडवाना के श्रावक समाज में धर्म के सन्दर्भ उदासीनता का वातावरण बना हुआ था। डालगणी ने उनकी उपेक्षा वृत्ति को देख साधु साध्वियों का चातुर्मास देना बन्द कर दिया। श्रावकों को भूल का अहसास हुआ और उन्होंने चातुर्मास के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना की। तब डालगणी ने साध्वी लाडांजी को अग्रगण्या बनाकर 1964 का चातुर्मास डीडवाना करने का निर्देश दिया। साध्वी लाडांजी ने प्रथम चातुर्मास में श्रावक समाज में अच्छी जागृति की। डीडवाना के भाई बहिनों में जो जागरूक वातावरण उन्होंने बनाया, उसकी स्वयं डालगणी ने प्रशंसा की।

जब वे डीडवाना चातुर्मास कर गुरु चरणों में पहुंची। एक दिन प्रसंगोपात्त आचार्यवर ने पूछा- लाडांजी! चातुर्मास में रात्रि के समय रामचरित्र का वाचन करते समय क्या सभी गीतों का संगान किया।

साध्वी स्पष्ट शब्दों में कहा- गुरुदेव! प्रारंभ के गीत याद कम थे, इसलिए छोड़ दिए। अवशेष सब गीतों का संगान सहित वाचन किया। आचार्यश्री मर्यादा महोत्सव पर उसका नाम भादरा चातुर्मास के लिए घोषित करते हुए कहा- देखो! इस बार सम्पूर्ण रामायण के गीतों का संगान कर वाचन करना है। गुरु वचनों को श्रद्धा से स्वीकार किया और भादरा में वैसा ही प्रयोग कर आत्मतोष प्राप्त किया।

साध्वीजी की गुरुभक्ति प्रशंसनीय है। महामहिम अष्टमाचार्य कालूगणी साध्वी लाडांज़ी के विषय में जो शब्द कहते सचमुच गौरव का अनुभव कराते हैं। कालूगणी कहते- "लाडांजी की गुरुभक्ति बेजोड़ और अनुकरणीय है।" जब वे बहिर्विहार से गुरुदर्शन करती है, उस समय गुरु के जो यशोगान करती हैं, भक्तिमय वातावरण बन जाता है।" स्वयं कालूगणी प्रवचन को उस समय विराम दे देते और फरमाते- लाडांजी आ रही है।

जब-जब वे गुरुकुल के सुख संवाद सुनती, उनका रोम-रोम हर्षोत्फुल्ल बन जाता, नस नस नाच उठती और वे इतनी अधिक हर्षविभोर हो जाती कि धरती पर पैर नहीं टिकते। वे साधु-साध्वियों को गुरुभक्ति के सन्दर्भ में कहती- ज्ञान-ध्यान से गुरुभक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार नाक के बिना मुंह की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार गुरुभक्ति के बिना ज्ञान ध्यान भी अर्थहीन होते है। उनकी भी शोभा नहीं होती।

आचार्य तुलसी ने सं. 2003 ने उनका चातुर्मास सरदारशहर के लिए घोषित किया। उस समय उन्होंने आचार्यवर को निवेदन करते हुए कहा- आपने मेरा चातुर्मास सरदारशहर फरमाया है, पर मेरे मुंह में तो दांत ही नहीं है, अत: व्याख्यान आदि का काम कैसे होगा? आचार्यश्री ने वात्सल्य के साथ विश्वास व्यक्त करते हुए कहा-"लाडांजी जब सरदारशहर की परिषद में बाजोट पर बैठकर प्रवचन दोगी तब ठिकाने को गूंजा दोगी।" गुरु के मुखारविन्द से प्रेरणा से आप्लावित शब्द सुन साध्वीजी के मन में व्याप्त भय की रेखाएं समाप्त हो गई।

उस वर्ष आचार्यश्री का चातुर्मास राजगढ़ था। वहां से मर्यादा महोत्सव के लिए चूरू पधार रहे थे। साध्वी लाडांजी जब सरदारशहर से चूरू के लिए विहार करने लगी, तब नेमीचंदजी गधैया ने कपड़े लेने की प्रार्थना की। उस समय वहां दस साध्वियां थी। नौ साध्वियों ने बीस-बीस सेर कपड़ा तोलकर ले लिया, तभी साध्वी लाडांजी ने कहा- मैं बीस सेर तो नहीं पर पांच सेर वजन मैं भी लेकर चलूंगी। नेमीचंदजी गधैया ने कहा-

आपका भारी शरीर है, इतना वजन उठाने में कठिनाई होगी। आखिर पांच सेर कपड़े का वजन लेकर वे चलीं। उनमें हिम्मत बहुत थी। कुछ दूर तक तो लेकर चली पर पूरा रास्ता पार नहीं कर सकी। आखिर पैरों ने जबाब दे दिया। सभी साध्वियों का मनोबल और उत्साह बनाए रखने की कला भी उनमें अच्छी थी अन्यथा अपने उपकरणों के अतिरिक्त बीस सेर वजन उठाना सरल काम नहीं था।

तप और स्वाध्याय

वे तपस्या और स्वाध्याय की प्रयोगशाला थी। 'तवसा धुणइ पुराणपावगं' यह आगम वाक्य उनके जीवन में आत्मसात था। यही कारण था कि उन्होंने अपने जीवन में 7638 दिन की कुल तपस्या की, जिसके 21 वर्ष 2 महिने 18 दिन होते हैं। विस्तार से यदि जानना चाहें तो-

उपवास	–	6000	सात	–	1
बेला	–	140	आठ	–	1
तेला	–	50	नौ	–	1
चोला	–	22	तेरह	–	1
पंचोला	–	5	छब्बीस	–	1
छह	–	1	सत्ताइस	–	1

उनके स्वाध्याय का आंकड़ा और भी चौंकाने वाला है। सं. 1956 से 2036 तक उन्होंने तीन करोड़ चौसठ लाख पिच्यासी हजार गाथाओं का पुनरार्वन किया।

संवत 2005 से 2036 तक प्रत्येक महीने में दो लाख आगम पदों का वे नियमित स्वाध्याय करतीं। सं. 2023 से 2036 तक प्रतिदिन उत्तराध्ययन सूत्र के 35 अध्ययन, पुच्छिसुणं का एक अध्ययन, नन्दी सूत्र की थिरावली एवं आगम गाथा की दस माला का स्वाध्याय किया। दशवैकालिक नन्दी, वृहत्कल्प और उत्तराध्ययन के छत्तीसवें अध्ययन का महीने में चार बार स्वाध्याय करती।

साध्वी लाडांजी कठंस्थ ज्ञान विस्मृत न हो जाए, इसके प्रति जागरूक थी और श्रावक श्राविकाओं को भी स्वाध्याय की प्रेरणा देती। जो थोकड़े गीत तथा अन्य ग्रन्थ बहिनों को कंठस्थ होते, उनके साथ परावर्तन करतीं। आगम स्वाध्याय करते समय बहिनों के हाथ में पुस्तक दे देती और उच्चारण पूर्वक सुनातीं। इस प्रकार समय-समय पर

साध्वियों एवं बहिनों को भी स्वाध्याय का अच्छा लाभ देती।

वाक् पटुता की नजीर

प्रतिभा सम्पन्न होने के साथ-साथ उनका वाक्कौशल अद्भुत था। समझदारी और विनयपूर्वक अपना पक्ष प्रस्तुत करने की उनकी कला सचमुच सबको प्रभावित करने वाली थी। साध्वी समाज में उनके प्रति सम्मान के भाव थे और साध्वियां व्यक्तिगत स्तर पर अपनी समस्याओं के संदर्भ में उनके सुझाव सलाह का अच्छा आदर करती थी। उनकी समझदारी की साध्वियां इतनी कायल थी कि उन्हें 'लाडनूँ की जीवंत समझदारी' कहकर पुकारती।

साध्वी लाडांजी के श्रीडूंगरगढ़ स्थिरवास काल में नवमाचार्य तुलसीगणी का वहां अनेक बार पदार्पण हुआ। सं. 2031 का मर्यादा महोत्सव तथा 2035 का वर्द्धमान महोत्सव उनकी उपस्थिति में हुआ। ऐसे स्वर्णिम अवसर का लाभ जब-जब मिलता वे अपनी वृद्धावस्था को भूल-सी जाती। और गुरु-पर्युपासना का जितना संभव होता, लाभ उठाती। उस समय उनकी प्रसन्नता और भक्ति भावना देखने लायक होती। वे भावविभोर होकर गुरु-गुणानुवाद कर भक्ति का समां-सा बांध देती। उन विरल क्षणों को देखकर दर्शकों का सीना गौरव से फूल जाता।

समय-समय पर आचार्यों ने तथा साध्वी प्रमुखा ने उन्हें पत्र प्रेषित किए, वे भी कृपापूर्ण होने के साथ-साथ उसमें उनके व्यक्तित्व की गरिमा भी झलकती है। आचार्य तुलसी ने उनको अनेक पत्रों के माध्यम से प्रेरणा दी। आचार्यवर द्वारा प्रदत्त एक पत्र-

वयोवृद्धा साध्वी लाडांजी!

सुखपृच्छा! वृद्ध अवस्था और कई बीमारियों के कारण अब तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, यह विचारणीय है। शिष्या प्रतापांजी के दिवंगत हो जाने के बाद इस वर्ष अब तुम तीन ही डालगणी की दीक्षिता साध्वियां शेष रह गई हो। अगर तुमने शीघ्रता की और खुमांजी ने भी अपने शरीर को क्षीण किया तो फिर एक ही साध्वी केशरजी डालगणी की दीक्षित हमारे संघ में रह जायगी, सो सोच लेना। मानसिक संकल्प रखना। शिष्या गुलाबांजी भी काफी अस्वस्थ रही। अब ठीक होगा। यहां से साध्वियां आ रही हैं। सुख संवाद कहेगी। पडिहारा सफल मर्यादा महोत्सव के संवाद सुनकर तुम और ज्यादा फूल जाओगी। फूली नहीं समाओगी। खैर-स्वास्थ्य की कामना .....

आचार्य महाप्रज्ञ ने युवाचार्य अवस्था में साध्वी लाडांजी के विषय में तीन दोहे कहे, वे उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते से प्रतीत होते हैं। वे इस प्रकार हैं -

1. **वाणी में वर चतुरता, विनम्रता साकार।**
   सुन्दर संयम-साधना, सफल करयो अवतार॥
2. **अन्तर में पल पल सजग, जागृत सदा विवेक।**
   धन्य धन्य लाडां सती, करयो काम अतिरेक॥
3. **गण गणि में निष्ठा अडिग, सिद्ध हुआ सब काम।**
   वरो वरो साध्वीवरा! पण्डित-मरण प्रकाम॥

सं. 2033 माघ सुदी 13 पड़िहारा

जीवन का सन्ध्याकाल

अन्तिम वर्षों में साध्वी लाडांजी के शरीर पर बीमारियों ने आक्रामण कर दिया। 90 वर्ष की अवस्था में बवासीर की भंयकर तकलीफ रहने लगी। औषधोपचार के बावजूद साता न हो सकी। उनका विवेक जागृत था। उनमें साहस प्रबल था इसलिए वे जागरूकता से बीमारी के साथ जूझना चाहती थी। सं. 2035 पौष शुक्ला तृतीया को जब बवासीर ने और उग्र रूप धारण कर लिया। तब उन्होंने साध्वी गुलाबांजी से कहा- अब मैं दवा को छोड़कर, तपसाधना के प्रयोग करूंगी। इसी संकल्प के साथ साध्वी लाडांजी ने 24 दिसम्बर 1969 को उपवास प्रारंभ किया। उस तपस्या से उनके कई शारीरिक दुविधाएं ठीक हो गईं पर बीच-बीच में शारीरिक स्थिति बिगड़ने भी लगी।

उस समय उनके मन में सदा एक भावना बनी रहती- काश! युवाचार्यश्री के दर्शन हो जाए। ज्ञातव्य है कि उन दिनों युवाचार्य महाप्रज्ञजी पंजाब से श्रीडूंगरगढ़ होते हुए लाडनूं पधारने वाले थे पर श्रीडूंगरगढ पहुंचने में विलम्ब था। इसलिए जब-जब शरीर की स्थिति गंभीर बनती, उनके मन में यहीं चिन्तन उभरता कि युवाचार्यश्री के दर्शन हो जाए .....।

उनकी अस्वस्थता के समय आचार्य तुलसी, युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ तथा साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने जो विचार पत्र द्वारा प्रेषित किए, वे भी पठनीय है,

साध्वी लाडांजी हमारे धर्मसंघ में बहुत पुराने युग की साध्वी है। उनका जितनी

दीक्षापर्याय पुरानी है, उतना सम्पूर्ण आयुष्य विरलों को मिलता है। उन्होंने शासन की बहुत अच्छी सेवा की है। अन्तर-भाव से संघ और संघपति का गुणगान करने में संभवत इनका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। अब जिस स्थिति में पहुंच गई हैं, उसका उपचार मनोबल और तपोबल ही सर्वश्रेष्ठ होता है, संयमबल साथ में है ही। जब जैसा अवसर आ जाए तो संथारे की बात को चूकना नहीं चाहिए। अनशनपूर्वक समाधि मृत्यु जीवन-मंदिर पर ध्वजारोहण का काम करती है। मेरे मन में वयोवृद्धा साध्वी के प्रति बहुत ही सम्मान की भावना है। अत्यन्त प्रसन्न मन से साध्वीश्री लाडांजी अपने तपोबल को चालू रखें। साथ वाली साध्वी गुलाबांजी आदि साध्वियों ने उनकी बहुत अच्छी सेवा की है। इस अवसर पर और भी अच्छा हार्दिक सहयोग देकर सेवा का लाभ उठाएं। श्रीडूंगरगढ़ के सभी श्रावक-श्राविकाएं भी इसमें सजग रहे।

आचार्य तुलसी

गिलपची

(भटिण्डा से 9 किलोमीटर दूर)

26 दिसम्बर 1979

संयम साधना का कीर्तिमान बनाने वाली साध्वी लाडांजी की अन्तिम इच्छा थी कि पंजाब से लाडनूं पधारते समय युवाचार्यश्री श्रीडूंगरगढ पधारें और उन्हें सेवा दर्शन का अलभ्य अवसर मिले। श्रद्धास्पद युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ सलक्ष्य श्रीडूंगरगढ़ पधारे और उनकी भावना का मूल्यांकन किया। युवाचार्यश्री ने पांच दिन वहां प्रवास किया और वयोवृद्धा साध्वीजी को लक्ष्य कर एक दिन कहा- आज साध्वी लाडांजी हमारे धर्मसंघ में उदाहरण बन गई है। अभी तुम संघ में ज्येष्ठा साध्वी हो। अभी पण्डित मरण की क्या जल्दी है?

साध्वी लाडांजी ने विनम्र भाव से बोली-"युवाचार्यवर! मैं तो अभी तपस्या कर रही हूँ। मेरी नाडी या नब्ज की गति ठीक है। साध्वीप्रमुखा जेठांजी कहती थीं कि जब तक नब्ज सामान्य रहे तब तक संथारे की जल्दबाजी नहीं करना चाहिए।" उनके नपे तुले शब्दों में स्पष्ट उत्तर सुनकर वहां खड़े सभी लोग दंग रह गए। युवाचार्य श्री ने कहा लगता है साध्वी लाडांजी की प्राणशक्ति जागृत हो गई है।

♦

उस समय छब्बीस दिन की तपस्या का पारणा उन्होंने माघ शुक्ला द्वितीया को किया। यद्यपि खाने में उनकी रुचि नहीं थी फिर भी अस्वस्थता की अवस्था में वे होमियोपैथी दवा का प्रयोग करतीं और जितनी रुचि होती तथा आहार लेती है। इस प्रकार अड़तीस (38) दिन तक सलक्ष्य उणोदरी तप का प्रयोग किया। इस अवधि में उनका शरीर कृश हो गया, फिर भी मनोबल गजब का था। वेदना में समता भाव था और समाधि उनके चेहरे पर प्रतिबिम्बित होती थी।

उसके बाद पुनः उन्होंने तपस्या प्रारंभ की। फाल्गुन शुक्ला दशम से चैत्र शुक्ला छठ तक 26 दिन की तपस्या हुई। तपस्या के साथ स्वाध्याय ध्यान का क्रम उनका सतत चालू रहता था। सचमुच उनकी साधना का तेज पवित्रता और निर्मलता अनुपम थी और चेहरे की आभा अद्‌भुत थी।

चमत्कार पूर्ण आभास

साध्वी लाडांजी का ज्ञान निर्मल था। अन्तिम समय में ज्यों-ज्यों निर्मलता बढ़ी उन्हें घटनाओं का पूर्वाभास होने लगा। प्रातिभ ज्ञान या पूर्वाभास के आधार पर जो-जो बातें उन्होंने बताई, आश्चर्य पैदा करने वाली है।

बीदासर में मुनिश्री नेमीचन्दजी (बीदासर) का ब्रेनहेमरेज से अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। वह फाल्गुन कृष्णा अष्टमी का दिन था। उसी दिन लगभग बारह बजे के समय साध्वी लाडांजी ने कहा- मुनिश्री खूबचंदजी के परिचारक मुनि नेमीचंदजी का स्वर्गवास हो गया है। मैंने उनकी स्मृति में चार लोगस्स का ध्यान कर लिया। जब कि शाम पांच बजे तक इस सन्दर्भ में श्रीडूंगरगढ में कोई सूचना या संवाद नहीं पहुंचा। पांच बजे के बाद एक चाड़वास की बहिन बीदासर से आने वाली बस में श्रीडूंगरगढ़ आई। उसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि आज बीदासर में एक मुनि दिंवगत हो गए।

चैत्र कृष्णा तृतीया तदनुसार दिनांक 4 मार्च 1980 को प्रातः साढे नौ बजे उन्होंने कहा- सरदारशहर का कमल जम्मड़ (मुनि कुलदीपजी) को श्रीडूंगरगढ़ के कानीरामजी पुगलिया के दौहित्र है। उसकी दीक्षा चैत्र शुक्ला त्रयोदशी अर्थात् महावीर जंयती के दिन सरदारशहर में होगी। विस्मय की बात यह है कि आचार्य तुलसी ने मुमुक्षु कमल जम्मड़ को दीक्षा की स्वीकृति चैत्र कृष्णा त्रयोदशी यानी 14 मार्च 1980 को दी। इससे दूसरों को तो क्या स्वयं कमल को भी यह ज्ञात नहीं था कि इतनी जल्दी उसकी दीक्षा हो जाएगी।

जब भी साध्वियाँ उनको आयुष्य के सम्बन्ध में पूछती तब वे कहती अभी मेरा आयुष्य लम्बा है। चैत्र कृष्णा एकम के दिन उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा- अब मेरा आयुष्य लम्बा नहीं है। उसी दिन प्रातःकालीन साढ़े पांच बजे साध्वी गुलाबांजी से उन्होंने कहा- इस बार आचार्यवर का जब श्रीडूंगरगढ़ पधारना हो तब चन्दनमलजी छाजेड़ की हवेली में विराजने की प्रार्थना करना। उसमें हवा का प्रवेश हो सके वैसे जाली झरोखे भी बहुत है और हॉल भी बड़ा है। मध्याह्न में कन्हैयालालजी छाजेड़ के सामने पुनः यही चर्चा चली जब उन्होंने निवेदन किया- गुरुदेव वहां विराजे तो व्याख्यान कहां होगा तत्काल साध्वी लाडांजी ने कहा- उनके पास गणेशमलजी छाजेड़ की हवेली है उसके पीछे बड़ा नोहरा है।

चैत्रशुक्ला अष्टमी को डॉक्टर भटनागर ने साध्वीजी से कहा- आप तपस्या करेंगी तो कुछ नहीं खाएगी, फिर शरीर में शक्ति कहां से आएगी? फिर हम आचार्यवर को दर्शन देने की प्रार्थना कैसे करें? साध्वीजी बोली - मैंने सत्ताइस दिन की तपस्या का पारणा इसीलिए तो किया है। गुरुदेव के दर्शनों की मेरे मन में तीव्र उत्कण्ठा है।

प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला नवमी के दिन सूर्योदय के बाद तीन घंटे तक उन्हें कानों से कुछ भी सुनाई नहीं दिया। एक बार तो लगा कानों में सुनने की क्षमता क्षीण हो गई पर तीन घंटे बाद जब शब्द सुनाई दिए, उन्होंने साध्वी गुलाबांजी से कहा- मुझे तीन घंटे तक कुछ भी सुनाई नहीं दिया, पर चिन्ता मत करना। यह तो पुद्गलों का स्वभाव है। मैं पूर्ण सजग हूँ, समय आने पर जो भी करना है उसके लिए मैं तुम्हें कह दूंगी।''

ऐसी ही घटना के सन्दर्भ में एक दिन स्थानीय श्रावक तोलारामजी बोथरा ने कहा- क्या आपके पास अवधिज्ञान है? उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा-नहीं, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान की निर्मलता .....।

. द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को प्रातः साढ़े नौ बजे साध्वी लाडांजी ने अचानक कहा-''आचार्यवर इस वर्ष का मर्यादा महोत्सव कर जयपुर पधारेंगे तथा जयपुर से दिल्ली पधारेंगे।'' साध्वियों को यह सुन कैसा-कैसा ही लगा। क्योंकि उस वर्ष का चातुर्मास लाडनूं में था। मर्यादा महोत्सव कहाँ होगा घोषणा नहीं हुई थी। सं. 2038 में 'जयाचार्य शताब्दी वर्ष' मनाना निर्णीत था पर कार्यक्रम कहां क्या होंगे, इस सम्बन्ध में कोई निर्णायकता नहीं थी। लाडनूं चातुर्मास के पश्चात् आचार्यवर सुजानगढ़ पधारे। वहां जयपुर के श्रावकों ने निवेदन किया- शताब्दी वर्ष में जयाचार्य की कर्मभूमि, समाधिभूमि

जयपुर अवश्य पधारें। दिल्लीवासियों की चातुर्मास के लिए पहले से प्रार्थना हो रही थी। तब वहां आचार्यवर ने जयपुर होते हुए दिल्ली जाने की घोषणा की। उस समय साध्वी लाडांजी के कथन की यथार्थता स्वत: प्रमाणित हो गई।

उपरोक्त घटना के पांच दिन पश्चात उन्होंने बताया- श्रीडूंगरगढ़ के श्रावक हुलासमलजी चौरडिया का स्वर्गवास हो गया है। उनमें पात्रदान का अच्छा गुण था। उसी समय उन्होंने दो बातें और कही पर आवाज में भारीपन होने से स्पष्ट रूप से साध्वियां सुन नहीं सकी और न अनुमान लगा सकी।

साध्वी लाडांजी के अस्वस्थता चल रही थी। उन दिनों उनके संसारपक्षीय भतीजे सुमेरमलजी बोरड़ (लाडनूं) उपासना में आए और लगभग दो अढाई महीने तक वहीं रहे। एक दिन सुमेरमलजी साध्वीजी की सेवा में बैठे थे। साध्वी लाडांजी ने कहा- सुमेरमल! तुम्हारे मकान का नक्शा बताऊं? सुमेरमलजी ने निवेदन किया- बतलाइए?

साध्वीश्री बोली- उस मकान पर तुम्हारा और तुम्हारे पिताजी का नाम है। एक तरफ तुम्हारे लड़के निर्मल का नाम है। उसके बाद उन्होंने मकान में कहां चौक है, कहां रसोई है, कहां-कहां कमरे हैं। सुव्यवस्थित रूप से बता दिया। जब कि यथार्थता यह थी कि वह उनका नया मकान था। उसे बने मात्र पन्द्रह वर्ष हुए थे और साध्वी लाडांजी पन्द्रह वर्षों में कभी लाडनूं गई नहीं। उन्होंने उस मकान को देखा नहीं।

सुमेरमलजी ने जिज्ञासा की- महाराज! आपको यह सब ज्ञात कैसे हुआ? आपने तो कभी इस घर में पधारी नहीं? उन्होंने सहजता के साथ कहा- सुमेरमल! मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

उन्हीं दिनों की एक घटना है। सुमेरमलजी उनके सामने बैठे थे। अपना स्वाध्याय कर रहे थे। उनके कानों में कुछ अस्फुट शब्द पड़े। उन्होंने देखा साध्वी लाडांजी किसी से बात कर रही है। उन्हें उनकी गुनगुनाहट सुनाई दे रही थी। तभी सुमेरमलजी ने पूछा- आप क्या कर रही है? उन्होंने कहा- तुम्हारे पिताजी डालिमचन्दजी मेरे दर्शनार्थ आए थे। उनका स्वर्गवास तेरह दिन के अनशन में हुआ था।

सुमेरमलजी श्रीडूंगरगढ़ से लाडनूं आ गए फिर दुबारा दर्शन करने श्रीडूंगरगढ़ पहुंचे, साध्वी लाडांजी ने कहा- तुम मेरा इन्तजार क्यों करते हो? मेरा आयुष्य अभी लम्बा है। बोरड़जी ने प्रतिप्रश्न किया- कितना लम्बा है? उत्तर की भाषा में साध्वीजी बोली- तुम

चिन्ता क्यों करते हो, अन्त समय में तुम्हारा हाथ लग जाएगा।

उसके बाद वे छः महीने कलकत्ता में रहे, एक दिन अचानक उन्हें महसूस हुआ कि साध्वी लाडांजी के दर्शन कर लेने चाहिए। दूसरे दिन कलकत्ता से रवाना होकर वे लाडनूं पहुंच गए। यह समय पयुर्षण का था, संवत्सरी में मात्र दो दिन शेष थे। उसी दिन लाडनूं निवासी झाऊमलजी घोड़ावत श्रीडूंगरगढ़ जाकर आए थे। वे सुमेरमलजी से मिले। उन्होंने कहा- साध्वीश्री ने कहा है कि संवत्सरी तक मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा।

ज्ञातव्य है कि घोड़ावत परिवार साध्वी लाडांजी को मातृतुल्य मानता था। इस परिवार के छोटे बड़े सभी सदस्य ज्ञाति साधु साध्वियों की तरह ही सेवा करेंगे। तेरापंथ धर्मसंघ में सामान्यतया संघीय विधि के अनुसार ज्ञाति साधु साध्वियों की सेवा करना ही विहित है, पर आचार्यों की विशेष कृपा इसमें अपवाद भी रही है। सप्तमाचार्य डालगणी ने दीक्षा से पूर्व लाडांजी की सगाई के सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए घोड़ावत परिवार को सम्बोधित कर कहा- इस परिवार के सदस्य साध्वी लाडांजी की सेवा में जाए तो मनाही नहीं है।

हीरालालजी घोड़ावत (जिनके साथ साध्वी लाडांजी की सगाई हुई थी) के चारों पुत्र - सोहनलालजी, झाऊमलजी, मूलचंदजी और कन्हैयालालजी उन्हें माता के समान समझते थे। उन्होंने सदा जागरूक भाव से अपना दायित्व निभाया और दर्शन सेवा का लाभ लिया।

संवत्सरी के तीन दिन पश्चात सुमेरमलजी दर्शन करने श्रीडूंगरगढ़ गए। वे पहुंचे उस समय साध्वी लाडांजी बेहोश थी। वे चार पांच घंटे रुके तब तक उन्हें होश नहीं आया। सुमेरमलजी लाडनूं रवाना हो गए। जब उन्हें होश आया तब साध्वी गुलाबांजी से पूछा- सुमेरमलजी को मंगल पाठ सुनाया या नहीं? साध्वियों ने पूछा- आपको तो होश ही नहीं था, वे आए आपको पता कैसे चला? उन्होंने सहजता से कहा- मुझे मालूम है।

भाद्रवशुक्ला दशमी के दिन उनकी तबीयत खराब हुई। ज्ञात होते ही वे आए पर स्वर्गवास हो चुका था। दाह संस्कार के समय वे पहुंच गए और साध्वी लाडांजी का वचन मिल गया।

अनशन पूर्वक समाधि मरण

भाद्रव शुक्ला पांचम छठ का बेला कर उन्होंने सातम का पारणा किया। पुनः

अष्टमी को उपवास कर नवमी को एक चावल के दाने से पारणा करने की इच्छा व्यक्त की। तब साध्वी गुलाबांजी ने कहा- एक दाना खाने की अपेक्षा तो बेला करना ही ठीक है। कुछ देर के बाद साध्वी गुलाबांजी एक चावल लेकर पहुंची और लेने के लिए निवेदन किया तब तक उन्होंने बेला पचख लिया था। उन्होंने इतना-सा कहा- तुम तो जानती हो आचार्य भिक्षु ने पके चावल के चालीस दाने और दस मोठ के दाने लेने के बाद अनशन किया था।

दशमी को प्रातः उन्होंने पुनः एक चावल से पारणा करने की भावना व्यक्त की परन्तु कुछ समय बाद उनकी स्मृति में आया कि- दशमी साध्वीप्रमुखा जेठांजी की स्वर्गवासतिथि है। इसलिए उन्होंने कुछ नहीं लिया। साध्वियां उनके आसपास बैठी स्वाध्याय कर रही थी। उस समय साध्वी गुलाबांजी का ध्यान उनके नाक पर टिका और उन्हें लगा नाक का अग्रभाग सफेद हो गया है। उन्होंने वहां उपस्थित श्रावकों से पूछा तो उन्होंने भी इसी बात की पुष्टि की। साध्वी गुलाबांजी को श्रद्धेय युवाचार्यश्री के कथन की स्मृति हो आई-'जब नाक का अग्रभाग सफेद दिखाई दें तब विशेष सावधानी रखना। उस समय साध्वी लाडांजी ने कहा- आज की रात नहीं निकलेगी। उन्होंने यह भी कहा- एक साधु मेरे सिरहाने खड़े हैं और एक साधु पैर की तरफ खड़े है एक कहते हैं अनशन कर लो और दूसरे का कहना है थोड़ी देर ठहरो। मैं क्या करूं किसकी बात मानूं। साध्वियों ने जानना चाहा कि सामने खड़े साधु कौन है? क्या आप पहचान रही हैं? उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। संभव है उन्हें साध्वियों की बात सुनाई न दी हो।

अपनी सहयोगिनी साध्वियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा- तुम सभी साध्वियों ने मेरी बहुत अच्छी सेवा की है। तुम्हारी जय विजय हो, आनन्द मंगल हो। गुरुदेव की कृपा से तुम खूब पढ़ो और आगे बढ़ो। तुम लोगों ने जिस अग्लान भाव से मेरी सेवाकर मुझे साता और समाधि दी है, वह सारा संघ और संघपति की कृपा का परिणाम है, उनका ही प्रताप है। तुम सब गुरुदेव की दृष्टि की आराधना करना, विनय रखना देखो भारीमालजी स्वामी ने विनय नम्रता से आचार्य पद को प्राप्त कर लिया।'' यद्यपि वे कुछ और भी कहना चाहती थी पर आवाज भारी और अस्पष्ट होने से साध्वियां समझ नहीं सकी। थोड़ी देर बाद पुनः कहा-''आज आहार अभी निपटा देना, सायंकाल के लिए कुछ भी मत रखना।''

दोपहर में साध्वियों ने पानी के लिए पूछा तब बोली- अब तो दूसरे जन्म में आहार के बाद ही पानी पीने का भाव है। नाक की डंडी काफी सफेद हो चुकी थी। साध्वी

गुलाबांजी ने पूछा- आपको अनशन करवा दूं क्या? हां कहते हुए उन्होंने दोनों हाथ जोड़ लिए। साध्वी गुलाबांजी अनशन का उच्चारण करवाया तो बोल बोल कर किया। आत्मालोचन किया तथा सबसे खमतखामणा की। चार बजकर चालीस मिनिट पर चौविहार अनशन पचख लिया। और 18 मिनिट पश्चात अनशन सम्पन्न हो गया। इस प्रकार सं. 1936 भाद्रव शुक्ला दशमी शुक्रवार को तीन बजकर 45 मिनिट पर साध्वी श्री ने तेले की तपस्या में तीन बजकर अनशन स्वीकार किया और एक घंटा छत्तीस मिनिट का कुल संथारा आया।

साध्वी लाडांजी ने अन्तिम संलेखना सं. 2036 पौष शुक्ला छठ को प्रारंभ की उसकी पूर्णाहुति सं. 1937 भाद्रव शुक्ला दशमी को हुई। तब तक कुछ 261 दिन हुए, उनमें, 140 दिन की तपस्या हुई-

उपवास	- 55	चोला	- 1
बेला	- 11	छब्बीस	- 1
तेला	- 2	सत्ताइस	- 1

अन्तिम संस्कार :-

साध्वीजी लाडांजी का अन्तिम संस्कार यात्रा बड़ी ठाटबाट से निकाली गई। लगभग आठ हजार लोगों की उपस्थिति थी। श्रीडूंगरगढ़ के लोगों ने उत्साह के साथ सारे कार्य सम्पन्न किए। उनमें कहीं-कहीं अतिरेक भी हो गया। उन्होंने रुपयों की उछाल की तथा चन्दन आदि बहुमूल्य पदार्थों का भी अच्छा उपयोग किया।

सहगामी साध्वियां

उस समय साध्वी लाडांजी की सेवा में छः साध्वियां थी। उनके नाम इस प्रकार हैं-

1. साध्वी सिरेकंवरजी (855) लाडनूं 54 वर्ष तक उनके साथ रही।
2. साध्वी गुलाबांजी (1022) श्रीडूंगरगढ़ 42 वर्ष से तक उनके साथ था।
3. साध्वी फूलकंवरजी (1071) नोहर 38 वर्ष
4. साध्वी रायकंवरजी (1072) श्रीडूंगरगढ़ 40 वर्ष
5. साध्वी चन्द्रकलाजी (1253) हिसार 29 वर्ष
6. साध्वी ज्योतिश्रीजी (1313) श्रीडूंगरगढ़ 14 वर्ष

साध्वीश्री लाडांजी में सहयोगिनी साध्वियों को परोटने की बड़ी क्षमता थी। सब साध्वियों की प्रकृति एक जैसी नहीं होती फिर भी वे सबको स्नेह, वात्सल्य देती तथा सब के साथ समानता का व्यवहार कर एकीभाव को जोड़ लेती। यही कारण था कि उनके सिंघाड़े में प्राय: साध्वियां लम्बे समय तक रही।

साध्वी गुलाबांजी साध्वी श्री लाडांजी के सिंघाड़े का प्रतिनिधित्व एवं सारी संभाल करती थीं। अन्य सभी साध्वियों ने भी अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार लाडसती की बड़ी ही भक्ति भाव एवं तन्मयता से सेवा की। साध्वियों ने उनके पास रहकर बहुत कुछ पाया, उस उपकार से अविस्मृत भाव से उऋण होने का प्रयत्न भी किया।

श्रीडूंगरगढ़ प्रवास की उपलब्धियां :-

साध्वीश्री लाडांजी ने श्रीडूंगरगढ़ में जितने दीर्घकाल तक प्रवास किया, लोगों की उनके प्रति उतनी ही श्रद्धा भक्ति अनवरत बढ़ती रही। श्रावक श्राविकाओं के आध्यात्मिक विकास के प्रति वे तथा उनकी सहयोगी साध्वियां सतत जागरूक थी। यही कारण था कि उनके प्रवास काल में श्रीडूंगरगढ़ में कार्यकर्ताओं की एक लम्बी कतार खड़ी हो गई। उस समय वहां होने वाले संघीय कार्यक्रमों में एक अलग ही उत्साह दिखाई देता था। उनकी प्रेरणा से श्रीडूंगरगढ़ की 36 बहिनें और पांच भाई की दीक्षा हुई। उनके स्थिरवास काल में 46 अनशन हुए। उनमें एक संथारा 51 दिन का तथा एक दिन का हुआ, जिससे संघ की बहुत अच्छी प्रभावना हुई।

आचार्य तुलसी ने उनके व्यक्तित्व की विरल विशेषताओं को एक पद्य में अभिव्यक्ति देते हुए लिखा है -

बंयासी वर्षों की जिनकी संयम यात्रा।
श्रद्धा भक्ति समर्पण की थी गहरी मात्रा,
आती आती कितनी बार मौत थी लौटी।
अपनी दृढ़ता से की है अपनी कड़ी कसौटी,
सैंतीसे भाद्रव सित दसमी दिवस निहारा।
इच्छा मरण किया हो ऐसा सीन सुप्यारा,
वर्षों तक जीती रही संघ-रत्नाधिक बन,
श्रमणी लाडांजी ने किया धन्य धन्य जीवन॥

4. साध्वी हीरांजी (नोहर) (620)

साध्वी हीरांजी का जन्म सं. 1933 भाद्रव कृष्णा दूज को तारानगर में हुआ। उस समय तारानगर की पहचान रीणी नाम से होती थी। उनके पिता का नाम मालचंदजी लूणिया था। उनकी मां बीजा बाई का देहान्त छोटी अवस्था में हो गया था। उस समय बालिका हीरा की उम्र छोटी थी। जब वे चौदह वर्ष की हुई उनका विवाह जबरासर निवासी लिखमीचंदजी चौरड़िया के पुत्र किशनलालजी के साथ हुआ। चौरड़िया परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था और धार्मिक संस्कारों से संस्कारित था। जबरासर में साधु-साध्वियों का आवागमन बहुत कम होता था, इसलिए उनके श्वसुर जबरासर छोड़ नोहर आकर बस गए।

ससुराल में दो वर्ष आनन्द और सुख में व्यतीत हुए। अचानक उनके पति किशनलालजी का देहावसान हो गया। बचपन में मां का साया नहीं मिला और शादी के दो वर्ष बाद पति वियोग के क्षणों में हीरांजी की जो स्थिति बनी, दु:खद थी। लेकिन नियति का योग समझ उस दु:ख को उन्होंने धैर्य के साथ सहन किया। संसार की नश्वरता देख उनका मन वैराग्य की ओर आकृष्ट होने लगा। कुछ समय पश्चात वे अपने पीहर तारानगर गई। वहां साध्वी चौथांजी प्रवास कर रही थी। वे तारानगर की थी और जयाचार्य के कर-कमलों से दीक्षित थी। साध्वीजी ने हीरांजी को प्राथमिक तत्त्वज्ञान सीखाया तथा आत्म-कल्याण के पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

यद्यपि हीरांजी के मानस में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो चुके थे पर अपनी सास के भय से किसी के सामने वैराग्य भाव प्रकट नहीं किए। सबसे पहले साध्वी चौथांजी के समक्ष अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा- मेरी सास का स्वभाव कड़ा है, मुझे उनका भय लगता है, अत: उनको कैसे कहूं कि मैं दीक्षा लूंगी। साध्वी चौथांजी ने समझाते हुए कहा- देख दीक्षा लेनी है तो केवल पीहरवालों की आज्ञा से काम नहीं चलेगा, अत: सास ससुर की आज्ञा तो अनिवार्य है। तुम पहले उनके सामने अपनी भावना रखो, यदि वे प्रसन्नता से स्वीकृति देते हैं तो सर्वोत्तम बात है अन्यथा तुम्हें हिम्मत के साथ संकल्प पर दृढ़ रहना होगा। संभव है तुम्हारी सास की मानसिकता इजाजत देने की न हो तो तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी कि जब तक दीक्षा की अनुमति नहीं देंगे तब तक मैं आहार पानी का उपयोग नहीं करूँगी।''

हीरांजी तारानगर से जब नोहर आ गई, अवसर देख अपनी भावना सास के समक्ष प्रकट की। सास ने दो टूक उत्तर देते हुए कहा- लोग मुझे क्या कहेंगे कि बेटा मर गया तब बहू को घर से निकाल रहे हैं। तुम बतलाओ क्या यह बात अपने परिवार के लिए उचित रहेगी। तुम्हारे लिए यहां कोई कमी नहीं है।'' दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न करते-करते दो वर्ष बीत गए पर वह नहीं मिली और सास की भावना में भी कोई परिवर्तन नहीं आया। एक बार वे अपने पीहर गई हुई थी, वहां से उन्होंने सास के नाम एक पत्र भेजा। जो बात वे आमने-सामने नहीं कह सकती थी पत्र में लिख दी। यहाँ तक कि अब मैं नोहर नहीं आऊंगी, यदि आप आज्ञा न दें। पत्र के समाचार अवगत कर सास ने अपने तीनों पुत्रों को बुलाया और पूछा- ''क्या करना चाहिए? सभी ने कहा- ''आज्ञा दे देनी चाहिए। जिनका मन घर त्यागने के लिए उद्यत हो जाता है, वह रह नहीं सकता, फिर हम क्यों अन्तराय दें।''

उसी रात्रि में हीराजी को स्वप्न में उनके दिवंगत हुए काकाजी दिखाई दिए और कहा-'चिन्ता मत कर, तुम्हें दीक्षा की आज्ञा मिल जाएगी।' दूसरे दिन प्रातः उनको आज्ञा मिलने का आश्वासन मिल गया। वे नोहर गई और आज्ञा पत्र लेकर आ गई। सप्रमाचार्य डालगणी की अनुज्ञा से तारानगर में साध्वी चौथांजी (416) के हाथ से साध्वी हीरांजी की दीक्षा हुई। सं. 1955 कार्तिक कृष्णा नवमी के दिन दीक्षा संस्कार सानन्द सम्पन्न हुआ। डालिम चरित्र में उनकी दीक्षा का उल्लेख करते हुए आचार्य तुलसी ने लिखा है -

चौथांजी पासे हीरा बणी सधीरी।
नोहर निवासिणी नीति निपुण बा नारी॥ डा. च. खं. 2 ढा. 10 गाथा 10

साध्वी हीरांजी दीक्षित होने के बाद उस वर्ष गुरुदर्शन नहीं कर सकी और साध्वी चौथांजी के सिंघाड़े में रही। अस्वस्थता के कारण साध्वी चौथांजी के गुरु दर्शन दो वर्ष तक नहीं हुए। तीसरे वर्ष साध्वीश्री चौथांजी ने डालगणी के दर्शन कर नवदीक्षित साध्वी को गुरुचरणों में समर्पित की। डालगणी ने उसी समय साध्वी चौथांजी से पूछा- बोलो, नवदीक्षिता साध्वी कैसी है? उन्होंने निवेदन किया- गुरुदेव! योग्य और विनीत है। दूसरा प्रश्न डालगणी ने साध्वी हीरांजी से किया- तुम कहाँ रहना चाहती हो? उन्होंने सम्पूर्ण समर्पण की भाषा में कहा-जहाँ गुरुदेव की इच्छा हो वहाँ मुझे रखें, आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है।''

नवदीक्षित साध्वी के मुख से विवेक युक्त उत्तर सुन डालगणी को प्रसन्नता हुई और उन्हें राज में रख लिया। गुरुकुलवास में रहकर उन्होंने साध्वीप्रमुखा जेठांजी के सान्निध्य में अपने जीवन का निर्माण किया। उन्हें सात साल सप्तमाचार्य डालगणी तथा पांच साल तक अष्टमाचार्य कालूगणी की सेवा का अवसर उपलब्ध हुआ। उसके पश्चात साध्वीप्रमुखा जेठांजी अस्वस्थता के कारण राजलदेसर में स्थिरवासी बन गई। उस समय कालूगणी ने साध्वी हीरांजी को उनके पास रखा।

सेवाभावना-

साध्वी हीरांजी जब तक गुरुकुलवास में रहीं, गुरुसेवा का पूरा लाभ उठाती रहीं। उन्हें समुच्चय के कार्य करने का अवसर मिला। कार्यकुशलता के साथ-साथ वे विवेक सम्पन्न थी और श्रमशील भी थी। उनकी बुद्धि अच्छी थी। उन्होंने श्रमपूर्वक अध्ययन में अपने आपको नियोजित किया। पांचसूत्र कण्ठस्थ किए- आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी और वृहत्कल्प। रामचरित्र, मुनिपत, पाण्डुचरित्र जैसे बड़े-बड़े सात व्याख्यान, सैकड़ों संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी भाषा के श्लोक, छन्द दोहे आदि याद थे। इसलिए उनकी प्रवचन शैली प्रभावक थी। साध्वीप्रमुखा जेठांजी राजलदेसर में स्थिरवासी थी, रात्रि का व्याख्यान प्राय: साध्वी हीरांजी देती थी। वहां के लोग भी उनका प्रवचन पसन्द करते थे। दूसरी बात उनका सेवाभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय था। साध्वीप्रमुखा जेठांजी की सेवा उन्होंने बड़ी जागरूकता एवं तत्परता से की। साध्वीप्रमुखा के मन में भी उनके प्रति गहरा विश्वास था। वे अमल का उपयोग किया करती थी, साध्वी हीरांजी हमेशा अमल स्वयं लाकर देती। कभी कभार दूसरी साध्वी लेकर आती तो कहते हैं उस दिन साध्वीप्रमुखा कहतीं- आज अमल ने काम नहीं किया। आचार्य तुलसी ने उनकी सेवाभावना का डालिम चरित्र में निम्न शब्दों में उल्लेख किया -

हीरा सती सहेत, जेठां की सेवा सझी।
सरल विनीत सचेत, आचार्यां री चरण-रज॥ खं. 2 ढा. 10 गा. -11

जब तक वे आचार्यश्री की पावन सन्निधि में रही, उस अवधि में नवदीक्षित साध्वियों की समुचित परिचर्या करतीं। उन्हें आचार विचार का प्रशिक्षण देतीं और साध्वाचार के अनुरूप पारम्परिक अनुभव आदि बताकर उनके संयम को पोषण देने का प्रयत्न करती। एक बार साध्वी संतोकांजी (सरदारशहर) अस्वस्थ हो गई। अचानक वे चलने में असमर्थ हो गई तब साध्वी हीरांजी तीन माइल उन्हें कन्धे पर उठाकर लाई। इसी

प्रकार साध्वी ज्ञानांजी और सोहनांजी को भी एक-एक कोस उठाकर लाई।

अग्रगामी का दायित्व

संवत 1981 में साध्वी प्रमुखाश्री जेठांजी के स्वर्गवास के पश्चात् पूज्य कालूगणी ने साध्वी हीरांजी का सिंघाड़ा बनाया। सं. 1982 से 1913 तक उन्होंने मेवाड़, मारवाड़, थली, हरियाणा आदि अनेक क्षेत्रों में विहरण कर संघ की प्रभावना की। अनेक भाई बहिनों को तात्त्विक ज्ञान तथा तेरापंथ दर्शन के प्रति आकृष्ट किया तथा वे जहाँ भी जाती संघीय संस्कार कूट-कूट कर भरती।

वे श्रमशील थीं। कठिन से कठिन कार्य को वे बड़े उत्साह से सम्पादित करतीं। एक बार सप्तमाचार्य डालगणी सुजानगढ़ में प्रवास कर रहे थे। वहां अधिक ठाणा होने से पानी की आवश्यकता रहती थी। डालगणी ने इस सन्दर्भ में कहा- जसवंतगढ़ से प ी लाना हो तो कौन-कौन तैयार हैं। साध्वी हीरांजी तत्काल बोली-गुरुदेव! मैं तैयार हूँ सचमुच वे जसवंतगढ़ जाकर पानी लाती और एक साथ दो तुम्बे पानी लाती। एक तुम्बा हाथ में लेती और एक तुम्बे को पानी से भरकर उसे सिर पर रख लेती। जबकि दूसरी साध्वियां एक-एक तुम्बा पानी ही लेकर आतीं। उस समय डालगणी ने साध्वी हीरांजी की कर्मठता और श्रमशीलता की प्रशंसा करते हुए एक सौ कल्याणक तथा दो बारी बक्सीस कर पुरस्कृत किया।

श्रद्धा और समर्पण का संगम

साध्वी हीरांजी की गुरुभक्ति और समर्पण-भाव अनुकरणीय था। अष्टमाचार्य कालूगणी भी समय-समय पर उनकी विशेषताओं का उल्लेख करते थे। एक बार पूज्य कालूगणी ने पूछा- हीरांजी! साध्वी की आवश्यकता है क्या? उन्होंने विनम्र भाव से निवेदन किया- गुरुदेव! आप ही पूर्ति कराएंगे। अभी जिन सिंघाड़ों को मेरे से अधिक आवश्यकता है, पहले उनकी पूर्ति कराएं। फिर जब कभी सुविधा हो तब मेरी भी पूर्ति हो जाएगी।

कालूगणी उनकी संघीय भावना से प्रभावित हुए और उसी वर्ष नवदीक्षित साध्वी रतनकुमारीजी (राजगढ़) को उनके साथ भेजा। साध्वी रतनकुमारीजी उनके सिंघाडे में बारह वर्ष रही। साध्वी हीरांजी के मार्गदर्शन में ज्ञान दर्शन और चरित्र के क्षेत्र में विकास करती हुई साध्वी रतनकुमारीजी ने कला में विशेष योग्यता प्राप्त की। उन्होंने बिना मेडिकल

की पढ़ाई किए आंख का ऑपरेशन करना सीखा। उन्होंने आंख के ऑपरेशन में इतनी निपुणता प्राप्त की कि साध्वीप्रमुखा लाडांजी से लेकर जिन-जिन साध्वियों का ऑपरेशन किया। सबमें सफलता प्राप्त की।

भाषा विवेक

साध्वी हीरांजी विवेक पूर्वक बोलती थी। वे न तो सुनी सुनाई बात में विश्वास करतीं और न प्रशंसा में। उनके संसारपक्षीय देवर जुहारमलजी की दो पुत्रियां दीक्षा के लिए तैयार हुई। आचार्यवर को जब यह ज्ञात हुआ तब आचार्यवर ने पूछा – हीरांजी! इनका स्वभाव कैसा है? उन्होंने निवेदन किया – गुरुदेव! मैं इनसे बिल्कुल अपरिचित हूँ। मेरी दीक्षा के बहुत वर्षों बाद तो इनका जन्म हुआ है, अतः आप ही इनकी परीक्षा कराएं। वहां उपस्थित किसी साध्वी ने कह दिया – आपको तो इनकी अर्ज करनी चाहिए। उन्होंने समझदारी का परिचय देते हुए कहा – हम जिनकी प्रकृति के जानकार नहीं हैं, उनकी जिम्मेदारी कभी नहीं लेनी चाहिए। इसी प्रकार वे आचार्यों के समक्ष प्रायः मौन ही रहती और बोलती तो सीमित शब्दों का उपयोग करतीं।

गुरुदृष्टि की आराधिका

गुरु की दृष्टि ही उनके जीवन की सृष्टि थी। गुरु का आदेश मिलने के बाद उनके मन में उससे विपरीत मानसिक संकल्प तक उत्पन्न नहीं होता। सं. 1983 में उनका चातुर्मास भिवानी था तथा साध्वी संतोकांजी (सरदारशहर) का ऊमरा था। चातुर्मास सम्पन्न होने के पश्चात दोनों सिंघाड़े राजगढ़ पहुंचे। वहां साध्वी संतोकांजी अस्वस्थ हो गई। दोनों ने हिम्मत के साथ वहां से विहार कर दिया, पर स्थिति नियंत्रण से बाहर हो गई, आखिर चूरु में रूकना पड़ा। साध्वी हीरांजी उनके साथ वहीं उनकी परिचर्या में रह गई। उस समय आचार्यश्री कालूगणी ने उनकी संघीय भावना की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

साध्वी हीरांजी चातुर्मास कर जब जब गुरुकुल में आती, वे कलात्मक वस्तुओं की भेंट सजाकर लाती। उनकी भेंट को देखने का साधु साध्वियां दोनों में आकर्षण रहता। उनके द्वारा निर्मित रजोहरण, प्रमार्जनी, प्याला टोपसी, हरी पट्टियां (कपडे की) डोरी सांकली आदि सभी कलात्मक होते थे। साध्वी हीरांजी के हस्तकौशल के सन्दर्भ में आचार्य तुलसी ने डालिम चरित्र में लिखा है –

विचरी फिर अगवाण, भेंट सुरंगी ल्यावती।
तुलसी गणपति आण, प्राणाधिक मानी सदा।।

साध्वी हीरांजी अवस्था अधिक होने पर छोटे-छोटे विहार करने लगी। एक दिन आचार्य तुलसी ने पूछा- हीरांजी! अब तुम वृद्ध हो गई, विहार करने में काफी तकलीफ रहती है, अत: किसी एक जगह स्थिरवासी बनकर रह जाओ। तुम साध्वीप्रमुखा जेठांजी की सेवा में राजलेदसर बहुत रही हो। तुम्हारा परिचित क्षेत्र ही अधिक उपयुक्त रहेगा। साध्वी हीरांजी ने विनम्र भाषा में निवेदन किया-गुरुदेव! मैं इतने बड़े क्षेत्र को रोकना नहीं चाहती। आयुष्य का क्या भरोसा, न जाने कितने वर्ष एक स्थान में रहना पड़े। मेरे लिए तो छोटा गाँव ही उपयुक्त रहेगा।

आचार्यवर ने साध्वीजी से कृपाकर पुन: प्रश्न किया- तुम्हीं बताओ छोटा क्षेत्र कौन-सा है? साध्वी हीरांजी बोली- गुरुदेव! आप अन्तर्यामी है, मैं आपको क्या बताऊं, श्रीमुख से जो भी नाम निकलेगा वही मेरे लिए हितकर होगा। आचार्यवर ने उसी समय उन्हें मोमासर में स्थिरवास करने का निर्देश दिया।

आचार्यश्री तुलसी का सं. 2013 का चातुर्मास सरदारशहर था। वहां से शीघ्र विहार कर आचार्यश्री अतिशीघ्र दिल्ली पधार रहे थे। उस समय साध्वी हीरांजी मोमासर में स्थिरवास कर रही थी। आचार्यवर ने मोमासर के एक भाई से पूछा – क्या एलवान लेकर कल शाम तक मोमासर से 24 माइल चलकर साध्वियां गांधी विद्या मंदिर पहुंच सकती है क्या? यह समाचार सुनते ही साध्वी हीरांजी बोली – यदि मेरी आंख में ज्योति होती तो मैं अविलम्ब वहां पहुंच जाती। उनकी उत्साहित मानसिकता ने साध्वियों में उत्साह जगाया और सूर्योदय होते होते एलवान लेकर वहां से रवाना हो गई। सूर्यास्त से पहले पहले साध्वियों ने गांधी विद्या मंदिर पहुंचकर गुरुदेव के दर्शन कर लिए। वे दो साध्वियां थी – साध्वी कानकुमारीजी भादरा और राजकुमारीजी नोहर। गुरु दृष्टि की आराधना की तत्परता और साध्वियों के उत्साह को आचार्य श्री ने पुरस्कार स्वरूप 101 कल्याणक दिए।

यद्यपि वे लम्बी तपस्या कभी नहीं कर पाई पर उपवास बहुत करती थी। उनकी तपस्या–तालिका इस प्रकार है –

उपवास	–	2492	तेला	–	2
बेला	–	31	चोला	–	14

पर वे स्वाध्याय, जप और ध्यान बड़ी जागरूकता से करतीं। सं. 2013 का वैशाख महीना था। वे अपनी सहगी साध्वी से सरदार सुजश व्याख्यान सुन रही थी। उस समय उनकी तन्मयता और एकाग्रता उल्लेखनीय बनी हुई थी। सुनते सुनते

अचानक उन्होंने कहा – मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरे संसारपक्षीय चाचा (जो दिवंगत है) "दर्शन करने आए हैं।" कुछ दिनों के अन्तराल के बाद वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को उन्हें पुनः चाचाजी दिखाई दिए और अनशन के लिए कहा। फिर भी उनके मन में विश्वास नहीं हो रहा था या यह कहें कि वे अनशन का साहस नहीं कर पा रही थीं।

एक दिन वे जय सुजश व्याख्यान सुन रही थी। सुनते सुनते ही साध्वी हीरांजी ने कहा – "अभी अभी स्वर्गीय महासती जेठांजी ने दर्शन दिए और वे मुझे अनशन की प्रेरणा दे रही है।" पास बैठी साध्वियों ने कहा – हमें तो न कुछ सुनाई दे रहा है, न कुछ दिखाई दे रहा है और न महसूस हो रहा है। उसी दिन से उन्होंने लक्ष्य बना लिया कि मुझे अनशन करना है, पर शारीरिक व्याधियां बाधक बन रही थी। आखिर साहस बटोर कर जेष्ठ शुक्ला एकम को सुबह लगभग नौ बजकर 30 मिनिट पर चढते परिणामों के साथ उत्साह से तिविहार अनशन स्वीकार किया। शाम को चार बजे उन्होंने अपनी सहगामी साध्वियों को शिक्षा दी और चौविहार अनशन कर रात्रि के एक बजकर चालीस मिनिट पर दिवंगत हो गई। जिस समय वे दिवंगत हुई साध्वियों के स्थान पर तेज प्रकाश हुआ। लगभग छप्पन वर्ष की संयम यात्रा संपन्न कर वे जेष्ठ शुक्ला एकम् को स्वर्गस्थ हो गई। उनकी पावन स्मृति करते हुए आचार्य तुलसी ने एक सोरठा कहा –

हीरा हीरकणी, सतियां मांहि सुहावणी।
सरल भद्र सुगणी, तुलसी भव–सागर तरी।।

गुरुआज्ञा आराधिका

आचार्य तुलसी ने कालू जन्म शताब्दी के पावन अवसर पर विशाल जनसमुदाय के मध्य तेरापंथ धर्मसंघ के कुछ विशिष्ट साधु साध्वियों की स्मृति की, उनमें एक साध्वी हीरांजी का नाम था। स्मृति पत्र की भाषा इस प्रकार है –

पूज्य गुरुदेवश्री कालूगणी की इस जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर मैं उन दिवंगत साधु साध्वियों को विशेष रूप से स्मरण करता हूँ, जिन्होंने पूज्य गुरुदेव की कृपा दृष्टि का आराधन किया और संघ की गौरववृद्धि में अपनी उल्लेखनीय सेवाएं दीं। उनमें एक नाम है साध्वी हीरांजी नोहर का। उन्होंने गुरुदेव की आज्ञा की आराधना की और पापभीरूता से संघ को ऊंचाई दी।

आचार्य तुलसी

5. साध्वी रतनांजी (सुजानगढ़) (624)

साध्वी रतनांजी का जन्म नोखा ग्राम के बांठिया परिवार में सं. 1938 कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को हुआ। उनके पिता का जेतरूपजी तथा माता का नाम जीवणी बाई था। उनका विवाह सुजानगढ़ के बोथरा परिवार में हुआ। उनके पति का असमय में निधन होने से उनके मन में वैराग्य भाव अंकुरित हुआ। जब विराग भाव पुष्ट हो गया, सं. 1955 ज्येष्ठ शुक्ला 14 को सप्तमाचार्य डालगणी के कर-कमलों में उन्होंने संयम-साधना स्वीकार की। उनकी दीक्षा वीरभूमि बीदासर में हुई। शिक्षा की दृष्टि से उस समय की महिलाएं सर्वथा वंचित थी, इसलिए साध्वी रतनांजी को साधु-प्रतिक्रमण सीखने में काफी समय लगा। परिणामस्वरूप उनकी बड़ी दीक्षा चार महीने पश्चात हुई।

साध्वी रतनांजी साधुचर्या में कुशल तथा प्रभाव सम्पन्न साध्वी थी। उनका साहस बेजोड़ था। उनकी गायन कला मधुर थी तथा स्वर जोशीला था। वे तेरापंथ धर्मसंघ में ख्याति प्राप्त साध्वी थी। आचार्य तुलसी ने डालिम चरित्र में उनके व्यक्तित्व के विषय में वर्णन करते हुए लिखा है-

रतनांजी दाठीक सती, संतां की-सी करड़ी छाती।
कंठ सजोरो जोरो तोरो शासण में खासी ख्याती॥ खण्ड-2 ढा. 10 गा. 14

सप्तमाचार्य डालगणी ने सं. 1965 में उनको अग्रगण्य बनाया। उन्होंने मारवाड़, मेवाड़, थली, हरियाणा, मालवा आदि क्षेत्रों में विचरण कर धर्मसंघ की प्रभावना की तथा श्रावक श्राविकाओं को तत्त्वज्ञान, संघीय संस्कार दिए। सं. 1999 में उनका चातुर्मास बोरावड़ था। चातुर्मास के पश्चात साध्वी रतनांजी ने आचार्य तुलसी के दर्शन सरदारशहर में किए। उस दिन मार्गशीर्ष कृष्णा अमावस्या थी। आचार्यवर ने सहज भाव से पूछा- रतनांजी! आज अमावस है कैसे आ गई? साध्वी रतनांजी ने निवेदन किया- गुरुदेव आज अमावस है, पर सोमवती अमावस है। ऐसा शुभ दिन पांचों पांडवों को वनवास के समय बारह वर्ष तक नहीं मिला, मुझे तो आपकी कृपा से सहज मिल गया। फिर मैं गुरु-दर्शन में देरी क्यों करती।

उनका सं. 2009 का चातुर्मास आचार्य तुलसी ने डीडवाणा के लिए घोषित किया। अस्वास्थ्य के कारण विहार में देरी हो गई और जब विहार किया। मौसम बहुत कड़ा आ गया। यद्यपि सुजानगढ़ से डीडवाना तक अधिक दूरी का पथ नहीं था पर लूंए अत्यधिक चल रही थी। वे छोटी-छोटी मंजिलें करती हुई आगे बढ़ रही थी। साध्वी

रतनांजी एवं उनकी अनुगामी साध्वी नानूंजी दोनो लू की गिरफ्त में आ गई। लू लगने पर बलिष्ठ से बलिष्ठ व्यक्ति भी निढाल बन जाता है। बुखार, बेचैनी और शारीरिक शिथिलता लू से इतनी अधिक बढ़ जाती है कि व्यक्ति घबरा जाता है। साध्वी द्वय के साथ भी वैसा ही हुआ पर उन्होंने साहस को नहीं छोड़ा। आषाढ कृष्णा बारस को भंयकर वेदना में विहार कर वे डीडवाना पहुंची। वहां गांव बाहर 'दयाल आश्रम' में ठहरी।

साध्वी नानूंजी की स्थिति धूप के उपद्रव से बिगड़ रही थी। उनकी छटापटाहट को देखकर साध्वी रतनांजी अपनी वेदना को मनोबल से दबाकर उन्हें आध्यात्मिक सहयोग देने लगी। उन्होंने कहा-''नानूंजी! तुम्हारे वेदना बहुत है पर समभाव से सहन करो। ऊँ भिक्षु का जप करो। हम भाग्यशाली हैं जिन्हें भिक्षु शासन मिला और आचार्य तुलसी जैसे गुरु मिले। साधु का संयम पूर्वक जीना और मरना दोनों श्रेयस्कर है। साधु जीए तो लाख का और मरे तो सवा लाख का। तुम अपने मन में किसी प्रकार का विचार मत करना।

साध्वी नानूंजी दीक्षित होकर 43 वर्ष से साध्वी रतनांजी के पास रह रही थी। दोनों का सामंजस्य दूध-मिश्री जैसा था। उन्होंने कहा- मैं मर जाऊंगी यह मेरे लिए कष्ट की बात नहीं है पर आप बिना मेरी समाधि नहीं रह सकती, यही चिन्तन का विषय है। साध्वी रतनांजी ने सहज सांत्वना देते हुए कहा-मैं जब तक हूँ तुम्हें अपने साथ रखूंगी पर भवितव्यता को कौन रोक सकता है। इस प्रकार समझाते-समझाते साध्वी रतनांजी अकस्मात सायं 4 बजे दिवंगत हो गई।

डीडवाना के श्रावक उनके पार्थिव शरीर को शहर में लेकर गए, इधर साध्वी नानूंजी की शारीरिक स्थिति और बिगड़ने लगी और सात बजकर तीस मिनिट पर उन्होंने भी प्राणोत्सर्ग कर दिया। जिस एकात्मभाव से दोनों ने जीवन यापन किया और सुख-दु:ख में साथ निभाया वैसे ही स्वर्गवास-गमन में साथ कर लिया। सूर्यास्त का समय था और साथ वाली साध्वियों के लिए भंयकर कसौटी के क्षण थे। एक साथ अचानक आगीवान सहित दो साध्वियों के चले जाने से मन प्रभावित होना स्वाभाविक था, मौसम की प्रतिकूलता थी ही, अब तीसरी स्थान की प्रतिकूलता और उपस्थित हो गई। दयाल आश्रम के अधिकारियों ने इस प्रकार दो साध्वियों की मृत्यु को अशुभ माना और कहने लगे- यहां से जल्दी जाओ।

आसपास में कोई दूसरी जगह नहीं थी और सूर्यास्त का समय था इसलिए

साध्वियां कहां जाए? यह पहली समस्या थी।

श्रावक साध्वी रतनांजी के शव को लेकर शहर में गए थे, उन्हें साध्वी नानूंजी के स्वर्गवास की सूचना कौन दें? यह दूसरी समस्या थी।

श्रावक लोग न पहुंचे तब साध्वी नानूंजी को उठाकर कौन ले जाए और कहां ले जाए- यह तीसरी समस्या थी।

दयाल आश्रम और शहर के बीच लगभग दो ढाई तीन किलोमीटर की दूरी थी, साधन उपलब्ध थे नहीं। प्रयत्न करते-करते किसी तरह श्रावक समाज तक सूचना पहुंचाई गई। जब तक श्रावक पहुंचे बहुत देर हो गई, पर करें क्या? रात्रि का समय था, दयाल आश्रम के अधिकारी वर्ग ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया, तब साध्वियां भी वहां से विहार कर शहर में चली गई।

(श्रुतानुश्रुत)

दूसरे दिन प्रातः डीडवाणा के श्रावक-समाज ने अपना कर्त्तव्य का पालन उत्साह और संघीय गरिमा के साथ किया। जिस समय शरीर को चित्ता पर रखकर अग्नि प्रज्ज्वलित की। उस समय साध्वी नानूंजी का शरीर उछलकर साध्वी रतनांजी की गोद में जा गिरा। दर्शक यह अकल्पित दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गए।

संयोग की बात उस दिन अन्यत्र बहिर्विहारी एक सन्त मुनि हीरालालजी जो आमेट के थे। पडिहारा राजलदेसर के मध्य विहार कर रहे थे, रास्ते में ही दिवंगत हो गए। साध्वी नजरकंवरजी गंगापुर लाडनूँ सेवा केन्द्र में उसी दिन स्वर्गवासी हो गई। एक दिन में चार साधु-साध्वियों के दिवंगत होने पर आचार्य तुलसी ने निम्नोक्त दोहा रचकर सुनाया -

बिद बारस आषाढ की, स्वर्गवास हुए चार।
हीरो मुनि, रतना सती, नानू निजरकुंवार॥

6. साध्वी लाधूजी (सरदारशहर) (632)

साध्वीश्री लाधूजी का जन्म सं. 1945 आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को सरदारशहर के दूगड़ परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम किस्तूचंदजी तथा माता का नाम काली बाई था। बारह वर्ष की अल्पायु में उनका विवाह सरदारशहर निवासी तोलारामजी सिंघी के साथ हुआ। शादी के एक वर्ष बाद उनके पति की अचानक बंगाल में मृत्यु हो गई। उस समय लाधूजी सरदारशहर में थी। उसी रात्रि में उन्हें ऐसा आभास हुआ कि उनके पति उनको कह रहे हैं- "मैं तो संसार से विदा हो गया हूँ, तुम दीक्षा लेकर अपना कल्याण करना।" यह सुनकर एक बार तो लाधूजी को आघात-सा लगा। जैसे-जैसे साधु साध्वियों का सम्पर्क बढ़ा, तत्त्वज्ञान आदि के माध्यम से वैराग्य भाव पुष्ट हुआ। धैर्य बढ़ा फिर मन आश्वस्त हो गया। धीरे-धीरे वैराग्य वृद्धिंगत हुआ और बहिन लाधू सप्तमाचार्य डालगणी के कर-कमलों में आकर साध्वी लाधूजी बन गई। उस समय उनकी अवस्था मात्र तेरह वर्ष की थी। उन्होंने संवत 1958 पौष शुक्ला तीज को सुजानगढ़ में दीक्षा स्वीकार की।

साध्वी बनने के बाद वे लगभग आठ साल तक आचार्य श्री डालगणी की सेवा में रही। उन्होंने साधुचर्या का प्रशिक्षण प्राप्त कर ज्ञानर्जन के क्षेत्र में अच्छी गति की। उस आठ वर्ष की अवधि में आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प नन्दी आदि आगम कंठस्थ किए तथा बत्तीस सूत्रों का वाचन किया।

सप्तमाचार्य डालगणी ने संवत 1963 में एक साथ साध्वियों के चार नए सिंघाड़े किए, उनमें एक नाम साध्वी लाधूजी का था। आचार्य तुलसी ने डालिम चरित्र में लिखा है -

पेफांजी, लाधूजी, लाडां, लिछमांजी,
च्यारा नै तेड़ कराई वनणा ताजी।
सिंधाड़बंध विचरो सतियां ल्यो लारै,
तिण ही बेलां शासणपति शब्द उचारै॥

यद्यपि साध्वी लाधूजी सं. 1963 में अग्रगण्या बना दी गई थी, पर उनके बहिर्विहार में चातुर्मास की तालिका सं. 1966 से उपलब्ध होती है, इससे स्पष्ट है कि उन्हें दो वर्ष और गुरु सेवा का अवसर मिला।

साहसिक साध्वी -

साध्वी लाधूजी दाठीक साध्वी थी। 1983 में उनका चातुर्मास बाव में था।

साध्वियों में बाव चातुर्मास करने वाली वे पहली साध्वी थी। बाव के गढ़ में राणाजी को वे हरिवंश का व्याख्यान सुनाने जाया करती थी। बाव के जैन समाज में यह धारणा बन गई कि साध्वियां गढ में जाती हैं, संभव है। वहां से गोचरी में लहसुन और प्याज लाती है। ऐसा सन्देह लिए कुछ भाई उनके पीछे हो गए। साध्वीजी ने उनकी भावना को भांप लिया। उन्होंने लोगों के संदेह का निराकरण करना उचित समझा, इसलिए गढ से वापिस आते समय एक दिन उन्होंने एक मोड़ पर पैर थाम दिए। जब लोग उत्सुक होकर देखने लगे, साध्वीजी ने झोली में से पात्री निकाली और सबको दिखा दी। पात्री में एक फलका और कढी थी। साध्वीजी की निर्भयता ने सबको शान्त कर दिया।

उनका 1974 का चातुर्मास कानोड़ था। उस वर्ष विहार के मध्य उनका गुनोच गांव में जाना हुआ। उस समय उस प्रदेश में महामारी का भयंकर प्रकोप था। इसलिए गांव में प्रवेश निषिद्ध था। साध्वियां ज्योही गांव में प्रवेश करने लगी, उन्हें वहीं रोक दिया। साध्वी लाधूजी ने गुनोच के श्रावकों तक साध्वियों के आगमन की किसी के साथ सूचना पहुंचाई। श्रावकों ने स्थानीय ठाकुर साहब से सारी बात निवेदन कर साध्वियों को गांव में आने की आज्ञा दिराने की प्रार्थना की। ठाकुर साहब ने गांव में आने की अनुमति न देते हुए कहा- साध्वियों को आहार पानी वहीं दे दो।

गांव के बाहर ठहरने का स्थान भी नहीं था। विहार कर आगे जाने की स्थिति नहीं थी। साध्वियां श्मशाम भूमि के बरामदे में ठहरी। श्रावकों ने ठाकुर साहब के आदेश के सामने अपनी विवशता प्रकट की।

साध्वी लाधूजी ने अपनी विधि बताते हुए कहा-हम यहां लाया हुआ, आहार पानी लेंगे नहीं। यदि ठाकुर साहब दो साध्वियों को गोचरी के लिए गांव में जाने की आज्ञा दे दें तो .....। श्रावक साध्वियों और ठाकुर साहब की बीच संवाद पहुचाते रहे पर बात नहीं बनी। इस प्रकार श्रावकों के चार बार इधर से उधर घूमने पर ठाकुर साहब ने कहा- अच्छा दो साध्वियों को आहार पानी लेने के लिए गाँव में ला सकते हो।

साध्वियां गांव में गई, तब तक बहुत देर से चुकी थी। उस दिन गांव में ओसर था, इसलिए किसी के घर खाना बना ही नहीं। बहुत परिश्रम करने के पश्चात् ओसर की मिठाई जिन घरों में आई थी, वह कुछ बची हुई थी, उसे लेकर साध्वियां श्मशान भूमि में पहुंची। मिठाई खाना और रात्रि में वही रहना सचमुच भयावह था। पर साध्वियों ने हिम्मत नहीं हारी। वे साहस और स्वस्थ मानसिकता के बल पर जो भी उपलब्ध था, उससे भूख शान्त की और आस्था के आधार पर ऊँ भिक्षु जप करते-करते पूरी रात बिताई।

विनम्रता की ऊँचाई-

साध्वी लाधूजी डालगणी द्वारा दीक्षित और उन्हीं के कर-कमलों में अग्रगण्या बनी। उन्होंने डालगणी का अच्छा विश्वास अर्जित किया पर संयोग की बात थी, कि डालगणी का स्वर्गवास हुआ, उसी वर्ष उनसे आज्ञा-अनुशासन सम्बन्धी कोई गलती हो गई। चातुर्मास सम्पन्न होने के पश्चात उन्होंने अष्टमाचार्य कालूगणी के दर्शन किए। गुरुदेव ने उनसे पूछा- तुमने चातुर्मास में कोई भूल की? साध्वीजी ने सहजता से गलती स्वीकार करते हुए कहा- गुरुदेव! मेरे से भूल हुई है। आचार्यवर का अगला प्रश्न था- भूल कब हुई? क्या आषाढ़ महीने में हुई? उन्होंने उत्तर दिया- नहीं गुरुदेव!

वह भूल श्रावण मास में हुई?

नहीं गुरुदेव!

क्या भाद्रव में हुई- पुनः वही उत्तर दिया- नहीं गुरुदेव!

तो क्या आसोज में हुई

उन्होंने कहा- तहत गुरुदेव!

कालूगणी बोले- तुमने गलती की और उस समय की, जब डालगणी का स्वर्गवास हो चुका था। (डालगणी भाद्रव शुक्ला बारस को दिवंगत हुए) क्या यह इसलिए हुआ कि अब पूछने वाला कौन है? ऐसा करके मेरी दृष्टि में तुमने संघीय नीति के साथ खिलवाड़ किया है। शिक्षात्मक उपालंभ के साथ अनुशासनात्मक कार्रवाही करते हुए कालूगणी ने उनका अग्रगण्या का पद समाप्त कर दिया। इस एक घटना ने समूचे संघ को यह सीख दे दी कि आज्ञा- अनुशासन मर्यादा के प्रति हर क्षण सजग रहना चाहिए।

साध्वी लाधूजी ने उस समय जिस शालीनता के साथ विनम्रता का परिचय दिया वह उल्लेखनीय था। उन्होंने सहजता सरलता से गलती स्वीकार ही नहीं, आत्मगर्हा करते हुए भविष्य में गलती न करने का बार-बार संकल्प दोहराया। उनकी ऋजुता और विनम्रता ने कालूगणी को प्रभावित किया। कालूगणी ने उदारता पूर्वक उनको क्षमा किया और पुनः अग्रगण्या बनाकर अपनी महानता दिखाई। इस घटना प्रसंग की पद्यमय प्रस्तुति देते हुए डालिम चरित्र में आचार्य तुलसी ने लिखा -

कड़वी कालू सीख, सिर धारी सुगणी सती।
मानी मीठी ईख, गण में मान बढ्यो घणो॥

संघीय सेवा-

साध्वी लाधूजी शारीरिक दृष्टि से सुदृढ़ संहनन वाली तथा स्वस्थ साध्वी थीं। उन्होंने अपने शारीरिक बल का संघ-सेवा में समय-समय पर नियोजन कर कर्म निर्जरा की तथा गण में अच्छी साख प्राप्त की। जब-जब रुग्ण साध्वियों की सेवा का अवसर आया उन्होंने बड़े उत्साह के साथ अपनी सेवाएं संघ को दी।

सं. 1985 का प्रसंग है। उन्होंने छह ठाणों से राजलदेसर से विहार किया। साध्वी केसरजी (629) तारानगर और रतनांजी (सुजानगढ़) के दो सिंघाड़े साथ में थे। वे कुल पन्द्रह साध्वियां थी। उस समय सरदारशहर से बारह कोश की दूरी पर साध्वी लिछमांजी (576) लाडनूँ अस्वस्थ हो गई और वहां से विहार नहीं हो सका। वे पन्द्रह साध्वियां शिमला गाँव पहुंची और उन्हें उठाकर सरदारशहर लाई। अष्टमाचार्य कालूगणी ने सभी साध्वियों को तीन-तीन बारी बक्सीस की।

सं. 1959 में लाधूजी साध्वी तीजांजी को और 2008 में बिदामांजी को अस्वस्थ अवस्था में तीन तथा पांच कोस उठाकर लाई, इस कार्य में उनकी सहयोगिनी साध्वी सिरेकवरजी, चान्दकंवरजी मोमासर सहयोगी रही। पूज्य कालूगणी ने दोनों समय उनको एक-एक बारी बक्सीस की।

संवत 1978 में उनका चातुर्मास सिसाय था। उस समय भिवानी में कपड़ा तथा रोगान दोनों उपलब्ध थे। उस समय उनके साथ चार साध्वियां-चूनांजी, सरदारांजी, जड़ावांजी तथा नानूंजी थे। पांचों साध्वियां भिवानी से चलकर श्रीडूंगरगढ़ पहुंची। वे भेंट में लाई- ग्लास कपड़े के सात थान, पांच पीस लट्ठे के पांच थान तथा बड़ा तुम्बा चन्द्रस रोगन (जिसका वजन सात किलोग्राम था।)

उनकी अनुगामी साध्वी सरदारांजी अकेली ने चार थान (पांच पी) लट्ठे के, तीन थान ग्लास के तथा रोगान का सारा वजन उठाया। शेष चारों साध्वियों ने बाँट लिया। जब यह सारी स्थिति कालूगणीराज को ज्ञात हुई तब 'शासन समुद्र' पुस्तक के अनुसार दो साध्वियों को दो कोस सामने भेजा।

साध्वी चान्दकुमारीजी मोमासर के कथनानुसार पूज्य कालूगणी ने पाँच सन्तों को तोलियासर भिजवाया, वे सारा वजन लेकर श्रीडूंगरगढ़ पहुंचे। जिस समय साध्वी लाधूजी ने गुरु-दर्शन किए, सब सन्तों को एकत्रित कर आचार्यवर ने साध्वियों की हिम्मत की प्रशंसा करते हुए, उन्हें पांच दिन तक गर्म आहार करने की बक्सीस की।

सं. 1992 में साध्वी लाधूजी सरदारशहर से 21 थान ग्लास कपड़े का तथा दो थान लट्ठे का लेकर मेवाड़ पहुंची और राजनगर में आचार्यवर के दर्शन किए। आचार्यवर ने पांच साध्वियों को आठ कोस सामने भेजा। उस समय उनकी सहगामी साध्वियां थीं- सरदारांजी, जड़ावांजी सिरेकंवरजी चांदकुमारीजी। साध्वी सरदारांजी तथा सिरेकंवरजी मोमासर ने नौ-नौ थान उठाए। आचार्यवर ने साध्वियां के साहस और संघनिष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

स्वाध्याय और जप में उनकी अच्छी अभिरुचि थी। उन्होंने अपने जीवन में उपवास से लेकर नौ तक तपस्या की। सं. 2004 में आचार्य तुलसी का मर्यादा महोत्सव बीदासर में था। वहां माघकृष्णा बारस को वे अकस्मात् स्वर्गवासी हो गई।

7. साध्वी मौलांजी (चाड़वास) (643)

साध्वी मौलांजी राजलदेसर की पुत्री तथा चाड़वास के बोथरा परिवार की बहु थी। उनके पति का नाम टीकमचंदजी बोथरा था। टीकमचंदजी का अल्पायु में देहान्त हो गया। साधु साध्वियों के सान्निध्य से उनका त्याग वैराग्य की ओर झुकाव हुआ और संयम–पथ पर बढने की भावना जागृत हुई। सप्तमाचार्य डालगणी के कर–कमलों से मेवाड़ की वीर भूमि गोगुन्दा में सं. 1959 माघ कृष्णा 10 को चारित्र ग्रहण किया। उन्होंने तपस्या कर अपने कर्मों की विपुल निर्जरा की और संघ की प्रभावना बढाई। तपस्विनी साध्वी मौलांजी ने 52 वर्षीय संयम यात्रा में तपकर जो आंकड़े बनाए वे उल्लेखनीय हैं उनकी तपस्या के कुल दिन 5239 होते हैं।

उपवास	–	3039	दस	–	3
बेला	–	420	ग्यारह	–	2
तेला	–	180	बारह	–	3
चोला	–	80	तेरह	–	2
पंचोला	–	37	चवदह	–	1
छह	–	1	पन्द्रह	–	1
सात	–	3	सोलह	–	2
आठ	–	2	सतरह	–	2
नौ	–	5	अठारह	–	1

साध्वी मौलांजी ने सं. 2011 चैत्र शुक्ला 2 को लगभग इक्कीस घंटों के संथारे में लाडनूं में पण्डितमरण प्राप्त किया।

8. साध्वी बखतावरजी (मोखणुंदा) (646)

साध्वीश्री बखतावरजी मेवाड़ की वीर पुत्री थी। उनके पिता डालचंदजी देसरड़ा देवगढ़ के निवसी थे। उनका जन्म सं. 1942 माघ कृष्णा आठम को हुआ। उनका नाम धापू रखा गया। उनके माता-पिता स्थानकवासी जैन परम्परा में विश्वास करते थे तथा अपने धर्मसंघ के प्रमुख श्रावक का दायित्व निभाते थे। माता-पिता के संस्कारों का बालिका पर सहज प्रभाव पड़ा। बालिका धापू जब आठ वर्ष की हुई तभी से आजीवन नवकारसी करने का तथा जमीकंद न खाने का संकल्प लिया। माता-पिता के धार्मिक संस्कार और साधु साध्वियों के सम्पर्क से बालिका धापू का झुकाव अध्यात्म की ओर अच्छा था। धार्मिक भावना उत्तरोत्तर वर्द्धमान रही। सं. 1956 में उनका विवाह मोखणुंदा (मेवाड़) के रतनलालजी पोकरणा के पुत्र घासीरामजी के साथ हुआ।

1956 का पूरा वर्ष भयंकर दुष्काल की चपेट में रहा। यह कालखण्ड छपन्ना काल से विख्यात है। उस समय भूख की महामारी के कारण अनेक व्यक्ति असमय में काल-कवलित हो गए। बहिन धापू के जीवन में वह महामारी भयंकर पतझड़ लेकर आई, जिसने उनके जीवन का सर्वस्व सुख छीन लिया। शादी के दूसरे दिन धापू बाई के जेठ (घासीरामजी के बड़े भाई) अकस्मात काल कवलित हो गए। उनका दाह संस्कार हुआ ही था कि घासीरामजी का देहान्त हो गया। एक नवोढ़ा जिसने ससुराल का मुंह भी नहीं देखा, ससुरालय के आंगन में पैर भी नहीं धरा, उससे पहले ही वैधव्य के राहु से ग्रसित हो गई। बालिका धापू का इस वज्राघात से आहत होना स्वाभाविक था, पर उनके अभिभावकों पर तो जैसे दु:ख का पहाड़ ही गिर पड़ा। पर नियति के आगे सब विवश थे। सारा हर्ष शोक में बदल गया। बारात पुत्रवधू को नहीं पुत्र के शव को लेकर जब घर पहुंची, पूरे गांव में हाहाकार मच गया। घर में अमावस्या की सी अन्धेरी छा गई।

घाव कितना भी गहरा हो समय का मरहम उसे धीरे-धीरे भर ही देता है। बहिन धापू भी वैधव्य को नियति का योग समझकर धैर्य का आलम्बन ले जीवन व्यतीत करने लगी। उनके पिता ने धापू के दीर्घ भावी जीवन को देख दु:खित मन से पुनर्विवाह करने का निर्णय लिया। जब बहिन धापू के सामने उन्होंने अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हुए कहा- तुम्हारी केवल शादी हुई है? ससुराल में तो पैर ही नहीं धरा, इसलिए दूसरी शादी कर दें तो क्या आपत्ति है?

पुनर्विवाह की बात सुनते ही बहन धापू तो अवाक् सी रह गई। क्योंकि उस युग

में कोई औरत दूसरी बार शादी की बात सोच ही नहीं सकती थी। उनके मानस में यह गहरी धारणा थी-

सिंह-गमन, सुपुरूष वचन, कदलि फलै इकबार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥

इसी नीति का अनुसरण करते हुए धापू बाई ने जोशीले शब्दों में कहा-'जिस प्रकार काठ की हंडिया एक बार ही चूल्हे पर चढ़ती है, वैसे ही मैंने भी एक बार अपना जीवन साथी वरण कर लिया। अब दूसरे वर की मैं मानसिक दृष्टि से कामना तक नहीं कर सकती। विधि का जैसा विधान मेरे भाग्य में लिखा है, मुझे वही मंजूर है। आप मेरे भविष्य को लेकर किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मैं जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई अपना जीवन धर्म ध्यान में व्यतीत करुंगी।'

पुत्री के मुंह से स्पष्ट दृढ संकल्प भरी बातें सुनकर उनके माता-पिता को आत्म तुष्टि का अनुभव हुआ और बेटी की ओजभरी वाणी सुन गौरव हुआ। धापू बाई का ससुराल पक्ष आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और गांव में अच्छी प्रतिष्ठा वाला था। उनके श्वसुर रतनलालजी 'रत्तकडिए' के नाम से प्रसिद्ध थे। कहते हैं कि एक बार उनके घर डाकू आए। रतनलालजी ने उनको तत्काल अपने हाथ से दस हजार रुपये देकर खुशी-खुशी विदा किया। उनकी उदारता देखकर डाकू भी प्रभावित हुए और जाते-जाते बोले-ऐसा व्यक्ति हमने जीवन में पहली बार देखा है।

धापू बाई साधु साध्वियों के सम्पर्क में रहकर धार्मिक तत्व ज्ञान सीखने लगी और निरन्तर प्रेरणा पाकर वैराग्यमय जीवन जीने का अभ्यास करने लगी। धार्मिक अनुष्ठान एवं तत्वज्ञान से धीरे-धीरे वैराग्य भाव पुष्ट हुआ और बहन धापू की दीक्षा लेने की भावना तीव्र हो गई। उनकी दृढ संकल्प शक्ति को देखकर घर वालों ने परीक्षा की और विश्वास होने पर दीक्षा की अनुमति प्रदान की। यथा समय दीक्षित करने के लिए स्थानकवासी साध्वियां भी वहां पहुंच गई। दीक्षा की धूम-धाम से तैयारियां होने लगी।

बहिन धापू का ननिहाल टॉडगढ़ में था। उनके मामा शिवरामजी कोठारी का परिवार तेरापंथ में आस्थाशील था। शिवरामजी की गणना सप्तमाचार्य डालगणी के कृपा-पात्र श्रावकों में होती थी। उनको जब भानजी की दीक्षा की सूचना मिली तब वे मोखुणंदा गए और अपनी भानजी को कुछ दिनों के लिए टॉडगढ़ ले आए। उन्होंने वैरागिन धापू को तेरापंथ धर्मसंघ के विषय में पूरी जानकारी दी और स्थानकवासी धर्मसंघ एवं तेरापंथ

धर्मसंघ में आचारगत अन्तर की पूरी जानकारी दी। उन्होंने बहिन धापू को तेरापंथ में दीक्षा लेने की प्रेरणा भी दी। धापू बाई ने भी तेरापंथ की रीति परम्परा को अच्छी तरह से मामा से समझकर तेरापंथ में दीक्षित होने की मानसिकता बना ली, उन्होंने निर्णय कर लिया कि दीक्षा लूंगी तो तेरापंथ में ही लूंगी।

उपरोक्त मानसिक संकल्प के साथ जब ननिहाल से ससुराल पहुंची, सभी वरिष्ठ जनों ने आक्रोश के साथ उनका स्वागत किया। सबके व्यवहार में विरोध के स्वर मुखरित थे, क्योंकि वे तेरापंथ संघ में अपनी घर की बहुरानी को दीक्षित नहीं करना चाहते थे। बहिन धापू के निर्णय के पीछे जानकारी का बल था, अत: उन्होंने निर्भयता से कहा-मुझे दीक्षा देने वाली साध्वीजी मुझे यह लिखकर दे दें कि मैं तुम्हें जीवन भर निभा लूंगी और अपने साथ रखूंगी। तो मुझे कहीं भी दीक्षा लेने में आपत्ति नहीं है। स्थानकवासी संघीय रीति-नीति के अनुसार उनके ससुर जन उनकी चुनौति स्वीकार करने में अक्षम थे, इसलिए मौन हो गए।

इधर शिवरामजी भानजी को ससुराल भेजकर स्वयं सप्तमाचार्य डालगणी के दर्शन करने चले गए और अपनी भानजी के वैराग्य भाव की जानकारी देते हुए कहा-यदि वे तेरापंथ धर्मसंघ में दीक्षित होना चाहें तो आप मेवाड़ में दीक्षा दिराने की कृपा करें।

आचार्यश्री डालगणी ने उनकी भावना को समझते हुए कहा-'साध्वी रायकंवरजी (जो शिवरामजी की संसार पक्षीय बहिन थी) को आदेश दिया कि वे बहिन धापू को मोखुणंदा, देवगढ़ या टॉडगढ़ जहां भी उपयुक्त हो दीक्षा दे सकती हैं। वे उस समय मेवाड़ में ही विहरण कर रही थी। यदि यह दीक्षा चातुर्मास से पहले हो जाए तो चातुर्मास गंगापुर में करना है।'

शिवरामजी द्वारा यह सूचना ज्योंही साध्वी रायकंवरजी को मिली, वे विहारकर अविलम्ब मोखुणंदा पहुंच गई। एक सप्ताह में वैरागिन बहिन धापू को उन्होंने पच्चीस बोल, चरचा आदि आवश्यक तात्विक ज्ञान सिखाया। फिर सं. 1959 आषाढ़ शुक्ल 9 को मोखुणंदा में साध्वी रायकंवरजी (चितामा) ने बहिन धापू और सरदारांजी को दीक्षा प्रदान की। उस दिन उनका नाम रखा-साध्वी वखतावरजी। उस समय उनकी अवस्था मात्र सतरह वर्ष की थी। इनकी दीक्षा का वर्णन करते हुए आचार्य तुलसी ने काव्य की भाषा में लिखा है-

बखतावरजी सरदारांजी मोखणदा।
सति रायकंवरजी कर धार्‌यो संयम सुखदा॥ डा. च. खं. 2 ढाल 10 गा. 1

दीक्षित होते ही साध्वी बखतावरजी ने साध्वी रायकंवरजी के साथ गंगापुर चातुर्मास किया। चौमासा पूरा होते ही साध्वी रायकंवरजी ने सप्तमाचार्य डालगणी के दर्शन कर नवदीक्षिता साध्वी को गुरु चरणों में समर्पित किया। आचार्य डालगणी ने महती कृपाकर साध्वी बखतावरजी को दो साल गुरुकुल में साधना करने का अवसर प्रदान किया, उसके बाद साध्वी रायकंवरजी को ही पुनः सौंप दिया। साध्वी बखतावरजी के उनके पास रहकर साध्वाचार विनय के अनुरूप साधना एवं शिक्षा का विकास किया। शिक्षा के सन्दर्भ में पांच सूत्र कंठस्थ किए। लगभग 30 थोकड़े तथा 40-50 छोटे-बड़े व्याख्या न याद किए। उन्हें सैंकड़ों-सैंकड़ों दोहे और संस्कृत श्लोक भी कंठस्थ थे। उस समय पुस्तक प्रकाशन का प्रचलन नहीं था, इसलिए कंठस्थ ज्ञान का बहुत बड़ा महत्व था। उनकी आचारनिष्ठ, पापभीरू, स्पष्टभाषिनी और निर्भीक साध्वी के रूप में पहचान होती थी। साध्वी रायकंवरजी के पास वे दस वर्ष रही और अपनी अच्छी छाप जमाई। सं. 1972 में साध्वी रायकंवरजी का चाड़वास में स्वर्गवास हो गया। उसके बाद अष्टमाचार्य कालूगणी ने साध्वी बखतावरजी का सिंघाड़ा बनाया। साध्वी रायकंवरजी के साथ जडावांजी (403) नाम की साध्वी थी, वे नेत्र ज्योति से अक्षम थी, अतः कालूगणी ने उनको लाडनूं सेवाकेन्द्र में रखा। अष्टमाचार्य कालूगणी उस समय सुजानगढ़ में विराज रहे थे। एक दिन साध्वी बखतावरजी, साध्वी जड़ावांजी से मिलने लाडनूं आई। दोनों के मिलन से वर्षों तक सह जीवन में बिताए क्षणों को स्मृतियों का उभरना सहज था। उनकी विवशता से साध्वी बखतावरजी का दिल द्रवित हो गया। वे उन्हें लेकर सुजानगढ़ आ गई और पूज्य कालूमणी के चरणों में विनम्र शब्दों में निवेदन किया-गुरुदेव! मैं अपना सिंघाड़ा समर्पित करती हूं। मैं प्रार्थना करना चाहती हूं कि आप साध्वी जड़ावांजी को अग्रगण्या बनाने की कृपा करें। मैं इनके साथ रहकर इनकी सेवा करूंगी और प्रत्येक कार्य में सहयोगी रहूंगी, ऐसी मेरी भावना है।

साध्वी जड़ावांजी की आंख की ज्योति न होने के कारण कालूगणी की मानसिकता उनको अग्रगण्या बनाने की कम थी, पर साध्वी बखतावरजी के विशेष निवेदन और समर्पण मय विसर्जन की भावना का अंकन कर आचार्यवर ने साध्वी जड़ावांजी को अग्रगण्या बना दिया। वास्तव में साध्वी बखतावरजी की विसर्जन की भावना एक विरल घटना है। संभवतः पहली घटना है। इस प्रकार अपने पद का, अधिकार का विसर्जन कर

उदारता का उदाहरण प्रस्तुत किया एक साध्वी की समाधि मे सहयोगी बनी। यद्यपि कालूगणी ने जड़ावांजी को अगवानी की वन्दना कराते समय ही सारे काम की जिम्मेदारी बखतावरजी को सौंप दी थी। साध्वी बखतावरजी ने विनम्रता के साथ जीवन भर जैसा ईमानदारी पूर्वक दायित्व निभाया वह भी एक नजीर बन गया। उन्होंने साध्वी जड़ावांजी की छाया बनकर सेवा की तथा पारस्परिक आत्मीय सम्बंधों को पवित्रता के साथ निभाया, यह उनकी उत्कृष्ट सेवा भावना की सहज अभिव्यक्ति थी।

सं. 1992 में साध्वी जड़ावांजी का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद साध्वी बखतावरजी अग्रगण्या के रूप में विहरण करने लगी। वे जन कल्याण और धर्मसंघ के प्रचार-प्रसार में अपनी शक्ति को समुचित रूप में नियोजित करती पर अपनी व्यक्तिगत साधना को वे कभी गौण नहीं करती। उनको स्वाध्याय में विशेष रूचि थी। प्रतिदिन आगम की तीन सौ गाथा का प्रत्यावर्तन करने का उनका अनिवार्य संकल्प था। प्रतिवर्ष एक बार भगवती सूत्र का वाचन करती। उन्होंने बतीस आगमों का पाठ-वाचन कई बार किया। अपनी सहगामी साध्वियों को भी वे स्वाध्याय की प्रेरणा देतीं और ज्ञानार्जन के लिए उत्साहित करती। वे स्वभाव से तेज और स्पष्ट बोलने वाली थीं, पर सबको हितकारी और कल्याणकारी बात कहतीं, जिससे एक बार कटु लगने पर भी सबको उनके कथन में आत्मीयता का आभास मिलता। उन्होंने लगभग चौबीस वर्ष तक अग्रगण्य रूप में विचरण किया। वे जहां भी गईं, धर्मसंघ की प्रभावना अच्छी की और जन-जन को धर्म का बोध दिया। वे श्रावक श्राविकाओं का त्याग वैराग्य की दिशा में बढ़ने की प्रेरणा देतीं तथा स्वयं भी अच्छी तपस्या करतीं। वे प्रतिमास पांच-सात उपवास नियमित करतीं तथा समय समय पर अच्छी तपस्या करतीं। उन्होंने उपवास से लेकर दश दिन तक की तपस्या की। उनकी तपस्या निम्न है -

उपवास	—	2100	पांच	—	14
बेले	—	33	नौ	—	1
तेला	—	2	दस	—	1
चोला	—	3			

इस प्रकार कुल 2273 दिन की तपस्या की।

वे अपनी सहगामी साध्वियों को समय समय पर सफल जीवन के सूत्र बतातीं। वे कहतीं-आचार्य की आज्ञा का अखण्ड पालन करना चाहिए। आचार्य तीर्थकर तुल्य होते

हैं।

आचार विचार में सावधान रहना चाहिए।

विनम्र रहना चाहिए।

स्वाध्याय के तल्लीन रहना, संयम को पुष्ट करता है।

उनका सं. 2015 का चातुर्मास आचार्य तुलसी ने लावा सरदारगढ घोषित किया। उस समय आचार्यश्री बंगाल विहार यात्रा पर थे। उस वर्ष उनकी शारीरिक स्थिति चलने जैसी नहीं थी, पर गुरु आज्ञा के सामने वे सब कुछ गौण मानती थी, इसलिए छोटी-छोटी मंजिले कर धीरे-धीरे आगे बढ़ती रहीं। क्षेत्रीय दूरी के कारण आचार्यश्री तुलसी को वस्तुस्थिति की अवगति नहीं मिली। रास्तें में कई बार साध्वियां उन्हें उठाकर अगले मुकाम तक पहुंचाती, पर लावा सरदारगढ़ पहुंचने का संकल्प उनका यथावत बना रहा। लावा सरदारगढ़ चातुर्मास के लिए पहुंचकर उन्होंने प्रसन्नता का अनुभव किया।

चातुर्मास के तीन महीने सानन्द बीत गए। कार्तिक कृष्णा 2 को व्याधिग्रस्त होने से अत्यधिक अस्वस्थ हो गईं। अस्वास्थ्य की स्थिति में भी स्वाध्याय के प्रति उनकी रूचि वैसी ही थी, पर स्वयं बोलने में अक्षम हो गई। कार्तिक कृष्णा 14 को सायंकालीन प्रतिक्रमण करते-करते चार लोगस्स का ध्यान प्रारंभ किया और ध्यान की लीनता में सदा के लिए लीन हो गई।

आचार्य तुलसी ने 2015 के कानपुर चातुर्मास में एक गीत बनाया, जिसमें कानुपर वर्णन के साथ संघीय गतिविधियों का उल्लेख भी किया गया है। उसमें साध्वी बखतावरजी तथा कुन्ननांजी (उसी चातुर्मास में दिंवगत हुई) का नामोल्लेख करते हुए लिखा है -

बखतावर कुनणांजी आगीवाण जो,
गण, गणपति स्यूं अन्तरंग अनुरागिणी।
इण चौमासे सुरपुर कियो प्रयाण जो
दोन्यूं सतियां री गण में शोभा घणी॥

9. साध्वी दाखांजी खरणोटा (653)

साध्वी दाखांजी का पीहर मोखुणंदा के पितलिया परिवार में था और उनका ससुराल खरणोटा गांव में था। उनका जन्म सं. 1941 मिगसर शुक्ला चौथ को हुआ। उनका विवाह तात्कालिक प्रथा के अनुसार अल्पायु में हुआ। विधि योग से वे कुछ वर्षों के बाद वैधव्य के अभिशाप से ग्रसित हो गई। संयम स्वीकार करने की भावना ने बल पकड़ा और सं. 1960 पौष कृष्णा 6 को बीदासर की वीरभूमि पर श्रद्धास्पद डालगणी के पावन हाथों से चारित्र स्वीकार किया। कुछ समय पश्चात सं. 1961 में साध्वी दाखांजी के छोटे भाई मुनि बच्छराजजी ने डालगणी के कर–कमलों से संयम रत्न प्राप्त किया। साध्वी दाखांजी संयम साधना में जागरूक थीं। स्वभाव से सरल, ऋजु तथा कोमल थी। वचन माधुर्य उन्हें सहज प्राप्त था। संघ संघपति के प्रति अटूट श्रद्धा और समर्पण भाव था। उनका विनय, विवेक विशेष उल्लेखनीय था। आचार्यश्री तुलसी ने डालिम चरित्र में उनके विषय में वजनदार शब्दों में लिखा है –

दाखां मीठी दाख–सी, बच्छ मुनी की बैन।
भक्ति विनय में रची–पची, अविनय में बेचैन।। डालिम चरित्र पृ. 143

दीक्षा लेकर वे साध्वी हस्तुजी मोखुणंदा के सिंघाड़े में वर्षों तक रही। उनकी सन्निधि में अच्छी योग्यता अर्जित की और उनका विश्वास अर्जित किया। सं. 1985 में साध्वी हस्तुजी दिवंगत हो गई। तब अष्टमाचार्य कालूगणी ने उनको अग्रगामी बनाया।

तेरापंथ धर्मसंघ में मोखुणंदा की साध्वियां अनेक हुई है। जयाचार्य के युग से मोखुणंदा की बेटी या बहु जो साध्वी बन गई, उनका सिंघाड़ा का अनवरत क्रम तुलसीगणी के युग तक चलता रहा। सं. 1921 में जयाचार्यश्री ने मोखुणंदा की साध्वी खेमांजी का सिंघाड़ा बनाया। साध्वी खेमाजी के स्वर्गस्थ होने पर सं. 1953 में आचार्यश्री माणकगणी ने साध्वी खेमाजी की बहिन साध्वी हस्तुजी को अग्रगामी बनाया। सं. 1985 में जब साध्वी हस्तुजी का देहावसान हुआ, अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने साध्वी दाखांजी को अग्रगण्य बना दिया। साध्वी दाखांजी की संयम यात्रा सं. 2007 तक चली। इस प्रकार 79 वर्ष तक छह आचार्यों के शासनकाल तक मोखणंदा की साध्वियों का सिंघाड़ा बराबर चलता रहा।

साध्वी दाखांजी ने मारवाड़ मेवाड़ और थली में ग्राम, नगर शहर में विहरण कर धर्म का प्रचार किया। उन्होंने आत्मकल्याण के साथ परकल्याण में अपनी शक्ति का नियोजनकर सफल और सार्थक जीवन जिया।

साध्वी दाखांजी ध्यान, जप स्वाध्याय के साथ उग्र तपस्या करने वाली तपस्विनी साध्वी थी। उन्होंने 2443 दिन की कुल तपस्या की।

उपवास	—	1500	सोलह	—	2
बेला	—	73	सतरह	—	1
तेला	—	17	अठारह	—	1
चोला	—	18	उन्नीस	—	1
पंचोला	—	13	बीस	—	1
छह	—	3	बाइस	—	1
सात	—	7	तेईस	—	1
आठ	—	8	सत्ताइस	—	1
नौ	—	2	अठाइस	—	1
दस	—	2	उणतीस	—	1
ग्यारह	—	2	तीस	—	1
बारह	—	1	इकतीस	—	1
तेरह	—	1	बत्तीस	—	1
चवदह	—	1			
पन्द्रह	—	2			

यदि 27 दिन की तपस्या को मास खमण माने तो उन्होंने छह मासखमण किए। उपवास से लेकर तेवीस तक का उन्होंने लड़ीबद्ध तप किया।

साध्वी दाखांजी का अन्तिम चातुर्मास 2007 का सोजत रोड में था। वहां उन्होंने तीन दिन तिविहार और 11 दिन का चौविहार अनशन कर अपने आपको कृतार्थ बना लिया। सं. 2007 आसोज शुक्ला पूर्णिमा (शरद–पूर्णिमा) को पण्डित मरण प्राप्त किया। उनका अनशन बड़ा प्रभावशाली रहा। आसपास क्षेत्रों के हजारों लोगों ने दर्शनकर त्याग प्रत्याख्यान किए। साध्वीजी का साहस, सहनशीलता और समता को देखकर सभी ने खुले दिल से तेरापंथ धर्मसंघ की गौरव गाथा का संगान किया। इससे धर्मसंघ की अदभुत प्रभावना हुई।

आचार्यश्री तुलसी ने उनके अनशन–काल में एक सोरठा कहा –

दाखांजी देखो, चौविहार अनशन कियो।
कौन करै लेखो, सती मनोबल नो कहो।।

10. साध्वी जड़ावांजी (डीडवाना) (655)

साध्वी जड़ावांजी की ससुराल डीडवाना के पारख परिवार में था और पीहर कुचेरा के सुराणा परिवार में था। उनका जन्म सं. 1932 माघ शुक्ला 11 को हुआ। पति–वियोग के पश्चात उन्होंने बीदासर में डालगणी के हाथों दीक्षा स्वीकार की। साध्वी जड़ावांजी साधुचर्या में जागरूक रहती हुई तपस्या में अपने आपको लगा दिया। उन्होंने उपवास से लेकर सौलह तक क्रमबद्ध तप किया। एक बार कर्मचूर तप, एक बार धर्मचक्र तप, नौ बार दस पच्चक्खाण, एक बार अढाई सौ पच्चक्खाण और चौबीस तीर्थंकर की लड़ियां की। उनकी सम्पूर्ण तपस्या निम्न प्रकार है –

उपवास	–	976	नौ	–	1
बेला	–	332	दस	–	1
तेला	–	22	ग्यारह	–	1
चोला	–	15	बारह	–	1
पंचोला	–	17	चवदह	–	1
छह	–	3	पन्द्रह	–	1
सात	–	1	सौलह	–	1
आठ	–	2	इक्कीस	–	1

उल्लेखनीय है कि कर्मचूर तप से लेकर तीर्थंकर–लड़ी तक के उपवासों की गणना उपर्युक्त तालिका में नहीं दी गई है। यदि उन्हें मिलाया जाए तो तप की संख्या निम्न प्रकार होती है –

उपवास	–	1426	चोला	–	32
बेला	–	354	पंचोला	–	30
तेला	–	45	अठाई	–	4

साध्वी जड़ावांजी सं. 1990 जेष्ठ शुक्ला दूज को बालोतरा से जसोल अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के दर्शन करने जसोल गई। उस समय गर्मी भयंकर थी। लू ने उनको अपनी चपेट में ले लिया जिससे वे बेहोश हो गई और उसी दिन सायं लगभग छह बजकर तीस मिनिट पर दिवंगत हो गई। गुरु–सान्निध्य के पावन तीर्थ में जीवन यात्रा की सम्पन्नता का अवसर किसी पुण्यात्मा को ही मिलता है।

11. साध्वी दरियावांजी (किशनगढ़) (661)

साध्वी दरियावांजी इन्दौर निवासी गंगारामजी मोदी की पुत्री थी। उनका जन्म सं. 1942 कार्तिक कृष्णा 7 को हुआ। वे चार भाइयों में अकेली बहिन होने के कारण सबकी लाडली थी। उनका विवाह किशनगढ़ (मारवाड़) निवासी रेवतसिंहजी के पुत्र चांदसिंहजी मुणोत के साथ हुआ। उनका ससुराल अत्यन्त सम्पन्न था। वहां धन-धान्य के साथ हाथी, घोड़े, रथ, नौकर-चाकर आदि सभी प्रचुर मात्रा में थे।

वैधव्य और दीक्षा-

उनका विवाह सं. 1996 आषाढ़ कृष्णा 12 को हुआ। उस समय उनकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी। ठीक एक साल बाद सं. 1957 आषाढ कृष्णा 12 को उनके पति का देहान्त हो गया। मुणोत और मोदी दोनों परिवारों पर विपत्ति का पहाड़ टूट गया। यह घटना दरियावांजी के लिए तो वज्रपात जैसी थी, पर सहज धार्मिक संस्कारों के प्रभाव से इस अवसर पर उन्होंने बहुत अच्छा धैर्य का परिचय दिया। अपने संचित कर्मों का योग समझकर दुस्सह पति वियोग को शान्त भाव से सहन करने का प्रयत्न किया। उनकी माता सूवटीबाई तथा भाई नेमीचन्दजी ने उनको अध्यात्म की ओर मोड़ने का प्रयास किया। उनका यह प्रयत्न गर्म लोहे पर दी गई चोट के समान साबित हुआ और उनकी मानसिकता पर वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो गए। साधु-साध्वियों के सम्पर्क से उसे पोषण मिला। दरियावांजी के पितृपक्ष की आस्था तेरापंथ धर्मसंघ में थी इसलिए बचपन से उनको तेरापंथ के सिद्धान्तों में उनकी गहरी श्रद्धा थी। उनका ससुराल पक्ष स्थानकवासी सम्प्रदाय से सम्बंधित था, अत: वे तेरापंथ में उन्हें दीक्षित करना नहीं चाहते थे। दीक्षा कहां हो? इस सन्दर्भ में दरियावांजी को काफी कठिन परीक्षा देनी पड़ी। इसके लिए उन्हें श्वसुर जेठ के साथ बहुत संघर्ष करना पड़ा। अंत में उनके दृढ संकल्प को देखकर परिवार वालों को आज्ञा देनी पड़ी। तेरापंथ में दीक्षा होने का वातावरण बनाने में उनकी ननद जतनकंवर भी निमित्त बनी। उनका ससुराल जयपुर के कोठारी परिवार में था। कोठारी परिवार तेरापंथी था। एक बार जतनबाई अपनी भाभी दरियावांजी को जयपुर ले गई, वहां भी उनकी संघीय भावना पुष्ट बनी। ननद और भाभी में पारस्परिक सौहार्द भाव अच्छा था।

उनके मन में भी दीक्षा की भावना थी। 19 वर्ष की अवस्था में सं. 1961 भाद्रव शुक्ला तेरस को सप्तमाचार्य डालगणी के कर-कमलों से साध्वी जतनकंवरजी की दीक्षा लाडनूं में हुई। साध्वी जतनकंवरजी ने भी पति वियोग के बाद दीक्षा ली। उनके दो पुत्रियां

थी। बड़ी पुत्री की शादी गुलाबचंदजी लूणियां के साथ हुई। गुलाबचन्दजी की गणना तेरापंथ के वरिष्ठ और ज्ञानी श्रावकों में होती है। उन्होंने श्रावक-आराधना ग्रंथ की रचना की। दूसरी पुत्री फूलकंवर थी, जिसने अष्टमाचार्य कालूमणी के कर-कमलों से सं. 1978 में संयम स्वीकार किया। साध्वी दरियावांजी की दीक्षा के सन्दर्भ में आचार्य तुलसी ने डालिम चरित्र में लिखा है-

बारह दीक्षा इकसठे, तिण में धुर दरियाव।
मोदीजी री सोदरी, तारी भव-दधि नाम। खं. 2 ढ

इसी पद्य की टिप्पण में आचार्यवर ने लिखा है-साध्वी दरियावांजी इंदौर निवासी नेमीचन्दजी, गेंदालालजी और केशरीमलजी मोदी की बहिन थी। नेमीचंदजी अपने युग के अच्छे वकील थे और विशिष्ट योग साधक थे। साध्वी दरियावांजी दीक्षित होने के पश्चात् 25 वर्ष तक साध्वी सुवटांजी के साथ और उनके बाद बनने वाली अग्रगण्या साध्वी जडावांजी के साथ नौ साल रहे।

अग्रगण्य पद पर नियुक्ति-

सं. 1996 का मर्यादा महोत्सव सरदारशहर था, उस समय आचार्य तुलसी ने उनको अग्रगण्य बनाया। वे आचारनिष्ठ, श्रमशील, दृढ़ मनोबली एवं गुरु-वचनों पर पूर्ण आस्था रखने वाली थी। उनका व्यवहार सरस था, वे विनोदप्रिय थीं, अतः सहगामी साध्वियों के साथ समय-समय पर विनोद करती रहती थीं। पर नियत मर्यादा और अनुशासन में वे बहुत कड़ी थी। इस सन्दर्भ में गलती करने वालों को वे क्षमा नहीं करती थी। छोटे-बड़े कामों के प्रति उनकी जागरूकता उल्लेखनीय थी। सूर्यास्त के बाद यदि थोड़ी देर भी पानी रह जाता तो वे प्रायश्चित देने में संकोच नहीं करती।

वे अल्पोपधि थीं। सर्दी-गर्मी के परिषह को वे सहन करने में तत्पर रहती। वे उपकरणों की संख्या बहुत कम रखती। दूसरों को भी वे सहन शक्ति बढ़ाकर निर्जरा करने की प्रेरणा देती। जहां तक बन सकता, उन्होंने अस्वस्थ अवस्था में भी प्रतिक्रमण दूसरों से नहीं सुना। वे कष्ट सहिष्णु मनोवृत्ति की साध्वी थीं। साध्वीजी का मनोबल और साहस भी ऊंचा था। कठिनाई आने पर भी वे स्वीकृत संकल्प से पीछे नहीं हटी। गुरु के वचन तो उनके लिए जीवन प्राण थे। किसी भी परिस्थिति में गुरु-आदेश को बदलने का चिन्तन तक उनके दिमाग में नहीं आता।

सं. 2011 में वे सार्दुलपुर प्रवास कर रही थी। उनके पैरों में दाद थे। किसी के कहने से उन्होंने दाद पर तेजाब लगाया, जिससे दाद ने घाव का रूप ले लिया। वे सारे घाव दो-दो इंच गहरे थे, इसलिए चलने में उनको कठिनाई अनुभव हो रही थी। डॉक्टर ने भी चलने के लिए मना कर दिया। ऐसे स्थिति में साध्वी दरियावांजी ने गुरुदेव द्वारा जहां चातुर्मास घोषित था, वहीं जाकर चातुर्मास किया।

समर्पण भाव-

तेरापंथ धर्मसंघ में किस साधु/साध्वी को कहां चातुर्मास करना, शेष काल में कहां विहरण करना है, यह एक मात्र आचार्य के निर्देश पर आधारित है। सामान्यत: स्वयं साधु/साध्वी भी इसमें हस्तक्षेप नहीं करते। साधु-साध्वियों के ज्ञातिजन भी अपनी भावना निवेदित नहीं करते। यहाँ तक कि नाम लेकर चातुर्मास कराने की प्रार्थना तेरापंथ धर्मसंघ की परम्परा के प्रतिकूल मानी जाती है।

एक बार साध्वी दरियावांजी के छोटे भाई गेन्दालालजी मोदी ने आचार्य तुलसी को कहा-गुरुदेव! यदि आपकी मर्जी हो तो मैं एक बात निवेदन करना चाहता हूं। आचार्य तुलसी ने कहा-बोलो क्या कहना चाहते हो? गेंदालालजी ने संकुचाते हुए कहा-गुरुदेव! इस बार आपने साध्वी दरियावांजी का चातुर्मास छोटे से गांव में कराया। वहां गाड़ी मोटर का रास्ता नहीं है, अत: जाने में कठिनाई महसूस होती है। आप उनका चातुर्मास वहां कराने की कृपा कराएं, जहां सड़क का रास्ता हो। गाड़ी मोटर से जाने में सुविधा हो सके। उस समय आचार्य श्री मौन रहे। अगले वर्ष जब चातुर्मास का निर्धारण किया। मर्यादा महोत्सव पर गेंदालालजी आए हुए थे। उन्हें सम्बोधित करते हुए आचार्यश्री ने कहा- गेंदालालजी! इस बार गाड़ी का गांव है। गुरु के वात्सल्यपूरित वचन सुनकर गेंदालालजी गद्‌गद हो गए।

जब साध्वी दरियावांजी को यह बात ज्ञात हुई तब गेंदालालजी को कड़ा उपालम्भ देते हुए उन्होंने कहा-'तुम को ऐसी अर्ज नहीं करनी चाहिए। हम तो पैदल चलते हैं फिर भी आचार्यवर को कोई प्रार्थना नहीं करते। तुम तो साल में एक बार दर्शन करने गाड़ी से आते हो, फिर भी असुविधा महसूस करते हो। चातुर्मास के निर्णय में ज्ञातिजनों को पंचायती नहीं करनी चाहिए। गुरु दूरद्रष्टा होते हैं। उनके सामने अनेक दृष्टिकोण होते हैं। अत: भविष्य में कभी ऐसी गलती मत दुहराना।'

'आणाए मामगं धम्मं' आगम वाक्य उन्होंने आत्मसात कर लिया था। कहते हैं उन्होंने कभी गुरुदेव द्वारा घोषित चातुर्मास को नहीं बदलाया, भले ही अस्वस्थ अवस्था में कठिनता से पहुंची।

स्वाध्यायशीलता-

साध्वी दरियावांजी की बचपन से ही अध्ययन के प्रति रूचि थी। अध्ययन का अवसर न मिलने से पढ़ाई नहीं कर पाई। दीक्षित होने के बाद उन्होंने श्रमपूर्वक कंठस्थ में अपने आपको नियोजित किया। उन्होंने पच्चीस थोकड़े और दस व्याख्यान याद किए। वे प्रतिदिन हजारों गाथाओं का स्वाध्याय कर लेतीं। रामचरित व्याख्यान तो इतना पक्का था कि आधी रात को उठाकर यदि कोई पूछते तो वे अपने नाम की भांति सरलता से सुना देतीं। वे बात बहुत कम करतीं। नियमित स्वाध्याय ध्यान किए बिना वे कभी नहीं सोतीं।

दृढ़संकल्प की धनी-

उनकी सहगामी साध्वियों में साध्वी भीखांजी और जयश्रीजी दोनों नोहर की थी। दोनों सगी बहिनें थी। एक बार उनके संसार पक्षीय पिताजी जुहारमलजी चौरड़िया ने निवेदन किया-साध्वी भीखांजी तो कभी भविष्य में नोहर पधार जाएगी पर आपकी अवस्था वृद्ध है। इसलिए अभी कृपा कराएं ऐसी मेरी उत्कृष्ट भावना है।

साध्वी दरियावांजी ने उनकी भावना का अंकन करते हुए कहा-'यद्यपि मेरी अवस्था वृद्ध है, फिर भी यदि आचार्यवर कृपा कराएं तो मेरा मनोबल प्रबल है।' चौरड़ियाजी ने अवसर देख आचार्यश्री को अपनी भावना निवेदन की। आचार्यवर ने कहा - साध्वी दरियावांजी वृद्ध है, स्वास्थ्य भी विहार के अनुकूल नहीं है, वे इतनी दूर कैसे जा पाएंगीं? चौरड़ियाजी ने विनम्रता से निवेदन किया-गुरुदेव! मैं उनसे पूछकर यहां आया हूं। उनकी अवस्था वृद्ध है, स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं है, पर आत्मबल अच्छा है, यदि गुरुदेव कृपा कराएं तो.....। उन्होंने भयंकर गर्मी की चिलचिलाती धूप में रास्ता पार किया ओर नोहरवासियों की भावना पूरी की। उस समय उनकी कष्ट सहिष्णुता देखकर श्रावक समाज को बोध पाठ मिला।

आचार्यश्री का विशेष अनुग्रह-

सप्तमाचार्य डालगणी की जन्मभूमि उज्जैन है और साध्वी दरियावांजी का पीहर इन्दौर में होने से दोनों की मातृभूमि मालवा थी। इसलिए डालगणी उन्हें मालवा की

साध्वी मानते थे। डालगणी दरियावांजी की अग्रणी साध्वी जड़ावांजी को कई बार कहते-'यह बड़े घर की है, शहर की रहने वाली है। अत: इनका विशेष ध्यान रखा करो।' एक बार साध्वीजी को स्वयं डालगणी ने पूछा-तुम्हारे पास कितने व्याख्यान हैं? उस समय पुस्तक-प्रकाशन की विधि नहीं थी। अध्ययन-अध्यापन, वाचन हस्तलिखित प्रतियों से ही किया जाता था। साध्वी दरियावांजी ने सहजता से कहा-'मेरे पास महिपाल एवं धन्नासेठ का व्याख्यान नहीं है। मेरी इच्छा है, उनका वाचन करूं।' डालगणी ने तत्काल अपने पुट्ठे से दोनों व्याख्यान की प्रतियां निकाली और उन्हें देते हुए कहा-'लो तुम मालवा की हो, जो व्याख्यान चाहिए मेरे से ले लो।' गुरु का अनुग्रह प्राप्त कर साध्वीजी गद्‌गद हो गई और उन प्रतियों को गुरुकृपा का प्रसाद मानकर अंतिम क्षण तक अपने पास रखा। एक बार उनकी सहगामी साध्वी ने कह दिया-अब इन दोनों व्याख्यान की जरूरत नहीं है, केन्द्र को समर्पित कर दें। सुनते ही वे बोली-अभी नहीं, जब मैं मर जाऊं तब समर्पित कर देना।

पारखी दृष्टि

मनुष्य को परखने की उनके पास गहरी दृष्टि थी। वे एक बार देखते ही व्यक्ति और परिस्थिति की पहचान कर लेती। एक बार वे नोहर गई। वहां महालचंदजी छाजेड़ की मां श्रीमती पारीदेवी को दर्शन देने गई। उनको साध्वी दरियावांजी ने संथारे की प्रेरणा दी। बिना किसी अस्वस्थता के संथारे की प्रेरणा वहां खड़े सभी व्यक्तियों को कैसी-कैसी ही लगी। स्वयं पारीदेवी ने कहा-मैं वृद्ध हूं, पर अभी इतनी अस्वस्थता नहीं है। दूसरी बात मेरी भूख, नींद सब कुछ सामान्य है, फिर मैं संथारा कैसे करूं। साध्वीजी ने पुन: कहा-मुझे लगता है आपको संथारा भी अधिक दिनों का नहीं आएगा। यदि आपके भाव हो तो धार्मिक सहयोग जितना बन सकेगा, मेरा देने का भाव है।

पारीदेवी की वैसे साध्वीजी के वचनों पर आस्था थी। पर जीवन-मरण के संदर्भ में सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। पारीदेवी ने उस दिन विश्वास कर हिम्मत का परिचय और साध्वीजी ने तत्काल संथारा पचख लिया। आश्चर्य तो सबको उस समय हुआ, जब पांचवें दिन बहिन का संथारा सम्पन्न हो गया। इस प्रकार अनशन कराने में वही व्यक्ति सहयोगी बन सकता है, जिसकी अध्यात्म चेतना जागृत हो। उस दिन साध्वी दरियावांजी को आभास हुआ, अथवा शारीरिक लक्षणों से उन्हें कुछ लगा कहा नहीं जा सकता, पर वे समय-समय पर ऐसी कई बातें पहले बता देती, जो बाद में घटित हो जाती।

प्रभावशाली साधिका-

उनकी साधना उनकी सहज ऊंचाई थी, आचारनिष्ठा और सत्यनिष्ठा गजब की थी। उनके मुंह से निकले शब्द प्राय: मिल जाया करते थे। साहस और आत्मबल के साथ-साथ वे शक्ति सम्पन्न थीं। जप की साधना में गहरा विश्वास था और समय-समय पर उन्हें सफलता भी मिलती थी। संवत् 2005 में उनका चातुर्मास पीतास (मेवाड़) था। चातुर्मास से पहले उन्होंने बेमाली करेड़ा आदि गांवों में प्रवास किया। चातुर्मास प्रारंभ होते ही उनकी सहगामी छोटी दो साध्वियां व्यन्तरकृत उपद्रव से ग्रस्त हो गई। दोनों साध्वियां कभी नाचने लग जाती, कभी हंसने लगती। एक बार तो दोनों की आंखों की रोशनी गायब हो गई, ऐसे भयंकर उपद्रव बार-बार होने लगे। साध्वीजी ने फिर भी अपने मनोबल को बनाए रखा। न तो आचार्य वर को कुछ निवेदन कराया और न श्रावक समाज को कहकर तांत्रिक या ऐसी विद्या के जानकार व्यक्तियों को बुलाया। उन्होंने अपने ग्रुप में जप और तप का विशेष अनुष्ठान प्रारंभ कर दिया और जब-जब उपद्रव की भयंकर स्थिति सामने आती, जप प्रारंभ कर देती। आखिर दैविक शक्ति ने हार मान ली और यह कहकर चली गई कि 'तुम्हारे मंत्र में बहुत शक्ति है, मैं उसके सामने टिक नहीं सकती।' उपद्रव ग्रस्त होने वाली साध्वियां थी-साध्वी जयश्रीजी और उमांजी। साध्वी दरियावांजी ने उपद्रव प्रारंभ होने से लेकर शान्त होने बाद तक दोनों साध्वियों को खाने के लिए पानी रोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं दिया। मर्यादा महोत्सव पर जब साध्वी दरियावांजी ने आचार्यश्री के दर्शन किए तब आचार्यवर ने उपरोक्त घटना क्रम के संदर्भ में कहा-साध्वी दरियावांजी ने साहस और धैर्य का परिचय दिया। ऐसी दाठीक एवं मनोबली साध्वियों को देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है।

साध्वीजी विहरण करती हुई एक बार रूपनगढ़ पधारी। वहां सिणोदिया गांव का एक भाई आया और अत्यन्त जोर देकर प्रार्थना करते हुए बोला-महाराज! बारह वर्षों से हमारे गांव में कोई साधु-साध्वी नहीं पधारे, कृपा कर आप पधारें तो हम ग्रामवासी धन्य बन जाएंगे। वह एक बार नहीं बार-बार निवेदन करने आता और भाव भरा निवेदन करता। साध्वीजी के मन में करूणा के भाव उभरे और तेरह (13) कोश का चक्कर लेकर भी गांव में जाने के लिए हां भर ली। साधु साध्वियां बारह वर्ष से सिणोदिया गांव क्यों नहीं गए? यह न तो साध्वीजी ने पूछा और न उस भाई ने बताया। भाई के मन में और कुछ नहीं था मात्र साध्वीजी को गांव में ले जाने की उत्कृष्ट आकांक्षा थी। साध्वियों ने जब

सिणोदिया की ओर विहार किया तब भाई ने बताया कि जब तक गांव न आ जाए तब तक आपको मौन रखना है। साध्वियां भाई के कथन का रहस्य समझ नहीं पाई। साध्वियां गांव से कुछ दूर थी, जलती हुई आग दिखाई दी। साध्वियों ने संकेत से पूछा-यह क्या है? उस समय तो भाई ने संकेत मात्र से समझाने की कोशिश की। फिर गांव में पहुंचने के बाद बताया-यह भूतों से द्वारा किया गया उपद्रव है यहाँ पांच साल से आग लगी हुई है।

साध्वियां आगे बढ़ रही थी, रोती हुई स्त्रियां मिली, वे सशब्द रो रही थी, कारण वही भूतों का उपद्रव बताया गया। यहां कई औरतें विक्षिप्त सी बनी हुई है और कई रूदन करती रहती है। ऐसे ऐसे अजीब भयोत्पादक और दहलाने वाले दृश्य साध्वी दरियावांजी ने देखा पर उनकी मानसिकता भयभीत नहीं हुई। वे स्वयं घबराई नहीं और साध्वियों के मनोबल को भी उन्होंने बनाए रखा। वे निर्भयतापूर्वक उस गांव में रही और लोगों का उपदेश देकर लाभान्वित किया।

कष्टों में अद्भुत धैर्य

सं. 2006 का मर्यादा महोत्सव भिवानी में था। साध्वी दरियावांजी भिवानी जा रही थी। किशनगढ़ से उन्होनें विहार किया। कुछ कारणों से विहार में विलम्ब हो गया था। जितना विलम्ब हुआ, साध्वीजी के मन में गुरु-दर्शन की भावना उतनी ही अधिक हो गई। इसलिए उन्हें खूब खोजबीन करने पर एक नए रास्ते की जानकारी मिली जो छोटा था, पर अपरिचित था। उधर से साधु-साध्वियां कोई नहीं गुजरे थे। श्रावकों ने निवेदन किया-रास्ता छोटा है पर अच्छा नहीं है, अत: आप एक बार पुन: चिंतन करें। गुरु-दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा के सामने साध्वीजी ने निर्णय नहीं बदला। उस यात्रा में एक बार पूरे दिन चलते रहे न खाने को रोटी मिली और न ठहरने को स्थान। शाम को सूर्यास्त से पहले एक मास्टर ने उन्हें अपने घर में रात्रि में ठहरने का स्थान दिया और एक रोटी बहराई। पांचों साध्वियों ने वह रोटी खाकर चौविहार कर लिया।

एक बार तेरह मील चलने के बाद गांव के बाहर एक टूटा-फूटा मकान रहने को मिला। गांव के लोगों ने बताया-'रात में यहां कोई आदमी नहीं रहता, क्योंकि यह भूतों का डेरा है।' दूसरी ओर गांव वालों ने अफवाह फैला दी कि ये रात को चोरी करते हैं, इन्हें कोई स्थान न दें। साध्वियां वहीं ठहर गई। चारों ओर सघन अंधकार बिछा हुआ था। जंगल में सायं-सांय की आवाज सुनाई देने लगी, फिर भी साध्वियों ने अपना धैर्य बनाए रखा और पूरी रात जप करते हुए बीता दी। वे सुबह ज्योंही विहार करने के लिए तैयार

हुई। पुलिस के कई जवानों ने आकर रास्ता रोक लिया और बोले-सुना है आप कुंए में जहर डालते हैं, अपने पास छुरी-कैंची आदि रखते हैं और बच्चों का अपहरण कर उन्हें मार देते हैं।

सुनते ही साध्वी दरियावांजी जोशीले शब्दों में बोली-हम जैन साध्वियां हैं, हमारे गुरु आचार्य तुलसी हैं। हम मनुष्य को तो क्या चींटी को भी पीड़ा नहीं देते.....। लगता है तुम लोगों को किसी ने बहकाया है। हम क्या रखते हैं, यह सामान पड़ा आप देख लो। पुलिस वालों ने सामान देखा और विश्वास हो गया कि हमें जो कहा गया वह गलत है। उन्होंने विनम्रता से कहा-आप गांव में चाहे कहीं भी जाएं, हमें कोई एतराज नहीं है।

एक दिन स्थान की गवेषणा करते-करते साध्वियां गांव के रावले में गई। रावले में बीकानेर की लड़की मिली जो वहां की बहु थी। साध्वीजी ने उससे बात की तब उसने कहा-मैंने आप जैसी साध्वियों को पीहर में बहुत देखा है। साध्वीजी ने स्थान के लिए पूछा तब उसने सहजता से कहा-महाराज! मैं इस घर की बहू हूं। हमारा लम्बा-चौड़ा परिवार है। मेरे श्वसुरजी तेज मिजाज के हैं, अतः उनसे पूछे बिना मैं कुछ नहीं कह सकती। रावले में एक चबूतरी थी। उसमें परिवार के अन्य सदस्य की आज्ञा लेकर रुक गई, क्योंकि सूर्यास्त होने वाला था। साध्वियों ने प्रतिक्रमण सम्पन्न कर लिया। खेतों में काम करके भाई लोग घर लौटे, उनके साथ अनेक गाएं भैंसे थी। साध्वियों को देखकर पशु चमक कर भागने लगे। तभी उस बीकानेर वाली बहिन का श्वसुर आ गया और आवेश में आग-बबूला होते हुए बोला-रांडों! निकलो यहां से। मैं एक पल भी तुम लोगों को यहां नहीं रहने दूंगा। यदि नहीं जाओगी तो देख लो ये सारे पशु खुले छोड़ दूंगा....।

साधु मकान-मालिक की आज्ञा के बिना किसी के यहां रुक नहीं सकते, इसलिए रात्रि में साध्वियों को वह चबूतरी छोड़कर निकलना पड़ा। अन्यत्र स्थान न मिलने से लगभग एक किलोमीटर दूर तालाब के पास एक खंडहर से मकान में रात बिताई। वह स्थान भूतों से आवेष्टित था। उस गांव में रात्रि के समय भी आदमी उस रास्ते से नहीं जाता था। वह सूनसान जंगल था। पांचों साध्वियां मंडली बनाकर बैठ गई और उच्च स्वर में जप करने लगी। जप के मध्य कभी धमधम की और कभी छिमछिम की आवाज सुनाई देने लगी। फिर अचानक अट्टहास और रुदन सुनाई दिया। सहगामी छोटी साध्वियां भय से सिहर उठी पर साध्वी दरियावांजी ने सबको आस्था की डोर में बान्धे रखा। उन्होंने कहा-'गुरु का आशीर्वाद और धर्म की शक्ति हमारे साथ है। संसार की कोई शक्ति हमारा कुछ

भी बिगाड़ नहीं सकती। जप में तल्लीन बनीं रहो।' सचमुच भयप्रद वातावरण बनने पर भी धर्म के अचिन्त्य प्रभाव से व्यन्तरशक्ति साध्वियों पर कोई उपद्रव नही कर सकीं।

सूर्योदय होते ही साध्वियां प्रसन्न मन से आगे की मंजिल के लिए विहार की तैयारी करने लगी। उसी समय रावले का वही ठाकुर हाथ में लकड़ी लेकर कुछ साथियों के साथ वहीं पहुंच गया। वे सब यह सोचकर आए थे कि साध्वियों को भूतों ने मार दिया होगा, अतः उन्हें घसीटकर तालाब में डाल आते हैं। साध्वियों को सकुशल हंसती खिलती देखकर एक बारगी तो ठाकुर को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। उस स्थान से गुजरने वाला एक भी व्यक्ति जीवित नहीं रहता, उस स्थिति में ये साध्वियां बिल्कुल सुरक्षित है, यह आश्चर्य का विषय है। उन्होंने अनुभव किया रात्रि में स्थान से निकलने पर भी साध्वियों के चेहरे पर रोष के भाव नहीं है और न ही ऐसे उपद्रव युक्त स्थान में रहने से मुखम्लान है। साध्वियों के सत्य और शील के प्रभाव को देखकर वे लोग बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने खेद प्रकट करते हुए कहा-हमने आपके सत्य और शील का प्रभाव देख लिया है। अतः आप हमारी भूल को क्षमा करके गांव में पधारने की कृपा करें। साध्वियों के लिए आगे विहार करना श्रेयस्कर था, इसलिए उन्हें समझाकर विहार कर दिया।

अतुल मनोबल-

एक बार अन्यत्र विहार में चलते-चलते साध्वी दरियावांजी थक गई। लगभग तीन कोश चलने के बाद एक छोटा सा स्थान आया, वहीं आज्ञा लेकर बैठते हुए उन्होंने कहा-अब आगे नहीं चला जाता। आस-पास खड़े लोगों ने कहा-'इस स्थान में बिच्छू और व्यन्तर देवों का उपद्रव है।' साध्वी दरियावांजी ने निर्भीकता से कहा-वे हमारा क्या अहित करेंगे? साहसकर वे वहीं ठहर गई। रात्रि में बरसात होने लगी। बिजलियां चमकने लगी। कमरे की छत गिरने जैसी थी। मकान की एक दीवार गिर भी गई। साथ में उस दिन उनके संसार पक्षीय भाई मोदीजी सेवा में थे। उन्होंने ग्रामवासियों को कहकर छत को स्थिर रखने के लिए बांस खड़े किए। साध्वियां ने बारी-बारी से जप कर रात बिताई। सुबह उठकर देखा तो उपकरणों के पास पांच-सात बिच्छू थे, लेकिन धर्म के प्रभाव से उन्होंने किसी को काटा नहीं और न ही व्यंतरकृत कोई उपद्रव हुआ।

गंभीर हृदया साध्वी -

साध्वीश्री दरियावांजी मालवा में विहरण करते हुए कल्याणपुरा गांव में गई। वहां

एक संन्यासी बाबा ने तुम्बा लेने का आग्रह किया। बाबा के पास चार तुम्बे थे। उसने उसमें से एक साध्वीजी को दे दिया। वहां के लोग जैनधर्म के द्वेषी थे। जब उन्हें इस बात की जानकारी मिली तो बाबा को बहकाने का प्रयत्न करते हुए बोले-बाबा! आपने साध्वी को तुम्बा क्यों दिया? जब कभी आपकी बैंकुठी बनेगी तो ये चारों तुम्बे आपके काम आएंगे। इनके बिना आप भवसागर पार कर बैंकुंठधाम कैसे जाएंगे? लक्ष्मीजी एवं विष्णु भगवान् के जैसे चार हाथ हैं, वैसे ही ये चार तुम्बे आपके लिए आधारभूत है। इनके बिना आपकी गति नहीं होगी।

संन्यासी कान का कच्चा था। लोगों की बातें सुनने से उसका मन विचलित हो गया। तत्काल तेज गति से चलकर साध्वियों के स्थान पर गया। साध्वी दरियावांजी उसी तुम्बे की कांच से घिसाई कर रही थी। संन्यासी ने पीछे से पत्थर फेंका और साध्वीजी के हाथ से तुम्बा छीनकर ले गया। हड़बड़ी में कांच साध्वीजी के हाथ में चुभ गया, जिससे खून की धारा बहने लगी। साध्वी दरियावांजी कपड़े से खुन की सफाई कर रही थी। साध्वियां गौचरी से वापिस लौट आईं। उन्होंने कारण जानना चाहा तो साध्वीजी ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया-ऐसे ही असावधानी से चोट लग गई। उन्होंने गंभीरता के साथ बात पचा ली, न श्रावकों को बताई और साध्वियों को। लगभग ढ़ाई महीने का समय बीत गया। वे इधर-उधर भ्रमण कर पुनः कल्याणपुरा पहुंची, उस दिन चैत्र शुक्ला त्रयोदशी थी। स्थानीय जैन समाज के लोगों ने महावीर जयंती के उपलक्ष्य में भव्य सवारी निकाली। उनके संसारपक्षीय भाई नेमीचदंजी तथा गेंदालालजी मोदी भी वहां दर्शन करने आए। वे उस इलाके के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। इसलिए जैन समाज के लोगों ने उनको अपने कार्यक्रम में आमंत्रित कर सम्मानित किया। वह बाबा भी वहीं उपस्थित था। बाबा को ज्ञात हो गया है ये विशेष व्यक्ति है और जिनसे तुम्बा छीनकर लाया, उन साध्वीजी के भाई हैं। वह मन से भयभीत हो गया। सवारी जब बाबा की कुटिया के पास से गुजरी तो मोदीजी को देखकर बाबा जोर से चिल्लाया-तुम्बा ले जाओ, तुम्बा ले जाओ। मोदीजी ने संन्यासी को सम्बोधित कर कहा-'हम तो इसका क्या करेंगे, साध्वियों को जरूरत होगी तो आपसे ले लेंगे।' मोदी ने साध्वियों से तुम्बे के विषय में पूछा तो साध्वी दरियावांजी ने कहा-नहीं, हमें नहीं चाहिए।

दूसरे दिन सन्यासी स्वयं चारों तुम्बे लेकर साध्वियों के स्थान पर आया। मोदीजी वहीं साध्वियों की उपासना कर रहे थे। बाबा ने उन्हें प्रणाम करते हुए अनुताप व्यक्त किया और कहा-साध्वीजी! मैं लोगों के बहकावे में आ गया। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया, पर

आपने बड़ी गंभीरता और धैर्य का परिचय दिया। इससे मैं प्रभावित हूं। आपको ये चारों तुम्बे देने के लिए आया हूं। संन्यासी का अत्यधिक आग्रह देखकर साध्वीजी ने दो तुम्बे लिए पर पूर्व घटित घटना मोदीजी को भी नहीं बताई। उनकी सुंदर रंगाई कर जब कालूगणी को उन्होंने भेंट किए उस समय सारा वृतांत सुनाया।

तपस्या-

साध्वी दरियावांजी के मन में तपस्या करने की उत्कृष्ट भावना रहती थी, पर वे अधिक तपस्या नहीं कर पातीं। सावन भाद्रव मास में प्राय: वे एकान्तर करतीं। उपवास से लेकर नौ तक तपस्या उन्होंने की। एक बार वे तपस्या की प्रेरणा दे रही थीं। गेंदालालजी मोदी भी सेवा में आए हुए थे। वे विनोदप्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने साध्वीजी से विनोद में कहा-तपस्या की आप प्रेरणा ही देती है या स्वयं भी तपस्या करतीं हैं। यदि स्वयं तपस्या नहीं करेंगी तो प्रेरणा प्रभावशाली नहीं बनेंगी। भाई से प्रेरित होकर उस दिन साध्वीजी ने एक साथ पंचोले का प्रत्याख्यान किया। उसका गांववासियों पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ा और उस वर्ष वहां अच्छी तपस्या हुई।

अंतिम समय-

साध्वी श्री दरियावांजी ने जीवन के अंतिम तीन वर्ष स्थिरवासी बनकर बिताये। अस्वास्थ्य के कारण तीन साल डीडवाना में उन्होंने प्रवास किया। छ: दिन की संलेखना में पांच मिनिट का अनशन कर सं. 2016 माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन वे दिवंगत हो गई। उस समय उनकी अवस्था पचहत्तर वर्ष थी। उन्होंने 57 वर्ष संयम पर्याय का पालन किया।

12. साध्वी भूरांजी (टॉडगढ़) (670)

साध्वी भूरांजी का जन्म बरार के दक परिवार में सं. 1936 में हुआ। उनका ससुराल टॉडगढ़ के मांडोत परिवार में था। कब शादी हुई और कब पति विरह का वज्राघात हुआ, कहीं कुछ उल्लेख नहीं है। इतना स्पष्ट है कि पति के दिवंगत होने के बाद उन्होंने सं. 1961 माघशुक्ला चवदस को रतनगढ में सप्तमाचार्य डालगणी के पास तीन बहिनों ने दीक्षा ली, उनमें एक साध्वी भूरांजी टॉड़गढ़ थीं।

साध्वी भूरांजी का बाह्याभ्यंतर दोनों व्यक्तित्व आकर्षक थे। जहां वे आकृति से सुन्दर थी, वहां साधना की सौम्यता भी उनके चेहरे पर अच्छी थी। वे विवेकशील, विनयशील, शान्त, भद्र और सरलमना साध्वी थी। उन्होंने व्याख्यान थोकड़े आदि कंठस्थ किये। स्वाध्याय और जप में उनकी आन्तरिक रूचि थी और स्वाध्याय जप वे नियमित करती।

आचार्यश्री डालगणी ने साध्वी भूरांजी को दीक्षित कर साध्वी लाडांजी लाडनूं (610) को सौंपा। वे दो साल उनके संरक्षण में आचार्यश्री डालगणी की सेवा में रही। सं. 1963 में साध्वी लाडांजी को अग्रगण्या बनाया, तब से अन्त तक साध्वी भूरांजी उन्हीं के साथ रही। वे हमेशा स्वयं समाधिस्थ रहीं और साथ रहने वाली किसी भी साध्वी को उन्होंने अपनी ओर से असमाधि नहीं दी। 62 साल तक एक सिंघाडे में रहकर साध्वी भूराजी ने नया कीर्तिमान कायम किया।

वे बाह्य और आभ्यंतर दोनों तप की आराधना करने वाली साध्वी थीं। उनके कषाय अल्प थी, सेवा विनय भाव अत्यधिक विकसित था और उपवास आदि तप भी बहुत करती थी। उनकी तपस्या–तालिका निम्न है –

उपवास	–	2623	छह	–	2
बेला	–	119	सात	–	1
तेला	–	47	आठ	–	1
चोला	–	28	नौ	–	1
पंचोला	–	26	अठारह	–	1

उन्होंने अंतिम समय में 41 दिन की संलेखना की और 3 घंटों के तिविहार अनशन में सं. 2023 कार्तिक शुक्ला छठ को श्रीडूंगरगढ़ में पण्डित–मरण को प्राप्त हो गईं। संलेखना काल में उनके वर्धमान परिणाम और निर्मल साधना का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और धर्मसंघ की प्रभावना हुई। उनके दिवंगत होने पर आचार्यश्री

तुलसी ने एक सोरठा कहा –

भूरां संयम भार, भारी वहन कियो भुजां।
सरल भद्र सुखकार, तप अन्तिम इकताल दिन।।

13. साध्वी पारवतांजी (छापर) (671)

साध्वी श्री पारवतांजी का जन्म मलसीसर गांव में सं. 1983 चैत्र शुक्ला 3 को हुआ। बीकानेर संभाग के सुजानगढ़ से 6 माईल की दूरी पर यह छोटा सा गांव है। उनके पिता का नाम जालमचंदजी मालू था और माता का नाम रामाबाई। पारवतांजी आदि पांच बहिनें और पांच भाई थे। छोटी अवस्था में ही उनकी सगाई छापर निवासी हनुतमलजी नवलखा के पुत्र हीरालालजी से कर दी गई। विवाह का समय नजदीक था। विवाह पूर्व की तैयारियां दोनों ओर की जा रही थी, कि अचानक हीरालालजी को आभास हुआ कि उनका आयुष्य मात्र दो वर्ष का है। कहते हैं कि यह जानकारी उन्हें किसी देवता के सहयोग से मिली। उन्होंने अपने पिता और ससुर दोनों के सामने उपरोक्त घटना सुनाते हुए शादी न करने की बात कही।

एक बलिष्ठ स्वस्थ युवक के विषय में ऐसी भविष्यवाणी सुनकर जालमचंदजी को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने हनूतमलजी मालू को सम्बोधित कर कहा-मेरी लड़की बड़ी हो गई है, इसलिए मैं जल्दी शादी करना चाहता हूं, यदि आपका लड़का अभी शादी न करना चाहे तो सगाई छोड़ दें।

वह युग ही ऐसा था कि सगाई छोड़ना सामाजिक दृष्टि से अपराध माना जाता था। उस समय लड़की की शादी भी छोटी अवस्था में की जाती थी, अत: दोनों पक्ष सामाजिक दायित्व में बन्धे थे। दोनों ने पारस्परिक सहमति से विवाह करने का निर्णय कर लिया। सं. 1955 वैशाख शुक्ला 2 को शुभ मुहूर्त में धूमधाम से विवाह कर दिया। बालिका पारवतां नववधू के रूप में ससुराल गई और सास-ससुर के संरक्षण में आनन्द से रहने लगी। थोड़े दिन पश्चात् हीरालालजी व्यापारार्थ आसाम चले गए। वहां वे बीमार हो गए और पूर्व आभास के अनुसार ठीक दो साल बाद आषाढ़ शुक्ला पंचमी को उनका देहान्त हो गया। उस समय संचार-साधन बहुत कम थे, इसलिए छापर में नवमी के दिन सूचना पहुंची। पूरे परिवार पर जैसे विपत्ति का पहाड़-सा टूट पड़ा। नव विवाहिता पारवता पर वैधव्य की बिजली गिर पड़ी। वह सुहाग का अर्थ भी पूरा न समझ सकी, नियति ने उनको वैधव्य की अंधेरी में धकेल दिया। ऐसे दु:खद क्षणों में धर्म और धैर्य का आलम्बन व्यक्ति को आश्वासन दे सकता है। उस समय मुनिश्री कालूजी (बड़ा) का छापर में चातुर्मास था, उन्होंने परवतांजी को परिवार जनों को आध्यात्मिक प्रेरणा दी और धार्मिक रुचि जगाने का प्रयत्न किया। उस चातुर्मास के पश्चात् छापर में साध्वी मकतुलांजी

(लाडनूं) का प्रवास हुआ। उस प्रवास में उन्होंने तथा उनकी सहयोगिनी साध्वियों ने पारवतांजी के वैराग्य भाव को जागृत करने का विशेष प्रयत्न किया। संसार की नश्वरता को वे स्वयं देख चुकी थी। इसलिए साध्वियों की प्रेरणा का सकारात्मक असर हुआ और वे दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गई। उन्होंने सप्तमाचार्य डालगणी के दर्शन कर अपनी भावना व्यक्त की। आचार्य वर ने सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया। पारवतांजी की बुद्धि प्रखर थी, उन्होंने कुछ ही दिनों में साधु प्रतिक्रमण कंठस्थ कर लिया तथा अपने पारिवारिक जनों की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। उसके पश्चात सं. 1961 वैशाख कृष्णा पंचमी को आचार्य श्री डालगजी ने रतनगढ़ में उन्हें संयम-रत्न प्राप्त किया।

साध्वी पारवतांजी को दीक्षित होने बाद 9 महीने गुरुकुल में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके पश्चात तीन साल वे साध्वी रायकंवरजी चितामा (328) के सिंघाड़े में रही। उसके बाद लगातार 36 वर्ष तक वे साध्वी लिछमांजी सुजानगढ़ के पास रहीं। उनके पास उन्होंने शिक्षा, संस्कार और साधना में निरन्तर गति प्रगति की। उन्होंने चार आगम दशवैकालिक उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प तथा आवश्यक कंठस्थ किए। पच्चीस बोल, चर्चा, तेरह द्वार, बावन बोल आदि छोटे-बड़े 81 थोकड़े सीखे। उन्हें छोटे-बड़े बहुत से व्याख्यान कण्ठस्थ के साथ सैंकड़ों गीत, दोहे आदि भी अस्खलित रूप में याद थे। उनकी स्वाध्याय में विशेष रूचि थी। उनकी स्वाध्यायशीलता देखकर ऐसा लगता था कि 'सज्झायम्मि रओ सया' आगम सूक्त उन्होंने आत्मसात कर लिया था। इसी का सुपरिणाम था कि उन्होंने अपने जीवन में करोड़ों पद्यों का स्वाध्याय किया।

संघ में आचार निष्ठ, प्रकृति से भद्र और आत्मार्थिनी साध्वी के रूप में उनकी अच्छी पहचान बन गई। संघ और संघपति के प्रति उनका समर्पण हार्दिक था। उन्होंने ज्ञानध्यान त्याग विराग, सेवा भावना और तप:साधना से संयमी जीवन को अत्यधिक प्रभावशाली बनाया। उन्होंने लम्बी तपस्या नहीं कि फिर भी अच्छी तपस्या की। कहते हैं कि उन्होंने हजारों की संख्या में एकासन किए तथा दो हजार नौ सौ तिराणवे (2993) उपवास 49 बेले, 6 तेले और पांच चोले किए। उससे आगे तपस्या नहीं की। साध्वी पारवताजी अपनी अग्रगण्या साध्वी लिछमांजी के प्रति समर्पित और अनुकूल रही। वे विनय भक्ति के साथ अनवरत उनकी सेवा में तत्पर रहती। सं. 2001 में साध्वी लिछमांजी का स्वर्गवास होने पर आचार्य तुलसी ने साध्वी पारवताजी को अगवाणी बनाया। डालिम चरित्र में उनके दीक्षा प्रसंग पर आचार्यवर ने लिखा है -

छापर जाति नवलखा पारवतां भव-पार।
सिंघाडो तुलसी करयो, लिछमांजी री लार॥ डा. खं. 2, ढा. 10 गा. 33

अग्रगण्या बनते ही सहयोगिनी साध्वी दाखांजी पुर की वृद्धावस्था के कारण उन्हें सुजानगढ़ तीन वर्ष स्थिरवास करना पड़ा। उसके बाद 2014 से लेकर 2029 तक स्वयं की शारीरिक अक्षमता से वे चाडवास में स्थिरवासी रही। सोलह वर्षीय प्रवास का चाड़वास के भाई-बहिनों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वहां तत्व ज्ञान, संघीय संस्कारों के साथ साध्वीजी की प्रेरणा से विविध आयामी विकास हुआ।

सेवाभावना

वे सेवाभावी साध्वी थी। भयंकर रोग में अग्लान भाव से सेवा करना बहुत कठिन कार्य है। ऐसे क्षणों में अच्छे-अच्छे व्यक्तियों की कसौटी हो जाती है। रोगी के तन को अपना तन और मन दोनों समर्पित करने वाला व्यक्ति ही सेवा के रणक्षेत्र में विजयी बन सकता है। साध्वी पारवतांजी ने अग्लान भाव से सेवा कर उदाहरण प्रस्तुत किया।

साध्वी सिरेकंवरजी भगन्दर जैसे महारोग से ग्रसित थी। उनके शरीर से इतनी दुर्गन्ध आती कि दूर तक उनके पास रहना मुश्किल था। साध्वी पारवतांजी ने उनकी बड़ी तन्मयता से सेवा की। साध्वी रायकंवरजी चितामा, फेफांजी पहुना, चांदकंवरजी रतनगढ़ तथा शाकरजी ताल को दस्तों की शिकायत हो गई। एक रात में लगभग 30-50 दस्तें लग जाती। उन सबकी उन्होंने प्रसन्नता से आत्मीय भाव से सेवा कर आदर्श प्रस्तुत किया।

सं. 2001 की घटना है। साध्वी दाखांजी पुर के शरीर में असाध्य बीमारी हो गई। उनके शरीर में पहले सूजन आ गया। फिर रोम-रोम से पानी झरने लगा। पानी निकलने के बाद उनका सारा शरीर गृध्र विदीर्ण शव की तरह घावों से भर गया। कहीं-कहीं एक इंच, दो इंच गहरे घाव हो गए। साध्वी पारवतांजी ने ऐसी भयंकर रूग्णावस्था में सेवा कर महान निर्जरा की और तेरापंथ धर्मसंघ में सेवा के सन्दर्भ में कीर्तिमान प्रस्तुत किया। तीन वर्ष तक अपने आहार विहार निद्रा को गौण कर उन्होंने सेवा धर्म निभाया।

कष्ट सहिष्णुता

सं. 1974 में उनका चातुर्मास पादू गांव में था। उस समय वहां प्लेग की महामारी फैल गई। गांव के लोग गांव छोड़कर अन्यत्र जाने लगे। वहां की निर्भीक श्राविका थी हीरालालजी गटागट की मां। उन्होंने पुरुष वर्ग को सम्बोधित कर कहा-'आप सब चले

जाएं पर मैं साध्वियों को छोड़कर नहीं जाऊंगी।' कुछ समय पश्चात रोग ने ऐसा जाल बिछाया कि जीवित व्यक्तियों का वहां रहना दुभर हो गया। ऐसी स्थिति में सतियों को साथ लेकर श्रीमती गटागट गांव बाहर जंगल में जाकर टीनों का एक छपरा बनाया। आंगन के बीच खाई बनाकर उसे दो भागों में विभक्त किया। उन्होंने आधा भाग साध्वियों को दे दिया और आधे में स्वयं रह गई। रोग की भयंकरता बढ़ती ही जा रही थी। जंगल में भी उसने अपना प्रभाव दिखाना प्रारंभ कर दिया। वहां साध्वी पारवतांजी के पैर में गांठ हुई और एक दिन वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। उस हालत में वे मृत जैसी लग रही थी। इसलिए साध्वियों को लगा-वे दिवंगत हो गई। यह हालत लगभग 13 मिनट तक रही, फिर धीरे-धीरे श्वास आने लगा। उस विकट स्थिति में औषध आदि तो बहुत दूर, खाने के लिए रोटी और पीने को पानी भी नसीब नहीं होता। प्रतिदिन केवल एक पात्री पानी और दो रोटी तथा राब से छः साध्वियां पूरा दिन निकालती। ऐसी स्थिति में उन्होंने पूरे इक्कीस दिन बिताए। फिर रोग का उपद्रव थोड़ा कम हुआ, तब पुनः पादू गांव में सब साध्वियां गई और सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं कार्य प्रारंभ किया।

मैत्री का प्रयोग

सं. 2006 के आषाढ़ महीने में साध्वी पारवतांजी ने आडसर से कालू जाने के लिए विहार किया। शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे लम्बे विहार नहीं कर सकती थी। अतः एक रात झोंपड़ी में बितानी पड़ी। शाम को विहार कर झोंपड़ी में अपना सामान रखा। सूर्यास्त का समय था अचानक साध्वियों की दृष्टि झोंपड़ी के मध्य में खड़े काष्ट खण्ड के पास खोगाल में विषैला सांप दिखाई दिया। जिसे राजस्थानी में गोहीड़ा कहते हैं। साध्वियों ने भयभीत होकर साध्वी पारवतांजी से कहा - हमें तो भय लगता है, रात्रि के समय हम तो यहां नहीं रह सकती। साध्वी पारवतांजी ने साध्वियों का साहस बढ़ाते हुए कहा-अब सूर्यास्त होने वाला है, अन्यत्र जा सकें, उतना समय नहीं है। अब तुम निर्भय रहो। मंगलमंत्र का उच्चारण कर गुरुदेव के नाम का जप करो, विघ्न अपने आप चला जाएगा।

प्रतिक्रमण सम्पन्न कर सभी साध्वियां जप में बैठ रही थी, उससे पहले साध्वी पारवतांजी ने नाग को मंगलमंत्र सुनाया और सभी जप में बैठ गई। पूरी रात जप में बिताई, विषैला सांप निश्चल-सा ज्यों का त्यों बैठा रहा। कोई उपद्रव नहीं हुआ। साध्वियों ने सकुशल आगे के लिए प्रस्थान कर दिया।

श्रद्धा का चमत्कार

सं. 2027 की घटना है। साधवी पारवतांजी चाड़वास में स्थिरवास कर रही थी। एक दिन स्थानीय चोथोजी कुम्हार के पेट में भयंकर दर्द हुआ। अनेक उपचार करने के बावजूद पीड़ा कम नहीं हुई। रात्रि में अकस्मात उसे एक आवाज सुनाई दी-'तू इधर-उधर क्यों भटक रहा है, तपस्विनी साध्वी पारवतांजी की शरण ले, तेरी व्याधि बिल्कुल समाप्त हो जाएगी।'

दूसरे दिन दोपहर में वह साध्वियों के दर्शन करने गया, पर संकोचवश अन्दर नहीं गया। वह स्थान से बाहर पेट पकड़कर बैठ गया, कुछ समय पश्चात कार्यवश साध्वी धनकंवरजी मकान के बाहर गई, तब उन्होंने पूछा-कौन हो? कहां से आए हो? प्रत्युत्तर में कुम्हार भाई ने सारी रात बीती बता दी। साध्वी धनकंवरजी ने कहा-साध्वी पारवतांजी मकान में हैं, तुम दर्शन कर सकते हो। चोथोजी कुम्हार कुछ कहे, उससे पहले साध्वी धनकंवरजी ने उसकी बात साध्वीजी को बता दी और मंगल पाठ सुनकर चला गया। कहते हैं धीरे-धीरे उसके पेट का दर्द शान्त हो गया और पूर्ववत स्वस्थता का अनुभव करने लगा।

गुरु-आज्ञा पर ध्यान

आचार्यवर ने उनको सं. 2013 का चातुर्मास पाली करने का निर्देश दिया। साध्वीजी पाली के पास खैरवा से दूधवा पहुंची। उसी दिन भारी वर्षा के कारण नदी में पानी आ गया। अब पाली जाने का रास्ता नहीं रहा। साध्वियों के सामने समस्या आ गई। साथ में जितने श्रावक थे, उन्होंने निवेदन किया अब आप खैरवा पधार जाएं, लगता है चातुर्मास का सौभाग्य उनको मिलेगा। आचार्यवर को हम निवेदन कर देंगे।

साध्वी पारवतांजी ने कहा-जब तक समय का अवकाश है मैं पाली जाने का इन्तजार करूंगी। दूसरी बात यदि दूसरा रास्ता हो तो चक्कर लेकर भी जाना चाहूंगी।, क्योंकि गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना मेरा पहला कर्त्तव्य है। साध्वियां अपने ज्ञान ध्यान में लीन थी। सलक्ष्य आचार्यवर के नाम का जप प्रारंभ किया। संयोग की बात तीसरे दिन नदी में पानी का वेग कम हुआ, तब विहार कर साध्वियां पाली पहुंच गई।

अंतिम अनशन

साध्वी पारवतांजी को 40 वर्षों से पेट की एक नाड़ी में दर्द था। जिससे कब्ज

और पेट दर्द प्राय: बना रहता था। उन्होंने इन दोनों के साथ समझौता-सा कर लिया था। दर्द रहता, कब्ज रहती पर वे उसे शान्त भाव से सहन करती रही। 2029 में उनके स्वास्थ्य में विभिन्न प्रकार से उतार-चढ़ाव आए। आखिर फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को साढ़े ग्यारह बजे पूर्ण सजगता में अनशन ग्रहण किया। उस समय चाड़वास में मुनि श्री जीवणमलजी जसोल विराज रहे थे। उन्होंने साध्वीजी को तिविहार संथारा पचखाया।

बहुत वर्षों पूर्व सुजानगढ़ के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद गुलाबजी ने साध्वी पारवतांजी की कुण्डली देखकर कहा था कि-'साध्वीजी को अंतिम समय में संथारा आएगा। अंतिम समय में उनकी सहयोगिनी साध्वियों के अतिरिक्त साध्वियां रहेंगी।' साध्वियां सोच ही रही थी कि गुलाबजी की बात प्राय: सच होती है पर साध्वियों वाली बात कैसे फलित होती है? तभी बीदासर से साध्वी जतनकुमारीजी सरदारशहर तथा जयश्रीजी राजलदेसर चाडवास पहुंची। बीदासर में आचार्यवर विराज रहे थे, आने की सूचना नहीं थी, चाडवास से भी कोई संवाद नहीं गया, फिर कैसे अचानक साध्वियां आई? सबके मस्तिष्क में प्रश्न था। साध्वी जतनकुमारीजी ने बताया कि बीदासर निवासिनी लिछमांदेवी बांठिया को अपनी स्वर्गीया माताजी से साध्वी पारवतांजी के अनशन करने का आभास मिला। उन्होंने साध्वियों से निवेदन किया और वे उनकी बात पर विश्वास कर चाड़वास पहुंच गई।

चाड़वास के श्रावकों ने आचार्यवर को जब अनशन के समाचार निवेदन किए आचार्य वर ने मूल्यवान सन्देश दिया, जो उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व को प्रस्तुत करता है। उनका अविकल रूप इस प्रकार है। संदेश की भाषा राजस्थानी है।

साध्वी पारवतांजी रै प्रति म्हारै मन में सदा ऊंचो स्थान रह्यो है। बै बहुत गहरा, पुराणी बातां रा जाणकार, संजम-समाचारी में सावधान और गण गणी रा खेरखवा है। बांरी हाड़ हाड री मींजा भिक्षु शासन रै रंग में रंगीज्योड़ी है। लगभग 16 वर्षां रै स्थिरवास में चाड़वास खेत्तर नै चोखो परोट्यो, जठै भी रह्या चोखी शोभा ली।

साध्वी पारवतांजी बीमारी री वेदना नै बड़ी शांति और समभाव सूं सहन कर रह्या है। वेदना तो देही रो धर्म है, मनै आ जाणकर बड़ी खुशी हुई कि बै संथारो पचख दियो, बांको मनोबल बहुत ऊंचो है। म्हारै दिल री आ कामना है कि बै परिणामां री चढ़ती श्रेणी में आपको काम फतह करसी। सगला सत्यां बांरी तन-मन स्यूं अग्लान सेवा कर रहा है। सेवा तेरापंथ शासन री खूबी है।

आचार्य तुलसी

4 मार्च, 1963

उपरोक्त संदेश जब साध्वी पारवतांजी ने सुना, उनका पोर-पोर खिल उठा। रोम-रोम से आनन्द की धारा बहने लगी। वे बन्द आंखों से ही बार-बार वन्दना करने लगी। सामने खड़ी साध्वियों को उनके हाव-भाव देखकर लगा जैसे आचार्यवर उनके सामने ही खड़े है। एक साध्वी ने पूछा-क्या अपको आचार्यवर दिखाई दे रहे हैं? उनका उत्तर था - हां। क्या आयुष्य का बंध हो गया है? उन्होंने पांच उंगलियां उठाकर पांचवें देवलोक का संकेत किया। इन दोनों प्रश्नों के सन्दर्भ में अनुमान किया जा सकता है कि आंतरिक निर्मलता से प्रातिभ ज्ञान जैसी सहज स्थिति बन गई। उसके बाद वे निश्छल निष्कंप बनी सात घंटे तक कायोत्सर्ग की मुद्रा में लेटी रही। संवत् 2029 फाल्गुन शुक्ला एकम की सात बजकर पैंतालीस मिनट पर समाधि मरण को प्राप्त हो गई।

14. साध्वी श्री सोनांजी (सरदारशहर) (674)

साध्वी सोनांजी का जन्म सं. 1932 माघ शुक्ला सप्रमी को सोनपालसर गांव में हुआ। सोनपालसर गांव सरदारशहर के आस-पास था। उनके पिता का नाम भेरूंदानजी तथा मां का नाम लक्ष्मीदेवी सेठिया था। बालिका सोना जब गर्भ में थी तब की घटना है। एक दिन उनके पिता भेरूंदानजी सामायिक में ध्यान कर रहे थे। अचानक एक सर्प उनके दाहिने हाथ पर आकर बैठ गया। वे निश्चल शांत भाव से बैठे रहे। उन्होंने ध्यान की स्थिति को अविचल भाव से बनाए रखा। जब किसी कार्यवश लक्ष्मीदेवी उस कमरे में आई, उनकी आहट से सर्प चौंका और भेरूंदानजी को बिना काटे धीरे-धीरे शरीर से नीचे उतरा और चला गया। परिवार के लोगों ने इस घटना को गर्भस्थ जीव की पुण्यवत्ता का चमत्कार माना।

विवाह और वैधव्य

बालिका सोना जब मात्र तेरह वर्ष की थी। तब सं. 1945 में सरदारशहर निवासी शेरमलजी बोथरा के द्वितीय पुत्र प्रेमचन्दजी के साथ उनका विवाह कर दिया। समयान्तर से उनके दो संतान हुई-एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम शोभाचन्दजी था। उनका 28 वर्ष की अवस्था में देहांत हो गया। शादी के नौ साल बाद सोनादेवी को भारी विपदा का सामना करना पड़ा। सं. 1954 में भेरूंदानजी परदेश जाकर पुन: गांव की ओर लौट रहे थे, रास्ते में अचानक उनका देहान्त हो गया। उस समय सोनादेवी अवस्था मात्र 21 वर्ष की थी। उन्होंने इस भयंकर आघात को बड़े धैर्य के साथ सहन किया और समय पर साहस का परिचय दिया। उसी दिन उनके मन में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो गए और आंखों के सामने संसार की नश्वरता घूमने लगी। वे सरदारशहर में साधु साध्वियों के पास जातीं और उनसे ज्ञान ध्यान सीखती, सामायिक, संवर तथा तप करती हुई आत्माराधना में तत्पर हो गई। संकल्प की आंच में वैराग्य का घट जब पक गया तब उन्होंने अपनी भावना अपने जेठ गिरधारीलालजी के सामने व्यक्त की। उन्होंने तत्काल छोटे बच्चों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कुछ समय तक इंतजार करने के लिए कहा। सोनांजी ने विनम्रता के साथ कहा-मैं यदि कुछ समय ठहर भी जाऊंगी तो क्या होगा? ये बच्चे आपके हैं। इन पर मेरा नहीं आपका ही अधिकार है। इनके पिताजी भी इन पर अपना अधिकार नहीं रख पाए फिर मैं....। सोनांजी के अन्तस से निकले उपरोक्त वाक्यों ने गिरधारीलालजी को प्रभावित किया। वे दीक्षा के लिए सहमत हो गए और अन्य सभी अभिभावकों को भी दीक्षा-

कार्यक्रमों में सहयोगी बनाया। सोनांजी ने पतिवियोग के पश्चात अपने नववर्षीय पुत्र को छोड़कर सं. 1962 भाद्र पद कृष्णा 13 को लाडनूं में आचार्य श्री डालगणी के कर-कमलों से दीक्षा ग्रहण की।

गुरुकुलवास : गुरु का अनुग्रह

साध्वी सोनांजी को गुरु-कृपा से गुरुकुल में रहने का सौभाग्य उपलब्ध हुआ। वे साध्वीप्रमुखा जेठाजी के पावन सान्निध्य में ज्ञानदर्शन की आराधना करती हुई विकास के पथ पर बढ़ने लगी। उनकी आचारकुशलता, विनय-नम्रता, भद्रता और कार्यकुशलता में साथ रहने वाली छोटी-बड़ी सभी साध्वियों को प्रभावित किया। वे गुरु दृष्टि की आराधना में बड़ी निपुण थी और सेवा के लिए सदैव तत्पर रहती। वे आचार्यवर के साथ रहने वाले रूग्ण, ग्लान तथा बाल नवदीक्षित साधु साध्वियों की परिचर्या भी जागरूकता से करतीं। उन्हें अष्टमाचार्य कालूगणी के युग में 27 वर्ष तथा आचार्य तुलसी के युग में आठ साल कुल 35 साल तक आचार्यश्री तथा रूग्ण साधु-साध्वियों की सायंकालीन गोचरी करने का मूल्यवान अवसर मिला। उस समय तेरापंथ धर्मसंघ में प्रथम प्रहर की गोचरी नहीं होती थी। बहुत छोटी अवस्था में दीक्षित बाल साधुओं का प्रातराश (नाश्ता) वे लेकर आतीं। आचार्य तुलसी जब दीक्षित हुए साध्वी सोनांजी बाल साधुओं के लिए प्रातः नाश्ता लाया करती थी। आचार्य तुलसी कई बार इस बात का उल्लेख करते थे।

सं. 2016 में आचार्यश्री तुलसी पडिहारा पधारे। साध्वी सोनांजी उपासना कर रही थी। आचार्यश्री ने अतीत का स्मरण करते हुए कहा-सोनाजी! बचपन में तो तुम ही हमारे खाने-पीने का ध्यान रखती थी तथा प्रातः के समय जब मैं दूध-दलिया नहीं खाता, तब तुम कितना आग्रह करतीं। सुबह का नाश्ता आज भी नहीं करते हैं, पर अब कोई कहने वाला नहीं है। साध्वी सोनांजी ने करबद्ध निवेदन किया-गुरुदेव! आप सिरावण करते ही नहीं थे।

वे गुरुकुलवास में 45 वर्ष रही। गुरु की इंगित आराधना के साथ सेवा समर्पण भाव से उन्होंने आचार्यों का विशेष अनुग्रह प्राप्त किया। तीन आचार्यों के शासन-काल में श्रम, सेवा, सहयोग की त्रिवेणी में निमज्जित रहने वाली साध्वी सोनांजी को आचार्य तुलसी ने विविध बख्शीशें की।

1. सं. 1993 में समुच्चय के वजन की बख्शीश की।

2. सं. 1999 में श्री डूंगरगढ़-मर्यादा महोत्सव के दिन समुच्चय के काम की बख्शीश की।

3. सं. 2001 सुजानगढ़ में पांच हजार गाथाएं बख्शीश की।

4. सं. 2016 में सायंकालीन उष्ण आहार की बख्शीश की।

तपस्या की अभिरुचि-

साध्वी सोनांजी में तपस्या की सहज रुचि थी। बचपन से ही तपस्या के प्रति उनका गहरा लगाव था। उन्होंने गृहस्थावास में भी बहुत तप किया, उसका विवरण निम्न प्रकार से है-

उपवास	–	306	सात	–	1
बेला	–	250	आठ	–	2
तेला	–	5	दस	–	1
चोला	–	1	ग्यारह	–	1
पंचोला	–	1	बारह	–	1
छह	–	1	सतरह	-	1

इसके अतिरिक्त नवकरवाली के 108 उपवास प्रदेशी राजा के 12 बेले, चौबीस तीर्थंकरों की लड़ियां 300 उपवास तथा धर्मचक्र तप किया।

साध्वी अवस्था में-

उपवास	–	5033	आठ	–	1
बेला	–	433	नौ	–	2
तेला	–	229	दस	–	1
चोला	–	49	ग्यारह	–	1
पंचोला	–	7	बारह	-	1
छह	–	2	अठारह	-	1
सात	–	1	उन्नीस	-	1

उनकी तपस्या के कुल दिन 6928 हैं, जिनके 19 वर्ष 2 महीने 28 दिन होते हैं। उन्होंने अपने जीवन में अनेक प्रकार के प्रत्याख्यान कर अपनी अध्यात्म चेतना को पुष्ट

किया। उन्होंने कुछ विशिष्ट संकल्प भी किए। जैसे -

तीन विगय से अधिक न खाना।

प्रतिदिन पन्द्रह द्रव्यों से अधिक न खाना।

लौंग, सौंठ, ब्राह्मी की वटी आदि 25 प्रकार की साधारण औषधि से अधिक न लेना।

होमियोपैथी तथा ऐलापैथिक दवा न लेना।

त्याग के प्रति उनके मन में इतनी दृढ़ता थी कि भीषण बीमारी की अवस्था में भी इन औषधियों का सेवन करना उन्हें मंजूर नहीं था। जीवन की अंतिम घड़ियों में श्वास (दमा) डबल निमोनिया का तीव्र प्रकोप हो गया पर उन्होंने ऐलौपैथिक गोली, इंजेक्शन आदि का उपयोग नहीं किया। कसौटी के उन क्षणों में भी वे अपनी प्रतिज्ञा पर खरी उतरी।

कंठस्थ ज्ञान

साध्वी सोनांजी श्रुत की आराधना जागरूकता से करतीं। उस समय कंठस्थ ज्ञान की परम्परा बड़ी समृद्ध थी। अक्षर ज्ञान के अभाव में साध्वियां सैंकड़ों हजारों गाथाएं सहजता से याद कर लेती थीं। साध्वी सोनांजी ने भी थोकड़े, व्याख्यान, गीत आदि हजारों-हजारों गाथाएं कंठस्थ थी। उनकी स्मरण शक्ति व धारणाशक्ति तेज थी। यही कारण था कि वे कंठस्थ ज्ञान की उनको अन्तिम समय तक विस्मृति नहीं हुई। वे प्रतिदिन हजारों गाथाओं का स्वाध्याय करतीं तथा तीन घंटा मौन और एक घंटा ध्यान करतीं।

पड़िहारा सोना बना

साध्वी सोनांजी दीक्षित होने के बाद 45 वर्ष तक (1961 से 2005) गुरुकुलवास में रही। उन्होंने तीन आचार्यों की सेवा का अवसर मिला। वे साझ की अधिकारिणी बनीं। आचार्य तुलसी ने 2006 में लम्बी यात्राएं प्रारंभ की, तब वृद्धावस्था के कारण वे सात वर्ष थली में विहरण करती रहीं। उसके बाद पडिहारा में वे स्थिरवासी बन गई। उन्होंने सौलह वर्ष पडिहारा में स्थिरवास किया। उनके इस सुदीर्घ प्रवास काल में पड़िहारा श्रावक समाज में धर्म की आस्था के साथ-साथ आर्थिक सम्पन्नता की भी अभिवृद्धि हुई। साध्वीजी की त्याग वैराग्य भावना का भी लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वे आज भी कहते हैं-साध्वी सोनांजी ने पड़िहारा को द्रव्य-भाव दोनों दृष्टियों से सोनामय बना दिया।

साध्वी सोनांजी का व्यक्तित्व अनेक गुणों का समन्वय था, जिससे तेरापंथ धर्मसंघ में उन्होंने गौरवशाली स्थान प्राप्त किया। वे अपने दायित्व के प्रति सजग थी। श्रम निष्ठा के साथ-साथ कर्त्तव्यनिष्ठा के संस्कार उनमें कूट-कूटकर भरे थे। कर्त्तव्य के सामने वे अपने शारीरिक अस्वस्थता की भी परवाह नहीं करतीं।

सं. 1970 की बात है। अष्टमाचार्य कालूगणी का मारवाड़ के आषाढा गांव में प्रवास था। वहां साध्वी सोनांजी एक दिन अचानक पत्थर की ठोकर खाकर गिर पड़ीं, जिससे उनके पैंर में काफी चोट आई। प्राथमिक उपचार किया पर उस समय वे चल नहीं सकी। उस समय उन्हें दर्द की चिन्ता नहीं थी, पर वे समुच्चय की गोचरी उस समय नहीं जा सकी, यह उनके लिए असह्य था। दिनभर वे बैचेन रही। शाम को थोड़ा-सा दर्द कम हुआ और वे अपनी ड्यूटी में सम्पृक्त बन गई। ज्योंही गोचरी लेकर आचार्यवर के उपपात में पहुंची। पूज्य कालूगणी ने कहा-इतने दर्द में गोचरी क्यों गई?

वहां उपस्थित साध्वीश्री झमकूजी ने कहा-गुरुदेव! इनका विश्वास यह है कि अपना गोचरी का काम करने से ही ठीक होऊंगी, अन्यथा ये बेचैन-सी बन गई। आचार्यवर ने कर्त्तव्यनिष्ठा की सराहना करते हुए कहा-सोनांजी के मन में गुरु के प्रति भक्ति है और अपने करणीय कार्य के प्रति निष्ठा है।

उनमें श्रमनिष्ठा के भाव 80 वर्ष की अवस्था में भी वैसे ही थे, भले शरीर से वे असमर्थ हो गईं। सं. 2023 में आचार्य तुलसी मध्याह्नोपरांत पड़िहारा पधारे। दिन कम था, गोचरी लेकर साध्वियां पहुंची नहीं थी। साध्वी सोनांजी को उस समय कैसा-कैसा ही लग रहा था। उन्होंने निवेदन किया-गुरुदेव! मन करता है दौड़ी दौड़ी जाऊं और गोचरी करके आपको आहार कराऊं पर तन का पहले जैसा सहयोग नहीं रहा।

आचार्यवर उनके अतीत की स्मृति कर मुस्कराने लगे और पूछा-सोनांजी! तुमने गोचरी कितने वर्षों तक की है। उनके साथ वाली साध्वियों ने बताया-गुरुदेव! सोनांजी ने सत्तर (70) वर्ष की अवस्था तक नियमित गोचरी की। 80 वर्ष की अवस्था तक विहार किया। अब वे 90 वर्ष के हैं पर इनका उत्साह वैसा ही जैसा यौवन में था।

निड़र एवं निर्भीक मनोवृति

साध्वी सोनांजी निर्भीक मनोवृति की साध्वी थी। वे आचार्य के उपयोग आने वाले पात्रों की रंगाई किया करती थी। वे रंगाई सिलाई की कला में कुशल थी। आचार्य

तुलसी का राजलदेसर चातुर्मास था। आचार्यश्री नाहर भवन में थे और साध्वियां संतोकचंदजी बैद की हवेली में थी। एक दिन साध्वी सोनांजी छत पर बैठी तासक के रोगान लगा रही थी। उस समय उनके सिर का पल्ला नीचे गिर गया। उसी समय एक वरिष्ठ सन्त अपने किसी कार्यवश अपने मकान की छत पर गए और साध्वीजी को खुल्ले सिर बैठे देखा। यह उन्हें अच्छा नहीं लगा। यद्यपि वे पहचान नहीं पाए थे कि साध्वी कौन है? उन्होंने आकर आचार्यवर से सतियों की शिकायत की। आचार्यवर ने साध्वीप्रमुखा झमकूजी से पूछताछ की। साध्वीप्रमुखाजी ने कहा-गुरुदेव! जानकारी करूंगी। उसी समय साध्वी सोनांजी गोचरी लेकर वहां पहुंच गई। उन्होंने बात सुनी और कहा-गुरुदेव! मैं थी। आचार्यश्री ने पूछा-ऐसे कैसे बैठी?

उन्होंने निर्भीकता से कहा-गुरुदेव! पल्लू नीचे गिर गया और मेरा हाथ रोगन से सना था। यदि मैं उस समय हलचल करती तो रोगान खराब हो जाता.....। आस-पास खड़े साधु साध्वियां जहां आचार्यवर से मिलने वाले उपालंभ से भयभीत थे, साध्वी सोनांजी निर्भय थी। आचार्यवर को उनकी सहज सरलता तथा निर्भयता ने प्रभावित किया। आचार्य तुलसी के तेजस्वी अनुशासन के सामने स्वयं को यों प्रस्तुत करना सरल बात नहीं थी, पर साध्वी सोनांजी के साहस ने जो किया वह असाधारण था।

अन्तिम अनशन-

सं. 2027 चैत्र शुक्ला द्वितीया को साध्वी सोनांजी को हल्का-सा बुखार आया और उसने टाइफाइड का रूप ले लिया। एक ओर टाइफाइड में कफ तथा श्वास का प्रकोप बढ़ गया, दूसरी ओर वृद्धावस्था और ऐलोपैथिक दवा का त्याग होने से शारीरिक स्थिति जटिल बन गई। फिर भी उनके मन में पूर्ण समाधि थी। उन्हीं दिनों मुनि चन्दनमलजी पड़िहारा पधारे। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा- 'आचार्यवर के एक बार दर्शन हो जाए यह मेरी उत्कृष्ट अभिलाषा है, पर स्वास्थ्य की स्थिति ठीक नहीं लगती, इसलिए जब भी अवसर देखें मुझे संथारे के बिना मत जाने देना।'

मुनिश्री ने कुछ दिन पड़िहारा में प्रवास किया और विहार कर दिया। क्योंकि साध्वी सोनांजी की स्थिति पूर्ववत स्थिर थी। कुछ दिनों पश्चात मुनिश्री कानमलजी का पड़िहारा आना हुआ। साध्वी सोनांजी ने अपनी स्थिति का सम्यक् आकलन कर चतुर्विध धर्मसंघ के सामने आत्मलोचन किया तथा सबसे खमत खमणा कर अपने आपको निर्मल

किया। आखिर सं. 2027 चैत्र शुक्ला 3 को ग्यारह बजकर 10 मिनिट पर पूर्ण समाधि पूर्वक उन्होंने पण्डित मरण प्राप्त किया। उन्होंने 95 वर्ष की दीर्घतर आयु में हर वर्ष संयम पर्याय का पालन कर अपने जीवन को धन्य बना दिया।

साध्वी प्यारांजी (पुर) लगभग 40 वर्ष तक उनके साथ रही तथा साध्वी लाधूजी 32 साल, साध्वी संतोकांजी 29 वर्ष तथा रतनकंवरजी ने 24 वर्ष तक उनके पास रहकर आत्मीय भाव से सेवा की।

संघनिष्ठ सेवाभावी

आचार्य तुलसी ने सोनांजी के सम्बन्ध में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा– साध्वी सोनांजी हमारे धर्मसंघ की सेवाभावी साध्वियों में से एक थीं। वर्षों तक वे गुरु–सेवा में रही। यहां रहकर उन्होंने जो सेवा की, वह धर्मसंघ के लिए चिर स्मरणीय रहेगी। गुरु–दृष्टि को समझने का उनका गुण अनुकरणीय था। वे प्रकृति से भद्र और विनीत थीं। लगता है उनके जीन में कुछ ऐसी विरल विशेषताएं थीं, जो यत्र तत्र दुर्लभ थीं। व्यक्ति चला जाता है किंतु अपनी विशेषतओं का ही इतिहास रहता है। मुझे प्रसन्नता है कि पडिहारा मे लगभग 16 वर्ष तक स्थिरवास करके उन्होंने समाधिमरण प्राप्त किया। समाधि मरण से बढ़कर साधु के लिए प्रसन्नता का विषय ओर क्या हो सकता है।

सं. 2033 फाल्गुन शुक्ला 2 कालू जन्म शताब्दी समारोह की विशाल परिषद् में आचार्य तुलसी ने संघ के कुछ साधु साध्वियों को 'संघनिष्ठ सेवाभावी' के रूप में याद किया। उनमें एक थीं साध्वी सोनांजी।

15. साध्वी सुन्दरजी (तारानगर) (683)

साध्वी सुन्दरजी नोहर निवासी कुशलचंदजी नखत की पुत्री थी। उनका जन्म सं. 1941 चैत्र शुक्ला ग्यारस को विहार केनरिया गांव में हुआ। आकृति से वे अत्यधिक सुन्दर थी, इसलिए उनका नाम सुन्दर रखा। इनके पांच बहिने और एक भाई था। बालिका सुन्दर जब बहुत छोटी थी, एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि यह लड़की योगिनी बनेंगी। माता-पिता ने साध्वी न बन जाए इसी भय से उनका विवाह 13 वर्ष की अवस्था में ही कर दिया। उनका ससुराल तारानगर में था। उनके पति का नाम था सुगनचंदजी सुराणा। विवाह करना तो माता-पिता के अधिकार में अथवा हाथ में था, पर संयोग और वियोग की डोर किसी के हाथ में नहीं होती। नियति का चक्र जब चलता है वह क्या-क्या दिखालाता है कहा नहीं जा सकता है।

बालिका सुन्दर के दिन भी खुशियों मे रंगीले बीत रहे थे, पर अचानक संवाद मिला कि सुगनचंदजी काल कलवित हो गए। उस समय उनकी अवस्था मात्र 17 वर्ष की थी। पति के साथ ही जिन्दगी के सारे रंग बिखर गये और जीने की सार्थकता सदा-सदा के लिए समाप्त हो गई। विधि के सामने सब निरुपाय हैं। जीवन के नये-नये अर्थ ढूंढ़ने का प्रयास कर रहे थे।

सुन्दरजी उस समय तक धर्म से अनभिज्ञ थीं। उन्होंने जैन मुनियों को तब तक नहीं देखा था। सं. 1960 में तेरापंथ के सप्तमाचार्य डालगणी का तारानगर मे पर्दापण हुआ। अपनी सास के साथ पहली बार उन्होंने आचार्यवर के दर्शन किए। सं. 1961 में साध्वी श्री नन्दूजी का चातुर्मास डालगणी ने तारानगर करवाया। साध्वियों का वह चौमासा सुन्दरजी के लिए वरदान बनकर आया। सुन्दरजी ने साध्वियों का निकट सान्निध्य प्राप्त तेरापंथ धर्मसंघ की रीति, नीति, परम्परा और व्यवस्था की जानकारी प्राप्त की। उनकी प्रेरणा से तपस्या के क्षेत्र में पहला कदम रखा और उपवास आदि तपस्या के साथ अठाई तप किया। उन्होंने प्राथमिक ज्ञान कंठस्थ किया। उनके मन पर धीरे-धीरे वैराग्य का गुलाबी रंग चढ़ने लगा। उन्होंने अपने श्वसुर पक्ष वालों के सामने वैराग्य भावना को छिपाए रखा। कुछ समय पश्चात् वे ससुराल से पीहर गई और अपने अभिभावकों के सामने दीक्षा लेने का संकल्प व्यक्त किया। माता-पिता को अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने उनको कसौटी पर कसने का प्रयत्न किया।

एक बार परिवार के सभी सदस्य उन्हें एक कोठरी में बन्दकर कहीं बाहर चले

गये। वे एक दिन-रात भूखी प्यासी उसी में बैठी रही पर उनका धैर्य विचलित नहीं हुआ। यद्यपि परिवार वालों ने यही सोचा था कि कष्टों से घबराकर दीक्षा लेने की चर्चा ही समाप्त कर देंगी। पर परिणाम दूसरा निकला। उनकी वैराग्य भावना कष्टों की आग में अधिक प्रखर बनती गई। दूसरी बार जब उन्हें पुनः कोठरी में बंद किया गया। वे जप में लीन थी, अचानक अज्ञात ध्वनि उनके कानों से टकराई-'तुम्हारी दीक्षा दो साल बाद होगी।' दीक्षा में होने वाले विलम्ब को अपने अंतराय का योग मानकर वे धैर्य से अपनी साधना में लीन रहने लगी। इन दो वर्षों में वैराग्य वृद्धि के विविध प्रयोगों के माध्यम से साधना करती हुई सुन्दरजी ने परिवार जनों को विश्वास दिला दिया कि उन्हें संकल्प की धूरी से कोई हिला नहीं सकता। परिवार के सभी सदस्यों ने सहर्ष दीक्षा की स्वीकृति देकर कृतार्थता का अनुभव किया।

दीक्षा-शिक्षा और निर्माण

सं. 1963 कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन आचार्य श्री डालगणी के कर-कमलों से सरदारशहर में सुन्दरजी ने दीक्षा ग्रहण की। आचार्य तुलसी ने डालिम चरित्र में लिखा है-

सुन्दर रीणी, पीहर नोहर नखतां कै।
कार्तिक पूनम सद्गुरु शुभ निजरां झांकै। डालिम चरित्र पृ. 145

दीक्षित होने के पश्चात् साध्वी सुन्दरजी को छः वर्ष तक गुरु सान्निध्य में रहने का अवसर मिला। उसके बाद वे साध्वी छगनांजी (रासीसर) के सिंघाड़े में रही। उन्होंने चार आगम दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी और आचारांग कंठस्थ किए। उन्होंने अनेक अनेक थोकड़े और लगभग 45 छोटे-बड़े व्याख्यान याद किए।

साध्वी सुन्दरजी एक जिम्मेदार और सेवाभावी साध्वी थीं। वे जब तक साध्वी छगनांजी के साथ रही पूर्ण समर्पण भाव के साथ रहीं। सं. 1981 में साध्वी छगनांजी का विलक्षण संथारे में स्वर्गवास हो गया। तब अष्टमाचार्य कालूगणी ने साध्वी सुन्दरजी को अग्रगण्य बना दिया। उन्होंने लगभग छत्तीस वर्ष तक देश के विभिन्न प्रांतों में जाकर धर्म का प्रचार प्रसार किया तथा धर्मसंघ की प्रभावना की। उनकी समझाने की कला बहुत अच्छी थी। वे जहां भी जाती अपना अच्छा प्रभाव छोड़ती। उन्होंने अपने जीवन काल में लगभग 1800 भाई-बहिनों को गुरु मंत्र दीक्षा प्रदान की। उन्होंने 300 व्यक्तियों को बारह व्रती, 400 सम्पूर्ण अणुव्रती तथा हजारों व्यक्तियों को प्रवेशक अणुव्रती बनाया। उन्होंने

अपने जीवन काल में 25 भाई और 8 बहिनों का अनशन कराने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

विवेक सम्पन्न साध्वी

साध्वी सुन्दरजी विवेक सम्पन्न साध्वी थीं। समय-समय पर वे साहस का परिचय देती और संघीय प्रभावना को कभी कम नहीं होने देती। एक बार वे गंगापुर में प्रवास कर रही थी। वे गोचरी के लिए गईं। एक स्थानकवासी बहिन जिसका नाम था दाखी बाई। साध्वीजी उनके घर भी भिक्षा लेने के लिए गई। साध्वीजी की झोली में एक हरे रंग की बड़ी टोपसी थी। दूर से उस टोपसी को दाखी बाई ने देखा और उन्हें छोटी मतीरी का भ्रम हो गया। दाखी बाई ने सारे गांव में अफवाह फैला दी कि तेरापंथी साध्वियों की पात्री में अभी-अभी मैंने मतीरी देखी है। तेरापंथी श्रावकों ने जब यह बात सुनी तो उसकी प्रामाणिकता समझने का प्रयास किया। कुछ जिम्मेदार श्रावक उस बहिन को लेकर साध्वियों के पास पहुंचे और वह जो अफवाह फैला रही थी, उसी सन्दर्भ में बात करने के लिए कहा। दाखी बाई ने स्पष्ट शब्दों में कहा-आप अभी गोचरी में मतीरी बहरकर लाई थीं। मैंने आपकी पात्री में देखा है। क्या आपको वह कल्पता है?

साध्वी सुन्दरजी ने निर्भयता के साथ बोली-हमने गोचरी में मतीरी नहीं बहरी।

दाखी बाई सुनते ही उत्तेजित हो गई और कहा-आप नहीं कैसे कह सकतीं हैं। मैने आपनी आंखों से आपकी पात्री में मतीरी देखी है। बात करते-करते वह बहिन इधर-उधर नजर पसार रही थी। अचानक उसकी आंखे उसी टोपसी पर जा टिकी, जिसको उसने साध्वीजी की पात्री में मतीरी माना था। तत्काल अंगुली से संकेत करते हुए वह बोली-देखो। वह मतीरी पड़ी है।

साध्वी सुन्दरजी ने टोपसी को हाथ में लेते हुए कहा-क्या यह मतीरी है? यह तो हरे रंग की बड़ी टोपसी है, जो साध्वियों ने अपने हाथों से बनाई है। यह बड़े नारियल की है और हरा रंग के साथ वार्निश किया गया है।

साक्षात देखकर और हकीकत जानकर दाखी बाई शर्मिन्दा हो गई और वहां से उठकर चली गई।

सं. 1994 में राजनगर चातुर्मास के पश्चात साध्वी सुन्दरजी विहार कर रही थी। एक बार वे जंगल से गुजर रही थी अचानक चार डाकुओं ने उनको घेर लिया। डाकुओं

ने साध्वियों से पूछा-तुम कौन हो? मुंह पर पट्टी क्यों लगाई है?

साध्वी सुन्दरजी ने कहा-हम जैन साध्वियां हैं और मुंह पर पट्टी बांधना हमारी परम्परा है।

सुनते ही एक डाकू बोला-बस-बस रहने दो, हमने बहुत सुने हैं तुम्हारे सिद्धान्त। तुम्हारे पास जो सामान है वह दे दो वरना गोली से उड़ा देंगे।

साध्वी सुन्दरजी ने एक साध्वी किस्तुरांजी को ठहरने का संकेत कर अन्य तीन साध्वियों को अगले गांव की ओर भेज दिया। साध्वीजी ने डाकुओं को समझाते हुए कहा-आप लोग क्या चाहते हैं। हम जैन साध्वियां हैं, हम पैसे और धन नहीं रखते।

तभी एक डाकू बोला-तुम्हारे पास है क्या?

साध्वियों ने कहा-हमारे पास हमारे पढ़ने के लिए पुस्तकें हैं तथा काष्ठ के पात्र हैं, जिनमें हम मांगकर भिक्षा लाते हैं। साध्वियों ने पात्र और पुस्तकें खोलकर दिखा दी। फिर भी उन पर कोई असर नहीं हुआ। तब साध्वियां उच्च स्वर में परमेष्ठी महामंत्र का जप करने लगी। लयबद्ध जप की ध्वनि का ऐसा प्रभाव हुआ कि डाकू घबराते हुए बोले-साध्वीजी! आप इस मंत्र से हमको खत्म मत कर देना। आपको हमें कुछ नहीं कहना है, अब आप जाओ।

साध्वी सुन्दरजी ने साहस के साथ कहा-मैं चाहती हूं कि आप किसी भी साधु-साध्वी को इस प्रकार कोई कष्ट नहीं देंगे।

उपायज्ञ साध्वी

सं. 1997 का प्रसंग है। वे विहार करती-करती मीठड़ी नामक गांव में गईं। वहां वे मंदिर में ठहरी। पुजारी के लड़के ने साध्वियों की हस्तलिखित दो पुस्तकें चुरा ली। साध्वियों ने पुस्तकों को इधर-उधर खूब ढूंढ़ी, पर पुस्तकें नहीं मिली। साध्वी सुन्दरजी ने हिम्मतकर पुजारीजी से बात कर पुस्तकें गुम होने की बात कही। पुजारीजी ने बच्चों से पूछताछ की, तो सब इन्कार हो गए।

साध्वियों का मन पुस्तकें नहीं मिलने से खिन्न हेा गया। साध्वी सुन्दरजी ने कहा-सब बैठी बैठी क्या करती हो, स्वामीजी के नाम का जप करो। साध्वियों ने उदात्त स्वर में भिक्षु स्वामी का जप शुरू किया। पूरे घर में जप की स्वर लहरी गूंज उठी। पुजारी

ने सोचा-ये सब मिलकर मंत्र जप कर रही हैं, इससे कहीं हमारा नुकसान नहीं हो जाए। वह मन ही मन घबरा उठा। तत्काल दोनों पुस्तकें साध्वियों के सामने रखते हुए बोला- बच्चे भूल से ले गए। साध्वी सुन्दरजी को उपजी समय की सूझ काम आ गई।

सेवाभावना

साध्वीजी ने अपनी अग्रगण्या साध्वी छगनांजी की सेवाकर आत्मतोष का अनुभव किया और जब भी संघीय सेवा का अवसर आता प्रसन्नता का अनुभव करतीं। जब कभी एक गांव में अधिक साध्वियां एकत्रित हो जाती, वे गोचरी के लिए और पानी के लिए दो-दो कोस चली जाती। ऐसा करने के लिए उत्साह से सदा प्रथम पंक्ति में खड़ी रहती। एक बार साध्वी अजबूजी (गंगापुर) रास्ते में चलते-चलते शारीरिक व्याधि के कारण रुक गई। तब साध्वी सुन्दरजी उन्हें लगभग 16 माइल कन्धों पर उठाकर लाडनूं लाई।

वे मौन बहुत करती थीं। 23 वर्ष तक प्रतिदिन रात्रि में वे तीन प्रहर मौन करती और दिन में 2 घंटा मौन रखती। उन्होंने अपने जीवन में उपवास से लेकर नौ दिन तक की तपस्या की। उनकी तपस्या के कुल दिन 1459 हैं। विस्तार से जानना चाहें तो उन्होंने

उपवास	–	1281	छह	–	1
बेला	–	25	सात	–	1
तेला	–	15	आठ	–	1
चोला	–	7	नौ	–	1
पंचोला	–	5			

अन्तिम अवस्था : बीमारी और अनशन

साध्वी सुन्दरजी का समग्र संयमी जीवन 55 का रहा। उसमें शारीरिक वेदना तथा अन्यान्य कष्टों ने समय-समय पर उनकी अच्छी कसौटी की। सं. 2017 में उनका चातुर्मास भीनासर था। वहां उनके दांत में दर्द हो गया। डॉक्टरी परामर्श से दांत निकलवाए पर उसी दिन से गले में दर्द प्रारंभ हो गया। वह पीड़ा धीरे-धीरे बढ़ने लगी और सम्पूर्ण निदान के बाद डॉक्टरों ने कैंसर की असाध्य बीमारी बताई। बीमारी ने बड़ी तेजी से भंयकर रूप धारण कर लिया। गले में घाव हो गया और खून गिरने लगा। घाव दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। उसका फैलाव गले के बाहर तक हो गया। घाव की लम्बाई ढाई इंच और चौड़ाई डेढ़ इंच हो गई। घाव में छिद्र हो गए। खाना-पीना लगभग बन्द हो गया। जो भी थोड़ा खाने का प्रयत्न करते तो बाहर निकल जाता। इस प्रकार शारीरिक स्थिति विकट

बनती गई। फिर भी उनके मन में घबराहट का नाम नहीं था। उत्तरोत्तर मनोबल दृढ़ बनता गया। जब उनके मस्तिष्क में असह्य जलन हो गई तो वे राजस्थानी भाषा में कहती-

म्हारै कित्ता कर्म बान्ध्योड़ा है। म्हारो माथो खीचड़ी सीझै ज्यूं सीझै। गजसुकुमाल मुनि रै घड़ी दो घड़ी कष्ट हुयो, म्हारो माथो तो रात-दिन सीझै। धन्य है सनत्कुमार चक्रवर्ती नै जिका लम्बै काल तक वेदना सहन करी। कहते-कहते वे गुनगुनाने लगती -

रे रे चेतनिया! मेरे मत ना हो अधीर,
तू ही किण ही नै दीन्ही होसी ऐसी पीर।
यह सच्ची है कहानी जो करै सो भरै।

अनशन और चमत्कार

आषाढ़ शुक्ला नवमी की रात्रि में साध्वी सुन्दरजी को एक परिचित-सी आवाज सुनाई दी-'सुन्दरजी! अब समय नजदीक है।' उन्हें लगा कि यह साध्वी छगनांजी (उनकी अग्रगण्या) की आवाज है। इसके कुछ देर पश्चात उनको दूसरी आवाज सुनाई दी-'सावधान हो जाओ' उन्होंने साहसकर पूछा-आप कौन हूं? उन्होंने उत्तर की भाषा में कहा-मेरा नाम चिमनांजी था, मैं आपको प्रेरणा देने आई हूं। साध्वी चिमनांजी (राजलदेसर) साध्वी सुन्दर के ग्रुप में रही थी। साध्वी सुन्दरजी ने उनको अंतिम समय में संथारा कराया था।

रात्रि के समय लगभग 1 बजकर 47 मिनिट पर साध्वी सुन्दरजी ने गुरु दिशा की ओर वन्दन कर उच्च स्वर से तीनों आहार का प्रत्याख्यान कर दिया। ज्योंही अनशन स्वीकार किया, उसी क्षण से उनके शरीर की वेदना स्वत: कम होने लगी। कैंसर की वजह से गले में जो घाव था, वह सूखने लगा। दिन भर में घाव साफ करने के लिए लगभग पन्द्रह-सोलह बार पट्टियां बदलनी होती थी, वह दो बार हो गई। शूल चबका तथा शिर में होने वाली जलन समाप्त हो गई। उनके आंखों की रोशनी सात-आठ साल से प्राय: नहीं थी। संथारे के तीसरे दिन वे अपने हाथ को इधर-उधर फेरकर देख रही थी। तभी पास बैठी साध्वी मोहनांजी ने पूछा-आप इस प्रकार क्या देख रहे हैं? उन्होंने आंख खोलते हुए कहा-देख? मुझे आंखों से दिखाई दे रहा है। गुरुदेव ने मेरे पर कृपाकर आंख की ज्योति भेज दी है। लोगों ने जब यह बात सुनी और इसे चमत्कार माना। इस प्रकार उनका अनशन बड़ा प्रभावशाली रहा। सभी लोगों ने इस अवसर पर विविध प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान

किए। ग्यारह (11) व्यक्तियों ने आजीवन अब्रह्मचर्य के त्याग किए। उनकी सहयोगिनी साध्वियां-किस्तुरांजी व लिछमांजी के उनके अनशन के साथ तपस्या प्रारंभ की और 23 दिन की तपस्या हो गई। इसी प्रकार मूलचन्दजी सेठिया लखुबाई व रिधु बाई भादाणी के भी क्रमश: 23, 23 व 21 दिन का तप हुआ।

संथारे के ग्यारहवें दिन जिस मकान में वे थीं, वहां अगरबत्ती धूप व केशर आदि की सुगन्ध फैल गई। यह किसी अदृश्य शक्ति का चमत्कार लगा। वहां आने वाले सैंकड़ों-सैंकड़ों लोगों ने उस सुगंध का अनुभव किया। अठारहवें दिन साध्वीजी ने चौविहार अनशन किया। उनको अपनी मृत्यु का पहले दिन आभास हुआ। उन्होंने साध्वियों को बता दिया था। ठीक उसी दिन उनके पेट में दर्द हुआ। खून की दस्तें लगी और रात्रि को तीन बजे उनका स्वर्गवास हो गया। उसी समय आकाश में प्रकाशमान विमान दिखाई दिया। जिसका प्रकाश बीस मील तक फैला हुआ था। उनकी सहयोगिनी सभी साध्वियों ने उनकी अंत तक बड़ी तन्मयता से सेवा सुश्रुषा की।

आचार्य श्री तुलसी ने साध्वीजी के संथारे के सोलहवें दिन 1 दोहा और 2 सोरठा कहा -

दोहा-

सुन्दर सुन्दर साहुणी, करयो सुरंगो काम।
इण वय में अनशन कियो, शासन सुयश प्रकाम।.

सोरठा-

षोडश दिन संथार, भीनासर में भावती।
सुन्दर करै अपार, तेरापंथ प्रभावना।
2. है कैंसर उपशांत, गई आंख ज्योति मिली।
सुगुरु भक्ति अभ्रांत, चमत्कार लख चकित जन॥

स्वर्गवास के पश्चात् आचार्यवर ने एक दोहा कहा-

अठारह तिविहार दिन, चौविहार दिन पांच।
सीझयो दिन तेवीस में, आन्तर मेटी आंच॥

16. साध्वी नानूजी (जसोल) (689)

जसोल के सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठा प्राप्त सालेचा परिवार। उसमें प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे शाह देवोजी। वे राजा के कामदार थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम सुखी देवी था। वे टापरा निवासी सेठ धनजी संकलेचा की पुत्री थी। सुखी देवी धर्म के मजीठी रंग में रंगी हुई थी। देव, गुरु, धर्म के प्रति उनके रोम–रोम में आस्था थी। वे संकल्प की दृढ थी। वे सहनशील, विनम्र और व्यवहार कुशल महिला थी। सुखी बाई जैसी गृहलक्ष्मी के साथ शाह देवोजी का जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा था।

सं. 1938 का वर्ष। जयाचार्य का जयपुर पावस प्रवास और तनुरत्न में असात वेदनीय कर्म का उदय। सुखी बाई आचार्यवर की अस्वस्थता के समाचार सुन गुरु दर्शन के लिए अत्यधिक बेचैन हो गई। उन्होंने अपनी अन्तर्भावना अपने पति देवोजी के सम्मुख रखी और जयपुर जाने की अनुमति मांगी। देवोजी स्पष्ट शब्दों में इन्कार हो गए। सुखीबाई को किसी तरह काम बनते दिखाई नहीं दिया तो उन्होंने कहा – मैं अपने पुत्रों को लेकर जयपुर जाऊँगी। पुत्रों पर अधिकार जमाने की बात से वे और अधिक उग्र बन गए और बोले – पुत्र तो मेरे हैं, उन पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है, अतः देखता हूँ तुम उनको कैसे ले जाओगी? सुखीबाई इस बात पर भभक–सी उठी, उन्होंने कहा – आप से भी अधिक अधिकार बच्चों पर मेरा है, मैं मां हूँ। यद्यपि मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ, एक दूसरे का सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य है। मैं आपके द्वारा कहा गया हर काम करने को तत्पर हूँ। पर एक काम के लिए मैं समझौता नहीं कर सकती। वह है आस्था का, धर्म का। जहां मेरी श्रद्धा होगी, भक्ति होगी मैं उसी धर्म को मानूंगी। धर्म के मामले में न आपका हस्तक्षेप सहन करूँगी, और न किसी के मैं हस्तक्षेप करूँगी। यह बात बढते–बढते इतनी बढ गई कि घर में भारी तनाव का वातावरण पैदा हो गया।

आखिर निर्णायक स्थिति तक पहुंचने के लिए उन्होंने पंच व्यवस्था का सहारा लेने की बात सोची। क्योंकि बेटे और बेटियों पर मां–बाप दोनों का अधिकार होता है। वे एक व्यक्ति के कैसे हो सकते है। उस जमाने में औरत का पंचों तक पहुंचना बहुत कठिन काम था। सुखीबाई ने बड़ी हिम्मत और साहस का परिचय दिया और पंचों तक पहुंच गई। उन्होंने अपनी सारी स्थिति को स्पष्ट करते हुए न्याय की मांग की। पंच लोग शाह देवोजी के पास पहुंचे, सेठानी सुखीबाई से सुनी सारी बात प्रस्तुत करते हुए वे क्या चाहते हैं इस बात पर विस्तार से चर्चा की। उन्होंने अपनी कठिनाई रखी पर पंचों द्वारा जो भी निर्णय होगा, वह मुझे सहर्ष मान्य है, यह कहकर मौन

हो गए। पंचों ने मिलकर परस्पर विचार विनिमय किया और अपना लिखित फैसला सुनाते हुए कहा – शाह देवोजी एवं सुखीबाई के पांच पुत्र एक पुत्री हैं। उनमें से तीन पुत्र – सागरमलजी, अमरचंदजी, और सरदारमलजी पर तो सेठ देवोजी का अधिकार रहेगा। दो पुत्र – फौजमलजी हजारीमलजी एवं पुत्री कुसुम्बाबाई पर सेठानी सुखीबाई का अधिकार रहेगा। पंचों द्वारा किए गए इस फैसले से जहां देवोजी एवं सुखी बाई को सन्तोष हुआ। वहां उनके परिवार जनों ने भी शान्ति का अनुभव किया।

कहते हैं घर का वातावरण शांतिमय बनने के बाद सुखी बाई 60 बहिनों को साथ लेकर जयाचार्यश्री की सेवा में पहुंची। वहां उन्होंने जयाचार्य की पावन सन्निधि का लाभ उठाया और दृढधर्मिणी श्राविका के रूप में अपनी पहचान बनाई। उन्होंने जीवन के प्रारंभ से लेकर अन्त तक एक समान धार्मिक जीवन जिया।

सुखी बाई के परिवार में सबसे पहले नानूजी तेरापंथ धर्मसंघ में साध्वी के रूप में प्रविष्ट हुई, उसके बाद इस परिवार की बहुत दीक्षा हुई। सुखी बाई के प्रथम पुत्र हजारीमलजी के तीन पुत्र थे, छोगजी, गणेशमलजी पूनमचंदजी। एक छोगजी के सिवाय दोनों पुत्रों – गणेशमलजी और पूनमचंदजी दोनों दीक्षित हुए। गणेशमलजी के तीन पुत्र – जीवणमलजी, हस्तीमलजी और मूलतानमलजी ने दीक्षा ली। साध्वी नानूजी मुनि गणेशमलजी पूनमचंदजी की बहिन थी और सबकी बूआ थी।

सं. 1965 में डालगणी ने साध्वी रतनांजी सुजानगढ का सिंघाड़ा बनाया, तब साध्वी नानूजी को उनके साथ भेजा। वे अपनी अग्रगण्या के प्रति अत्यधिक समर्पित थी। दोनों का सामंजस्य अद्‌भुत था। दोनों एक दूसरे की संयम साधना में सहयोगी थी। दोनों का परस्पर दूध मिश्री जैसा घनिष्ट सम्बन्ध था।

साध्वी रतनांजी ने सं. 2008 के आषाढ महीने में लाडनूं से विहार किया। भयंकर लू चल रही थी। साध्वी रतनांजी भी उनके साथ थी। दोनों लू की चपेट में आ गई फिर भी मनोबल के साथ चलती रही। बारस को वे डीडवाना के गांव बाहर पहुंची। शरीर में वेदना इतनी अधिक बढ गई कि दोनों चलने में अक्षम हो गई। ऐसी स्थिति में वे दयाल आश्रम में ठहरी। दोनों को ऐसा अनुभव होने लगा कि यह शरीर टिकने वाला नहीं है, दोनों ने एक दूसरे से मोह न रखने की और समभाव से वेदना सहन करने की बात कही। दोनों के मन में एक दूसरे के चले जाने की कल्पना भी व्यथा पैदा कर रही थी। अचानक शाम को चार बजे साध्वी रतनांजी दिवंगत हो गई और सात बजे साध्वी नानूंजी स्वर्गस्थ हो गईं। इस प्रकार दोनों तीन घंटे की अवधि में इस संसार से विदा हो गईं। लोगों के आश्चर्य की सीमा उस समय नहीं रही जब

दोनों के शव को अलग–अलग चिता पर रखकर जलाया गया, जलते जलते नानूजी का सिर रतनांजी की गोद में आकर गिर गया।

उसी दिन लाडनूं में साध्वी नजरकुमारीजी एवं पडिहारा में मुनि हीरालालजी का लू से स्वर्गवास हो गया। उस समय आचार्य तुलसी ने एक पद्य कहा –

विद बारस आषाढ की, स्वर्गवास हुए च्यार।
हीरो मुनि रतनां सती, नानू निजर कुमार।।

17. साध्वी चम्पांजी (बालोतरा) (692)

साध्वी चम्पांजी का बालोतरा में ससुराल था और पीहर आसोतरा के डोसी–चौपड़ा परिवार में था। ससुराल का गोत्र सालेचा था। पति का नाम अमरचंदजी था। उनका जन्म सं. 1939 में हुआ। विवाह कब हुआ उल्लेख नहीं मिलता। सं. 1964 में पतिवियोग के बाद भाद्रव शुक्ला दूज को बीदासर में डालगणी के कर–कमलों से संयम स्वीकार किया। उस दिन दो दीक्षा हुई। दूसरी साध्वी थी अजबूजी। डालिम चरित्र में दीक्षा वर्णन इस प्रकार है –

अजबूजी गंगापुर जाति कोठारी।
चम्पा बालोतर बीदासर दोन्यां री।।

साध्वी चम्पांजी की एक बहिन साध्वी कुन्नणांजी (718) ने सं. 1965 में सप्तमाचार्यश्री डालगणी से दीक्षा ली और दूसरी बहिन साध्वी सोनांजी ने अष्टमाचार्य श्री कालुगणी के हाथ से सं. 1967 में संयम ग्रहण किया।

साध्वी चम्पांजी निर्जरार्थी और तपस्विनी साध्वी थी। उनके जीवन से ऐसे अनेक प्रसंग जुड़े हुए है जो उनकी अनासक्त अस्वाद वृत्ति के प्रतीक हैं। उनकी तपस्या की तालिका अद्‌भुत है। उन्होंने अपने जीवन में दस वर्ष 4 महीने और 29 दिन की कुल तपस्या की। विस्तार से जानना चाहें तो निम्न प्रकार से हैं –

उपवास	–	2181	दस	–	2
बेला	–	287	ग्यारह	–	2
तेला	–	111	तेरह	–	1
चोला	–	20	चवदह	–	1
पंचोला	–	55	पन्द्रह	–	1
छह	–	3	सोलह	–	1
सात	–	1	बीस	–	1
आठ	–	14	तीस	–	1
नौ	–	2			

उन्होंने सं. 2004 से सं. 2012 तक एकांतर तप किया और बीच–बीच में बड़ी तपस्या भी की। साध्वी चम्पांजी को वृद्धावस्था में लाड़नूं सेवा केन्द्र में रहने का अवसर मिला। उन्होंने सं. 2012 के फागण महीने में संलेखना शुरु की। उनके

संलेखना चल रही थी तब आचार्यश्री तुलसी का लाडनूं पदार्पण हुआ। तप के 20वें दिन आचार्यवर के मुखारविन्द से उन्होंने आजीवन तिविहार अनशन स्वीकार किया। आचार्यवर छह दिवसीय लाडनूं का प्रवास सम्पन्न कर सुजानगढ पधार गए। उस समय सुजानगढ कुछ दिन विराजना हुआ, उस अवधि में लाडनूं पधारे और साध्वी चम्पांजी को दर्शन दिए और एक दोहा कहा –

चम्पा! थारो देखियो, मैं अति ही उत्साह।
मुझ मुख अनशन पचख नै, फतह करी वाह! वाह।।

आचार्यवर की कृपा और वात्सल्यदायिनी वाणी सुन साध्वी चम्पांजी का मनोबल एवं उत्साह सौ गुना वृद्धिंगत हो गया। 25वें दिन वि. सं. 1913 वैशाख कृष्णा पांचम को संथारा सानन्द सम्पन्न हुआ। उस संथारे से धर्मसंघ की बहुत प्रभावना हुई।

18. साध्वी खूमांजी (लाडनूं) (700)

साध्वी खूमांजी की तेरापंथ धर्मसंघ में एक ख्यातनामा साध्वी के रूप में पहचान है। वे सेवाभावी थी, आत्मार्थी थी, साहसी थी, कलाकार थी और समझदार थी। उनका तेरापंथ में जन्म साध्वी खूमांजी के रूप में हुआ, दिवंगत हुई तब आचार्यश्री तुलसी ने उनकी क्षमाशीलता का उल्लेख करते हुए उन्हें साध्वी क्षमाश्रीजी के रूप में प्रतिष्ठित किया। बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी साध्वी खूमांजी का जन्म लाडनूं के दूगड़ परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम हरखचंदजी दूगड़ था। उनका जन्म सं. 1948 कार्तिक शुक्ला सप्तमी को माता मोतादेवी की कुक्षि से हुआ। वे एक होनहार बालिका थी। बचपन से ही उनकी धार्मिक आस्था विशेष उल्लेखनीय रही। वे साधु साध्वियों के दर्शन–सेवा का लाभ बचपन से लेती रही। वे प्राथमिक धार्मिक तत्त्व बोध सीखने में अपना समय नियोजित करती। उनके मन में उसी समय वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया पर संकोचशील स्वभाव तथा माता पिता का भय होने के कारण वे अपनी भावना व्यक्त नहीं कर पाई। तात्कालिक परम्परा के अनुसार अभिभावकों ने 12 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह स्थानीय तोलारामजी बेगवानी के पुत्र हणूतमलजी के साथ कर दिया। पीहर अैर ससुराल दोनों पक्ष सम्पन्न और धार्मिक दृष्टि से भी हरे भरे थे।

सहज वैराग्यमयी मनोवृत्ति, साधु–साध्वियों का निकट सम्पर्क और उनकी प्रेरणा ने खूमांजी के मन में साधु बनने की मनोभावना को बल दिया और उत्तरोत्तर वैराग्यलता को वृद्धिंगत किया। वे बचपन से ही समझदार थी। लगता है उनको समझदारी 'गोड गिफ्ट' रूप में मिली थी। नाबालिग अवस्था सामान्यता खाने खेलने की होती है। वहां दीक्षा की भावना तीव्र होते ही उन्होंने सबसे पहले लिखित आज्ञा का प्रबन्ध करना आवश्यक समझा। बात ही बात में उन्होंने अपने पति हणूतमलजी को अपनी वैराग्यभावना की जानकारी दी और कौशलपूर्ण मजाक के साथ आज्ञापत्र लिखवा लिया। एक दिन अवसर देखकर उन्होंने सप्तमाचार्यश्री डालगणी के चरणों में अपनी दीक्षा की भावना रखी और परिवार की सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए आज्ञा–पत्र डालगणी को सौंप दिया। यह सारा कार्य उन्होंने बड़ी दक्षता के साथ किया कि परिवार के किसी सदस्य को भनक तक नहीं लगी। उसी समय जब उन्होंने आज्ञा–पत्र निवेदन किया आचार्यश्री डालगणी ने उनको साधु प्रतिक्रमण सीखने का संकेत कर दिया। जब उन्होंने दीक्षा की माता पिता, सास–श्वसुर को स्पष्ट रूप में जानकारी दी उनसे आज्ञा मांगी तो वे आनाकानी करने लगे। खूमांजी अपने संकल्प पर दृढ थीं, वे अपने आपको कसौटी पर चढाने के लिए तैयार थी।

उन्होंने मनोमना यह निर्णय कर लिया था कि आज्ञा न मिलने पर कब कौन सा हथियार काम में लेना है। सबसे पहले उन्होंने संकल्प लिया – जब तक दीक्षा की अनुमति नहीं मिलेगी तब तक ससुराल और पीहर का खाना नहीं खाऊंगी। जब उनकी इस प्रतिज्ञा का श्वसुरपक्ष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब उन्होंने अपने पास जितने गहने थे उतारकर ससुरजी को सौंप दिए। ससुर तोलारामजी ने सहर्ष आज्ञापत्र लिख दिया। खूमांजी ने डालगणी को स्थिति निवेदन की तो उन्होंने आज्ञा पत्र प्राप्त होने पर दीक्षा का आदेश दे दिया और दीक्षा तिथि की घोषणा कर दी। पीहर पक्ष के लोगों ने बड़े धूमधाम एवं उत्साह के साथ दीक्षा महोत्सव मनाना प्रारंभ कर दिया। खूब ठाटबाट, गाजोंबाजों के साथ बरनोलियां निकाली जाने लगी। पर ससुरपक्ष वाले उदासीन बने रहे जिससे लाडनूं के तेरापंथी परिवारों में उनकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई। अपना नाम बदनाम होते देखकर उन्होंने अपनी नाराजगी जताते हुए दीक्षाविरोध में एक प्रपंच खड़ा किया। बेगवानी परिवार के प्रमुख सदस्य पंचों को साथ लेकर डालगणी के पास गए और बोले – मेरी पुत्रवधु को मेरा पुत्र दीक्षा की आज्ञा नहीं देगा, अतः कल उसकी दीक्षा कैसे होगी?

आचार्यश्री डालगणी ने अपनी ओजस्वी वाणी में उनकी दुर्बलता पर प्रहार करते हुए फटकार लगाई और जो वस्तुस्थिति थी उसे स्पष्ट करते हुए हणुतमलजी द्वारा लिखा गया आज्ञा–पत्र सबके सामने रख दिया। उसे देखते ही तोलारामजी आदि परिजनों एवं पंचों की बोलती बंद हो गई। आचार्यश्री के तेजस्वी रूप को देख सब थर थर कांपने लगे। सब अपराधबोध से ग्रसित हो बगले झांकते हुए वहां से उठ खड़े हुए। सारा वातावरण शांत हो गया। दूसरे दिन उभरते उल्लास के साथ वैरागण खूमांजी आचार्यश्री के चरणों में दीक्षा लेने के लिए उपस्थित हो गई।

सं. 1964 आषाढ शुक्ला सातम को खूमांजी विपुल धन–सम्पदा पति और भरेपूरे परिवार को छोड़कर पूज्य डालगणी के कर–कमलों से संयम स्वीकार कर साध्वी खूमांजी बन गई। उस समय वे मात्र 16 वर्ष की थी। उस दिन उनके साथ लाडनूं की दो बहिनें – साध्वी हुलासांजी और साध्वी छगनांजी भी दीक्षित हुई।

दीक्षित होने के पश्चात साध्वी खूमांजी को आचार्यश्री डालगणी एवं कालूगणी के सान्निध्य में रहने का मात्र डेढ साल का समय मिला। उसके बाद अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने उनको अपनी संसारपक्षीया माता साध्वी छोगांजी की सेवा में नियुक्त किया। प्रथम दिन से अन्तिम दिन तक वे मातुश्री की सेवा में श्रद्धा, समर्पण और सेवाभाव के साथ रही, जो अपने आप में एक कीर्तिमान हैं। साध्वी खूमांजी ने

गुरु–सेवा के समान ही गुरु–जननी की सेवा को माना। उनकी सेवा से मातुश्री ने परम समाधि का अनुभव किया और पूज्य कालूगणी को परम आत्मतोष और पूर्ण प्रसन्नता रही। मातुश्री की सेवा में साध्वी खूमांजी को रखकर कालूगणी ने परम निश्चिंतता का अनुभव किया। मातुश्री की सेवा में रहकर जो सफलता और शोभा साध्वी खूमांजी ने प्राप्त की, विरल व्यक्तियों को मिलती है। आचार्यश्री तुलसी ने डालिम चरित्र में लिखा है –

अति क्षमाशील सती सुहागण बडी भागण भामिनी,
वर वेगवाणी जाती सहज स्याणी स्वामिनी।
साझी खूमांजी सेव माजी की रही बीदाण में,
सम्मान शासन में, चढी गुरु–आण की खरसाण में।।

डालिम–चरित्र खं.2.ढा.10गा.74।।

बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व

साध्वी खूमांजी का आंतरिक और बाह्य – दोनों व्यक्तित्व प्रभावशाली थे। गौर वर्ण, मध्यम कद काठी, सुडौल शरीर और मुस्कान बिखेरती आंखें सबको अपनी ओर आकर्षित करने वाली थी। वाणी में माधुर्य और धैर्य था। दूसरों को बड़े शांतभाव से समझाती थीं। आंतरिक व्यक्तित्व की ओर दृष्टिपात करें तो उनका आचार–विचार उज्ज्वल और निर्मल था। दैनिक चर्या के प्रति पूर्ण जागरूक एवं सजग थीं। पापभीरू, नियमनिष्ठ और विवेक सम्पन्न थीं। उनकी विनम्रता, संघनिष्ठा और गुरुभक्ति अनन्य थी। सहनशीलता, गंभीरता और क्षमाशीलता उनकी अद्‌भुत थी। स्वयं के जीवन निर्माण के साथ साथ अनेक व्यक्तित्वों के निर्माण में भी उन्होंने अच्छी भूमिका निभाई।

उन्होंने पच्चीस बोल, पाना की चर्चा, तेरह द्वार, लघुदण्डक, संजया आदि थोकड़े कंठस्थकर तत्त्वज्ञान को गहराई दी तथा दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन के कुछ अध्ययन भी याद किए। इनके अतिरिक्त आराधना, छोटी बड़ी चौबीसी, रामचरित्र आदि व्याख्यान के साथ माजी म्हाराज का छवढालिया तथा नित्य स्मरणीय कई गीतिकाएं कंठस्थ थी। आचार्यवर द्वारा मर्यादा महोत्सव और भिक्षु चरमोत्सव पर रचित प्रायः गीत उन्हें याद थे।

भगवतीसूत्र और भगवतीजोड़ को लिपिबद्ध किया

उनको लिपिकला में विशेष दक्षता प्राप्त थी। दक्षता के साथ उस दिशा में उनका पुरुषार्थ सदैव चालू रहा। तेरापंथ साध्वी समाज में भगवती सूत्र और भगवती

सूत्र की जोड़ – दोनों लिखने वाली प्रथम साध्वी थी। इससे पूर्व साध्वी सेरांजी (मोमासर) ने भगवती सूत्र लिखा, ऐसा उल्लेख मिलता है, पर वह प्रति आज सुरक्षित नहीं है। साध्वीप्रमुखा गुलाबांजी ने भगवती सूत्र की जोड लिखकर इतिहास बनाया। साध्वी खूमांजी ने टब्बे सहित भगवती सूत्र लिखा और भगवती जोड़ भी लिखी – दोनो प्रतियां तेरापंथ – पुस्तक भंडार में सुरक्षित है। आचार्यश्री कालूगणी के निर्देश से साध्वी खूमांजी ने भगवती जोड़ को लिपिबद्ध किया – इसका कालूयशोविलास में उल्लेख करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है –

सूत्र भगवती जोड़ लिखी है, सती खूमांजी, श्रीकालू बरतारे।
(कालू. शि. 3. गा. 37)

इनके अतिरिक्त उन्होंने कई आगमों की जोड़ तथा आख्यान आदि लिपिबद्ध किए। आचार्यश्री तुलसी पदासीन होकर जब पहली बार बीदासर पधारे तब मातुश्री छोगांजी ने साध्वी खूमांजी द्वारा लिखित तेरह आगम भेंट किए। उन प्रतिलिपियों के निर्माण में साध्वी खूमांजी के साथ साध्वी निजरकुमारीजी (वास) का बहुत सहयोग रहा। आगम का पाठ जहां साध्वी खूमांजी लिखती तो अर्थ साध्वी निजरकुमारीजी लिखतीं। इस प्रकार साध्वी खूमांजी ने हजारों–हजारों पत्र लिखकर तेरापंथ पुस्तक भंडार को समृद्ध बनाया। यह सारा लेखन कार्य उन्होंने मातुश्री की सेवा के साथ किया। वे प्रतिदिन व्याख्यान, गोचरी करतीं। मातुश्री का निजी कार्य करती, क्षण क्षण उनके इंगित की आराधना को प्राथमिकता देती। शीतकाल में जब जब साधु साध्वियों का आवागमन अधिक होता। भक्ति आदि करने में समय व्यतीत हो जाता। शीतकाल में वे प्रायः लेखन कार्य बंद रखती। वे स्थिरयोगी थीं। जब जिस कार्य में सम्पृक्त होती, तन्मय बनकर काम करतीं।

अप्रमत्त साधिका

साध्वी खूमांजी हर क्षण का उपयोग कर अप्रमत्त साधना करती। स्वाध्याय ध्यान और जप में उनकी सहज रुचि थी। जीवन के हर मोड़ पर कार्यशैली में उनके बदलाव आ गया पर उन्होंने प्रमाद को कभी प्रश्रय नहीं दिया। 'समयं गोयम! मा पमायए' उनका सदा आदर्श वाक्य बना रहा। वृद्धावस्था में नेत्रों से अक्षम होने पर वे दूसरों से स्वाध्याय करती। हमेशा आगम का पाठ घंटों–घंटों तक सुनती रहती। आचार्यश्री तुलसी ने सं. 2034 में जब वे राजलदेसर में स्थिरवासी थी, साध्वी निजरकुमारीजी का चातुर्मास राजलदेसर उनके पास कराया। ज्ञातव्य है कि साध्वी खूमांजी और साध्वी निजरकुमारीजी दोनों मातुश्री छोगांजी के पास बहुत वर्षों तक

साथ रही। दोनों का एक दूसरे के प्रति विनय वात्सल्य भाव बहुत प्रशस्त रहा और दोनों एक दूसरे की पूरक बनकर रहीं। उस चातुर्मास में साध्वी निजरकुमारीजी साध्वी खूमांजी को प्रतिदिन चार पांच घंटे आगम आदि सुनाती। पांच महीने के सह–प्रवास काल में दोनों ने एक लाख गाथाओं का स्वाध्याय किया। उस समय उनकी अवस्था 87 वर्ष की थी पर स्वाध्याय करते समय उनका उत्साह विशेष रूप से जागृत रहता। अपने आसपास रहने वालों को भी प्रमाद से बचने की प्रेरणा देती। श्रावक श्राविकाओं को भी तत्त्वज्ञान आदि कण्ठस्थ करवाती तथा सबको ज्ञान, ध्यान स्वाध्याय और जप से समय को सार्थक करने की भावना भरती।

संयमसाधिका

साध्वी खूमांजी ने सेवा धर्म की उत्कृष्ट आराधना की। तपस्या उन्होंने बहुत लम्बी या बडी तो नहीं की। पर उनके जीवन में वाणी संयम, खाद्य संयम, पानी संयम, औषधि संयम और उपधि संयम उत्कृष्ट कोटि का था। उन्होंने अंतिम ग्यारह वर्षों में सलक्ष्य त्याग और तपसाधना के विशेष प्रयोग किए। लगभग नौ साल तक पांच तिथियों के उपवास तथा अढाई साल एकांतर तप किया। उस अवधि में प्रायः पांच विगय वर्जन किया और एक बार में पांच द्रव्यों से अधिक नहीं लिया। उन्होंने अपने जीवन में 14 वर्ष, 7 महीने और 7 दिन की तपस्या की। विस्तार से तपस्या–तालिका इस प्रकार है –

उपवास	–	4921	चोला	–	4
बेला	–	92	पंचोला	–	2
तेला	–	36	छह	–	2

विश्वास पात्र

सेवा अथवा संघीय कार्य का अवसर मिलना एक बात है, उसमें सफलता मिलना दूसरी बात है। सफलता के साथ आचार्यों का विश्वास प्राप्त करना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। साध्वी खूमांजी को मातुश्री की सेवा मिली, इसे गुरुकृपा का प्रसाद माना जा सकता है। सेवाभावना और कर्त्तव्य परायणता से उन्होंने पूज्य कालूगणी और मातुश्री छोगांजी का विश्वास प्राप्त किया, वह विशेष उल्लेखनीय है।

एक बार पूज्य कालूगणी ने साध्वी खूमांजी को किसी विशेष अपेक्षा से सुजानगढ बुलाया। साध्वी खूमांजी माजी महाराज को छोड़कर एक दिन भी इधर उधर जाना नहीं चाहती थी और माजी महाराज भेजना नहीं चाहते थे। जब कालूगणी

के दर्शन किए तब उनसे पूछा – सुजानगढ कितने वर्षों से आई हो? उन्होंने बताया – 20 वर्ष से। तभी कालूगणी ने सुजानगढ के सुप्रसिद्ध श्रावक दानचंदजी चौपड़ा को सम्बोधित कर कहा – पड़ौस में रहने वाली साध्वी खूमांजी तुम्हारे सुजानगढ में बीस साल से आई है। तीसरे दिन वापिस साध्वी खूमांजी माजी महाराज के पास बीदासर पहुंच गई। माजी महाराज ने वात्सल्य के साथ कहा – कल मुझे पारणे में रोटी नीरस लगी और तुम्हारे बिना जगह सूनी–सूनी सी लगी। साध्वी खूमांजी ने निवेदन किया – यह आपकी कृपा है। सतियां मेरे से अधिक ध्यान रखती है। उल्लेखनीय है कि माजी महाराज का छोटा–बडा सारा काम साध्वी खूमांजी करती थी।

सम्मान–बक्सीस

आचार्यवरश्री कालूगणी ने भी साध्वी खूमांजी का खूब सम्मान बढ़ाया और समय–समय पर मूल्यांकन किया। सं. 1988 का चौमासा बीदासर में था। संवत्सरी के दिन व्याख्यान में कालूगणी ने साध्वी खूमांजी को समुच्चय का सारा कामकाज तथा बोझभार की बक्सीस की।

सं. 1993 भाद्रव कृष्णा अमावस्या को आचार्यश्री कालूगणी ने मुनि तुलसी को अपने उत्तरदायित्व का दिशानिर्देश देते समय साध्वी खूमांजी के लिए कहा – "साध्वी खूमांजी ने माजी महाराज की बेजोड़ सेवा की है अतः उनके सिंघाड़े में तुम सात साध्वियां रखना।" उसे कालूयशोविलास में आचार्यश्री तुलसी ने इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है –

माजी री सेवा साझी खूमांजी आजीवन खिण खिण जागी रे, तुलसी!
सात सत्यां दीजे सही सेवा रो मूल्यांकन करै सुभागी रे, तुलसी!

आचार्यश्री तुलसी ने अपने युग में उनको समय–समय पर सम्मानित किया और हर दृष्टि से उनका मान मूल्यांकन बढाया। सं. 2001 में सुजानगढ में परिषद में उनकी सेवाभावना का उल्लेख करते हुए कहा – "साध्वी खूमांजी ने मातुश्री छोगांजी की बहुत सेवा की। इन्हें कालूगणी ने तो बक्सीसें की ही हैं, आज मैं इनको 9 हजार गाथाओं की बक्सीस करता हूँ।

सं. 2002 में आचार्यप्रवर ने लाडनूं की चाकरी बक्सीस की और कृपा बरसाते हुए कहा – "साध्वी खूमांजी ने मातुश्री की बहुत चाकरी की है, इनसे चाकरी क्या कराएं।" यद्यपि तेरापंथ धर्मसंघ में चाकरी करना प्रत्येक साधु–साध्वी के लिए

अनिवार्य होता है पर आचार्य योग्य साधु साध्वियों की सेवा का मूल्यांकन कर उन्हें उससे मुक्त भी कर सकते हैं।''

सं. 2003 का मर्यादा महोत्सव आचार्यश्री तुलसी ने चूरू में किया। उससे पहले आचार्यवर ने तारानगर, ददरेवा..... आदि छोटे क्षेत्रों में प्रवास किया, जहां बहुत बड़ी संख्या में साधु–साध्वियां रह सके संभव नही था। इसलिए मारवाड़, मेवाड़ से आने वाले सिंघाड़ों को कुछ समय के लिए लाडनूं रहने का निर्देश दिया गया। वहां की व्यवस्था का दायित्व साध्वी खूमांजी ने संभाला। उस समय लाडनूं में लगभग दो सौ साध्वियां थीं। साध्वी खूमांजी ने जिस कुशलता के साथ संभाला, उसकी स्वयं आचार्यप्रवर ने भूरि–भूरि प्रशंसा की।

समय–समय पर आचार्यश्री कालूगणी और आचार्यश्री तुलसी ने उनके नाम से पत्र प्रेषित किए, उनमें भी आचार्यों की कृपा वात्सल्य के साथ विश्वास की अभिव्यक्ति होती है। अष्टमाचार्यश्री ने मातुश्री को दिए पत्र में साध्वी खूमांजी के लिए लिखा –

शिष्यणी खूमांजी आदि स्यूं सुख साता बंचै। थे आच्छी तरै स्यूं रहीज्यो, और छोगांजी की सेवा करो हो जिणस्यूं सवाय सवाय करीज्यो। चित्त में समाधि घणी घणी उपजाइज्यो। यांरी सेवा करो हो जिकी सेवा हूँ म्हारी सेवा समझू हूँ।

सं. 1990 फागण सुदि 1

शिष्यणी खूमांजी! यांरी सेवा करणै स्यूं म्हारै चित्त में आनन्द घणो रहै। उठी री कानी री चित्त में कोई विचारणा नहीं आवै। यानै अकेला छोडीज्यो मती, एक जणी कनै प्रायः रहीज्यो.....।

सं. 1991 माघ सुदि 12

आचार्यश्री तुलसी द्वारा दिए गए पत्र भी भावपूर्ण होने के साथ उनके व्यक्तित्व की ऊँचाई व्यक्त करने वाले हैं –

वयोवृद्धा शिष्या साध्वी खूमांजी!

थे बड़ा माजी छोगांजी री जकी सेवा की बा याद आणै स्यूं म्हारै मन में राजीपो घणो आवै। गुरु रै इंगित आकार नै समझणै वाला थारै जिस्या विरला ही हुसी। आचार विचार में घणा सावधान पापभीरूता रो परतख उदाहरण साध्वी खूमांजी

है। अब थांरो शरीर जीर्ण होग्यो, कोई चिन्ता री बात कोनी। मनोबल बड़ो मजबूत है। थांरी आत्म–आलोचना भी अनुकरणीय है। राजलदेसर में स्थिरवास रूप में रहकर बठै के भायां–बायां नै बड़ो लाभ दे रह्या हो। खुशी की बात है। मैं चाहूँ हूँ कि थारै घणी घणी चित्त समाधि रेवै। संयम–यात्रा री सम्पन्नता खूब समाधि में हुवै। शेष सत्यां स्यूं सुखपृच्छा। खूमांजी की सेवा करो और वारां गुणां स्यूं अपणै आपनै भरो। शेष कुशलं।

3 अप्रैल 1975

सुजानगढ

आचार्य तुलसी

स्थविरा साध्वी शिष्या खूमांजी!

हम यहां से कल गंगाशहर की ओर विहार कर रहे हैं। आगामी चौमासा वहां करना है। गर्मी भर जवानी में है। अभी ठंड के आसार नजर नहीं आ रहे हैं। फिर भी हमारी यात्रा समाधि–पूर्वक निर्विघ्न चल रही है। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

खूमांजी! अब शेष समय है, तुमने बहुत बहुत लाभ कमाया है। तुम समृद्ध बन गई हो। बहुत बहुत समाधि रखना। अधिक से अधिक समय अप्रमत्त रहना और साध्वियों को भी अपने अनुभव के आधार पर शिक्षा देते रहना। बस, अब बाजी जीत गई हो। तुमने संघ की, संघपति की बहुत सेवा की है। मेरा मन बहुत प्रसन्न है। देखो ऐसी गर्मी में तुमने साध्वी पान फूल को भेजा, ऐसा साहस मत किया करो। शेषं कुशलं।

बीदासर

सं. 2035 जेठ सुदि एकम

आचार्य तुलसी

सं. 1992 में अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के निर्देश से साध्वी खूमांजी ने बीदासर से लाडनूं आकर साध्वी हुलासांजी लाडनूं को अपने हाथ से दीक्षित किया। साध्वी हुलासांजी लाडनूं के सुप्रसिद्ध बम्बू वाले बैद परिवार की पुत्री थी। उनके पिता का नाम धनराजजी था। धनराजजी प्रबुद्ध, संघ संघपति के प्रति समर्पित तथा कालूगणी

के विशेष कृपा पात्र श्रावक थे। इस दीक्षा प्रसंग को कालूयशोविलास में आचार्य तुलसी ने इस प्रकार लिखा है –

त्राणव दशमी चेत सुद, चन्देरी री बात।
हुलासां दीक्षा ग्रही, खूमांजी रै हाथ।।
माजी छोगां भेजिया, सात सत्यां सुखदाय,
दे दीक्षा बीदाण में, ल्याया पूज्य पसाय।।

अग्रगण्या का दायित्व

सं 1997 चैत्र कृष्णा एकादशी को मातुश्री छोगांजी का बीदासर में स्वर्गवास हुआ। उसके बाद आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी खूमांजी को ससम्मान अग्रगण्या के पद पर नियुक्त किया। उन्होंने लगभग 40 वर्षों में थली, मेवाड़, मारवाड़, हरियाणा आदि प्रान्तों में विहरणकर धर्मसंघ की प्रभावना की और जन कल्याण की भावना से सदसंस्कारों की प्रेरणा दी। साध्वीजी का स्वभाव शांत, व्यवहार कोमल और वाणी वात्सल्य रस से सरोबार थी इसलिए उनकी शिक्षा का सहज प्रभाव होता था। उनका व्यवहार और बातचीत समझदारी से अनुप्राणित होते थे। उनमें सूझबूझ भी अद्‌भुत थी।

सं. 1993 में जब महामहिम कालूगणी का स्वर्गवास हों गया, बीदासर के प्रमुख–प्रमुख श्रावक टेलिग्राम लेकर आए। किसी भी व्यक्ति की हिम्मत नहीं हो सकी कि ये संवाद सुना दे। आखिर साध्वी खूमांजी ने बड़े साहस और सूझबूझ के साथ कहा – माजी महाराज! टेलिग्रम आया है। माजी महाराज ने पूछा – कहां से आया है और क्या समाचार है?

साध्वी खूमांजी ने भूमिका बनाते हुए कहा – गुरुदेव के असह्य वेदना थी पर उन्होंने बड़ी मजबूती और धैर्य के साथ वेदना सहन की। आप भी उन्हीं महापुरुष की माता है। काल के आगे बलवान से बलवान व्यक्ति हार जाता है। राजा सगर को एक साथ साठ हजार पुत्रों का विरह देखना पड़ा। महाराजा मोहजीत ने पुत्र के चले जाने पर एक आदर्श प्रस्तुत किया था.....। मातुश्री को बिना स्पष्ट किए ही सब कुछ समझा दिया। मातुश्री छोगांजी ने विश्वास छोड़ते हुए कहा – क्या मेरा लाल नहीं रहा.....।

स्वर्गारोहण के बाद जब–जब मातुश्री के मन में मोह का ज्वार उभर जाता वे कहती – खूमांजी! कालूगणी स्वर्ग पधार गए, मैं अभी तक बैठी हूँ। अब मैं क्या

करूंगी.....। साध्वी खूमांजी ऐसे संवेदनशील क्षणों में कहती – माजी महाराज! यह किसी के वश की बात नहीं है। फिर हमारे लिए तो चिन्ता की कोई बात ही नहीं है। पूज्य कालूगणी के स्थान पर तुलसीगणी आपका पूरा पूरा ध्यान रखेंगे। जब गुरुदेव यहां पधारेंगे आपको खूब सेवा कराएंगे। मुझे तो ऐसा लगता है कालूगणी से सवाई कृपादृष्टि आप पर रखेंगे.....। इस प्रकार समय–समय पर धीरज बंधाती और माजी महाराज को आश्वस्त करती जिससे उनको बड़ी शांन्ति और समाधि का अनुभव होता।

साझीवाल

सं. 1994 में जब आचार्यश्री तुलसी की संसारपक्षीया माता वदनांजी ने दीक्षा ली तब एक दिन नींद टूटते ही मातुश्री छोगांजी ने अपनी जिज्ञासा रखते हुए कहा – खूमांजी! पूजी म्हाराज री मां दीख्या ली है, वां नै मैं के नाम स्यूं बतलास्यूं? साध्वी खूमांजी ने समाधान की भाषा में कहा – साझीवाल। यह सम्बोधन मातुश्री छोगांजी के ऐसा जंचा कि जब भी मातुश्री वदनांजी को कुछ कहना होता साझीवाल कहकर पुकारती। एक बार आचार्यश्री तुलसी ने मातुश्री छोगांजी को पूछा – आप वदनांजी को साझीवाल कैसे कहतीं हैं? वे आपके बराबर थोड़े ही है?

मातुश्री छोगांजी ने कहा – मैं आचार्य श्री कालूगणी की मां हूँ तो ये आचार्यश्री तुलसी की मां है, इसलिए मेरी साझीवाल है। मातुश्री वदनांजी दीक्षित होकर पहली बार बीदासर पधारी तब मातुश्री छोगांजी ने – पधारो साझीवाल कहकर स्वागत किया तथा आसपास के वातावरण में फैले भ्रान्ति के कुहासे को दूर कर दिया। इसके पीछे सूझबूझ साध्वी खूमांजी की थी। मातुश्री छोगांजी साध्वी खूमांजी के लिए सबकुछ थी और मातुश्री वदनांजी उनकी संसारपक्षीया सगी मामीसास थी। उन्होंने दोनों माताओं के सम्मान और गरिमा को सदा बढाने का प्रयास किया और उसे अपना कर्त्तव्य माना।

गुरु के प्रति सहज समर्पण

साध्वी खूमाजी के खून में गुरु इंगित की आराधना के गहरे संस्कार थे। वे गुरु के मुख से निकले एक एक शब्द को सफल बनाना अपना दायित्व समझती थी। उसके सामने वैयक्तिक कठिनाई को वे गौण मानती थी। सं. 2021 में उनका चातुर्मास ब्यावर था। उस समय उनकी अनुगामी साध्वी पानकुमारीजी को आचार्यवर ने टॉडगढ चातुर्मास करने का आदेश दिया। उन्होंने ऐसे क्षणों में कभी ननु न च नहीं

किया, प्रत्युत अहोभाव प्रकट करती हुई कहती – मेरे पर गुरुदेव की कृपा है तभी मुझे याद किया है। ऐसे अवसर उनके जीवन में कई बार आए, कभी सहगामी साध्वी को चाकरी में भेजा, कभी चातुर्मास करने अन्यत्र भेजा अर्थात् जब जब संघ को अपेक्षा हुई, उन्होंने अपना विसर्जन किया। यद्यपि कभी–कभी लोग या सतियां कुछ कह देतीं तो स्पष्ट शब्दों में कहतीं – देखो, सतियां मेरी कहां है, मैं स्वयं संघ की हूँ। शासन में काम पड़े और गुरुदेव जो भी आदेश दें वे सबके हित में होता है। हम तुच्छ बुद्धिवाले क्या समझे। गुरु की सोच विशाल होती है महान होती है, हमें तो उसका पालन करना चाहिए।

खूमांजी से क्षमाश्रीजी

उनका सौम्य स्वभाव, शालीन व्यवहार तथा उपशमभाव उनके साथ रहने वाली साध्वियों को तथा जहां–जहां उनका प्रवास होता वहां के श्रावक समाज को विशेष प्रभावित करता। सं. 2015 में उनका चातुर्मास छापर में था। उस चातुर्मास में उनका विराजना चान्दमलजी चौरडिया के मकान में हुआ। जब वे छापर से विहार करने लगी, चौरडियाजी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा – आपका नाम खूमांजी नहीं, खिम्यांजी होना चाहिए था। पास में खड़ी साध्वियों ने पूछा क्यों? उन्होंने निवेदन किया – इस प्रवास काल में मैंने साध्वीश्री को निकटता से परखने का प्रयत्न किया है। कभी भी इनके चेहरे पर उत्तेजना नहीं देखी। हर परिस्थिति में धैर्य, शान्ति और सहनशीलता इनकी खण्डित नहीं होती। बोली में कभी कटुता नहीं आई। सचमुच यह इनकी साधना की ऊँचाई है। यही निवेदन चान्दमलजी ने आचार्यश्री तुलसी के सामने किया। आचार्यश्री ने चौरड़ियाजी की बात पर अपनी मोहरछाप लगाते हुए कहा – इनको खिम्याजी क्यों क्षमाश्रीजी भी तो कह सकते हो।

वे एक बार बीदासर में गोचरी गईं। जिस घर से वे भिक्षा ले रही थी, उस घर की बहिन बड़ी हठमनुहार के साथ द्रव्य लेने का आग्रह करने लगी। बहिन ने सोचा पात्री हाथ में ले लूं, तभी पात्री के कई टुकड़े हो गए। बहिन अत्यन्त उदास और चिन्तित हो गई। बहिन की भयभीत मानसिकता देखकर साध्वी खूमांजी ने बड़े शान्त भाव से कहा – "पदार्थ विनाश धर्मा होता है, एक दिन नष्ट होता ही है। तुम घबराओ मत। साध्वीजी की आश्वस्त करने वाली वाणी सुन बहिन ने संतोष का अनुभव किया और शिक्षा ग्रहण की कि हर स्थिति में शान्त रहने वाला ही सुखी रह सकता है।"

निस्पृह मनोवृत्ति

एक बहिन अपनी प्रकृति से लाचार थी। वह जब भी मौका मिलता निन्दात्मक वार्ता करने से चुकती नहीं थी। एक बार वह बहिन साध्वी खूमांजी से रूष्ट हो गई और उनके विषय में अंटसंट बोलने लगी। उस समय वहां एक समझदार अनुभवी बहिन बैठी थी। उसने बहिन को विवेक देते हुए कहा – बाई! मुझे लगता है तुम साध्वी खूमांजी की विशेषताओं से अपरिचित हो। ये हमारे धर्मसंघ की अनुभवी गंभीर और संघनिष्ठ साध्वी हैं। इनकी गंभीरता इतनी है कि मंत्रीमुनि की भांति इनसे बात निकालनी मुश्किल है। बहिन के कथन का प्रतिकार करते हुए साध्वीजी ने कहा – कहां मंत्रीमुनि और कहां मैं। मंत्री मुनि की उपमा सब जगह नहीं लग सकती। वे तो एक ही थे, मैं तो उनके पदरज की तुलना में भी नहीं हूँ। इस प्रकार निस्पृह और संघ समर्पण की बात सुन वह रूष्ट बहिन पानी–पानी हो गई और उसे लगा इनकी आलोचना कर मैंने भयंकर गलती की है। वह तत्काल आत्मगर्हा करती हुई साध्वीजी के चरणों में गिर पड़ी।

जब वे राजलदेसर में प्रवास कर रहीं थीं। उस समय उनकी अवस्था बंयासी वर्ष की थी। एक दिन वहां के श्रावकों ने कहा – आप धरती पर विराजती हैं। दर्शन करने वाले जब–जब ज्यादा हो जाते हैं, तब दर्शनों में असुविधा होती है, इसलिए उस समय आप बाजोट पर विराज जाएं तो.....। साध्वी खूमांजी ने बड़ी सहजता से कहा – आपका कहना ठीक है, ऐसे समय पर मैं खड़ी हो जाऊंगी, जिससे सबको दर्शन करने में सुविधा रहेगी। एक बंयासी वर्षाया वयोवृद्धा साध्वी के मुख से निस्पृहता भरी बात सुन श्रावकों को गौरव की अनुभूति हुई और वहां खड़ी साध्वियों को निरभिमानता की प्रेरणा मिली।

वाक् कौशल

एक बार एक छोटी साध्वी के हाथ से कई नई पात्रियां और कई कलात्मक टोपसियां टूट गई। सहवर्तिनी साध्वियों ने जहां सजग करते हुए सावधान रहने के लिए कहा, तो किसी ने यह भी कह दिया – देखो कितनी मेहनत से पात्रियां रंगी थी और तुम्हारी असावधानी से सारा श्रम बेकार हो गया। यही बात जब साध्वी खूमांजी को ज्ञात हुई उन्होंने कहा – नानकी! तुम चिन्ता मत करना। ये तो जड़ पात्रियां ही थी। मनुष्य भी चले जाते हैं। काम में लेनी है, इन्हें भी सांधकर काम में लिया जा सकता है। साध्वीजी के वात्सल्य भरी वाणी सुन बाल साध्वी खुश हो गई।

गुणग्राहक मनोवृत्ति

जब कभी उनके सामने गुणीजनों के गुणगान का प्रसंग आता वे खुले दिल से प्रमोद भावना का उपयोग करती। एक बार संघीय वरिष्ठ श्रावक ने प्रसंगोपात्त कहा – खूमांजी महासतीजी! आपकी क्या बात करें, आपने महाप्रतापी कालूगणिराज की माता की सेवा की है और बीदासर जैसे क्षेत्र को लम्बे समय तक कुशलता के साथ परोटा है। सुनते ही साध्वी खूमांजी बोली – भाई! मैंने क्या सेवा की है, सेवा का कौशल देखना हो तो साध्वी संतोकांजी को देखो। वे मातुश्री वदनांजी की कितनी सेवा कर रही है। साध्वी खूमांजी तो माजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हो गई। मैं क्या हूँ यह संघ रत्नों का भंडार है। आप लोग कहते हैं आपको कितनी कितनी पुरानी बातें याद है। याद रखने में प्रथम नम्बर साध्वीश्री लाडांजी और साध्वी पारवतांजी। उनके पास बैठकर सुनो तब पता चलेगा। तपस्या के सन्दर्भ में साध्वी नोजांजी (सरदारशहर) साध्वी हुलासांजी (सिरसा) साध्वी पन्नांजी (देरासर) साध्वी अणंचाजी (श्रीडूंगरगढ) ऐसे नाम है जिनकी तपस्या की लम्बी चौड़ी तालिका सुनकर मन में बड़ी प्रसन्नता होती है। जब भी प्रसंग आता उनके अधरों पर गुणग्राम गूंजते ही रहते।

विनयशीलता

बचपन से लेकर अंत तक गुरु आज्ञा अथवा बड़ों का निर्देश उन्होंने तहत् कहकर स्वीकार किया। कभी अपनी दुर्बलता अथवा मानसिकता उन्होंने व्यक्त नहीं की। जब वे बीदासर माजी महाराज के उपपात में गई : साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी ने उनको व्याख्यान देने का निर्देश दिया। उस समय व्याख्यान देने का अभ्यास था नहीं, सुनते ही भय से कांपने लगी पर तहत् कहकर स्वीकार कर लिया। उनको मना करना स्वीकार नहीं था या यह कहें मना करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। वे तैयारी के लिए बीदासर की तत्त्वज्ञ श्राविकाओं का सहयोग लेती, फिर दीवार के सामने खड़ी होकर बोलने का अभ्यास करती फिर परिषद में जाकर व्याख्यान देती। उसके बाद सतियों के पास व्याख्यानोचित सामग्री तैयार करते करते एक दिन बहुत अच्छा व्याख्यान देने लगी। जिसका प्रमाण है बीदासर के श्रावक। वे व्याख्यान–रसिक और परीक्षक थे। उन लोगों को साध्वी खूमांजी का व्याख्यान पसन्द था।

श्रमशीलता

उनका पुरुषार्थ में विश्वास था। अपना काम बन सके जहां तक हो स्वयं करूं

यह उनका संकल्प था। अपना कार्य जहां तक बन सकता स्वयं करती। लगभग 73 वर्ष की अवस्था तक वे व्याख्यान देतीं और गोचरी करतीं। कभी कभी कोई श्रावक श्राविका कह देते – महाराज! आपको सात सतियां बक्सीस में मिली हुई है, फिर भी आप अभी तक गोचरी क्यों करती है? वे बड़ी मधुरता के साथ उत्तर देतीं – मैं गोचरी इसलिए नहीं करती कि मेरे पास साध्वियां गोचरी करने वाली नहीं है। घूमने फिरने से स्वास्थ्य में हल्कापन रहता है, भूख अच्छी लगती है, लोगों से सम्पर्क रहता है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात मेरे कर्मनिर्जरा होती है।

श्रावक समाज को आत्मीयता के धागे में बांधकर रखने में वे दक्ष थी। कोई भी दर्शन करने आता तो उनसे बातचीत करना, आध्यात्मिक प्रेरणा देना वे अपना कर्त्तव्य समझती थीं। यदि कोई बीमार होता तो दर्शन देने तत्काल पहुंच जाती। उनके शरीर में आलस्य का नामो निशान नहीं था।

साध्वी खूमांजी की जितनी गुरु के प्रति आस्था और समर्पण भाव था, उतनी ही आत्मनिष्ठा थी। वे अपनी आत्मा की स्मृति हर समय रखती थी। जहां कहीं और जब कभी उनके मन में गुरु के प्रति, साधुत्व के प्रति अथवा अन्य किसी प्रकार का अन्यथा भाव आता। वे निशल्य बनकर प्रायश्चित्त करती और सरलता के साथ अपनी बात सबके सामने प्रस्तुत कर देती।

सं. 2023 का उनका चातुर्मास तारानगर था। उस वर्ष का मर्यादा महोत्सव बीदासर में था। चातुर्मास सम्पन्न होते–होते आचार्यवर ने उनको राजगढ जाने का आदेश दे दिया। उस समय राजगढ में साध्वियां बीमार थी। मर्यादा महोत्सव के समय गुरु–सन्निधि में जाने की उत्कट इच्छा होने के कारण साध्वी खूमांजी सहित सभी साध्वियों को राजगढ रुकना अच्छा नहीं लगा। कुछ समय बाद आचार्यवर ने कुछ साध्वियों के साथ साध्वीजी को बीदासर आने का आदेश दे दिया। साध्वी खूमांजी, पानकंवरजी और फूलकंवरजी तीनों विहार कर चूरू जा रही थी। शाम को तीन माइल का विहार किया और गांव आया सात माइल पर। गांव रेतीले टीलों से घिरा हुआ था। वे ज्योहीं गांव के बाहर पहुंचीं, एक कूदती फांदती गाय आई। विहार की थकान और गाय के डर से साध्वी खूमांजी की धड़कन तेज हो गई और हार्ट में दर्द का अनुभव होने लगा। मुश्किल से पांच मिनिट दिन अवशेष था तब गांव में पहुंचीं। सबसे पहले उन्होंने दोनों साध्वियों के सामने अपने आपको हल्का करते हुए दिल खोला – "बाई! आज म्हारै मन में गुरु कै प्रति अविनय का भाव आयाः बीं रो परिणाम है कि इत्ती तकलीफ हुई। गुरु तो महान है, आपां नै जरूरत स्यूं रोक्या।

पण छद्मस्थता रै कारण मन में आई। मैं पवित्रता कै सागै गुरुदेव स्यूं खमत ख़ामणा करूं और अविनय आशातना का भाव आया, बांरो प्रायश्चित्त लेस्यू।।"

स्पष्टवादिता

आचार्यश्री तुलसी ने संघीय विकास की दृष्टि से विविध आयामी प्रयोग किए। उनमें एक प्रयोग था – व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण। सं. 2020 के मर्यादा महोत्सव पर साध्वी समाज में निकाय व्यवस्था लागू की और चार साध्वियों को चार व्यवस्था का दायित्व सौंपा। एक दिन साध्वी खूमांजी आचार्यवर की सेवा में बैठी थी। आचार्यवर ने उन्हें सम्बोधित कर पूछा – खूमांजी! यह व्यवस्था कैसी लगी? उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा – गुरुदेव! मुझे अच्छी नहीं लगी।

आचार्यवर ने कहा – क्यों? साध्वी खूमांजी ने सीधी सरल भाषा में उत्तर दिया – हमने तो एक का अनुशासन देखा है और एक को ही सुना है। हमारे संस्कारों में यही गहराई से जमा हुआ है।

आचार्यवर ने समझाते हुए कहा – व्यवस्था तो एक की ही रखेंगे पर प्रयोग करके देखते हैं कि कैसा रहता है।

साध्वी खूमांजी ने विनम्रता के साथ कहा – आपका चिन्तन महान है पर मैं आपको विश्वास के साथ कहती हूँ कि साध्वी–समाज साध्वीप्रमुखा के कुशल संरक्षण से हरा–भरा और फला–फूला है। अच्छा विकास कर रहा है। साध्वीप्रमुखाजी भी बड़े हेज और वात्सल्य के साथ सबको संभाल रही है। क्या आपके पास कोई शिकायत आई है?

आचार्यवर ने कहा – न तो कोई शिकायत आई है और न कोई किसी का अन्यथाभाव है। मात्र एक प्रयोग है।

एक बार मंत्री मुनिश्री मगलमलालजी और आचार्यश्री वार्तालाप कर रहे थे। आचार्यवर ने मंत्रीमुनि से कहा – अग्रगामी साध्वी के दिवंगत होने के पश्चात उनकी सहयोगिनी साध्वी अग्रगामी बने ऐसा प्रयत्न चलता है। ऐसी परम्परा साधुओं में नहीं है। उस समय साध्वी खूमांजी वहीं बैठी थी। उन्होंने तत्काल खड़ी होकर स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा – यह भावना संतों में होगी कैसे? हमारी सतियां जैसे संतों के कितने सिंघाड़े हैं जो जिन्दगी भर साथ रहे हैं। जिन सिंघाड़ों की साध्वियों में 40–50 वर्षों से परस्पर समाधि बनी हुई है, वह वैसी ही रह सके और गुरुदेव को मेहनत न करनी पड़े यही इसके पीछे हमारी भावना रहती है और इसीलिए हम

श्रीचरणों में प्रार्थना करते हैं।

आदेश शिरोधार्य है

सं. 2023 आचार्यवर श्री गंगानगर की यात्रा कर सरदारशहर पधारे। उस समय साध्वी खूमांजी ने वहां आचार्यवर के दर्शन किए। आचार्यश्री ने उनसे कहा – खूमांजी! इस बार तुमको यहीं रखने का विचार है। सुनते ही उन्होंने विनयभाव से निवेदन किया – गुरुदेव! सरदारशहर के अलावा आपकी जहां मर्जी हो कृपा कराएं। मुझे सरदारशहर का डर लगता है।

आचार्यवर ने कहा – सरदारशहर के लिए छोटे छोटे साधु साध्वियां भी तैयार रहते हैं और तुम मना करती हो। आचार्यवर के उपपात में बैठे मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) ने साध्वीजी की बात सुनते ही कहा – आज तो नई बात सुनी है। वहीं नेमीचंदजी गधैया खड़े थे। उन्होंने कहा – आप हमारे क्षेत्र के लिए मना क्यों कर रही है? फिर उन्होंने निवेदन किया – गुरुदेव! क्या कारण है – पहले मंत्रीमुनि ने भी सरदारशहर के लिए मना किया था। साध्वीप्रमुखा जेठांजी ने मना की और आप भी इन्कार कर रही है।

सभी की बातें सुनकर मुस्कुराते हुए आचार्यवर ने पूछा – अगर हम यहां तुमको रख ही दें तो.....। साध्वीजी ने सहजता से कहा – फिर तो रहना ही है आपका हर आदेश मुझे शिरोधार्य है। आचार्यवर ने निष्कर्ष की भाषा में कहा – खूमांजी! तुम्हारा जैसा समर्पण है, उसे देखकर जहां तुम्हारा मन नहीं होगा, वहां नहीं भेजेंगे। इसलिए इस वर्ष तुम चातुर्मास तारानगर करो।

संयम साधना और जागरूकता

साध्वी खूमांजी निर्मलचित्त, स्थिरयोगी एवं अनाशंसी मनोवृत्ति की साध्वी थी। अपना अधिकांश समय स्वाध्याय ध्यान, जप आदि में व्यतीत करतीं। वे पापभीरु थीं, अपनी गलती का परिष्कार करने में सदा तत्पर रहती। एक दिन साध्वी फूलकुमारीजी (लाडनूं) ने विनम्रता के साथ निवेदन किया साध्वीश्री! आप यदि प्रतिक्रमण सुन लें तो दो फायदें होंगे। पहली बात मुझे आपको प्रतिक्रमण सुनाने का अवसर मिलेगा। दूसरी बात वृद्धावस्था या शरीर की प्रकृति के कारण शाम के समय आपको हलकी–सी तन्द्रा घेर लेती है इसलिए प्रतिक्रमण भी ठीक होगा। उन्होंने तत्काल कहा – देख आज मुझे प्रतिक्रमण में नींद आ जाए तो प्रायश्चित्त स्वरूप पन्द्रह मिनिट खड़ी रहूंगी। इसी प्रकार एक दिन साध्वी फूलकुमारीजी ने प्रश्न की भाषा में पूछा –

क्या इस बार कार्तिक में आपको 85 वां वर्ष प्रारंभ हो जाएगा? उन्होंने भाषा समिति की पूर्ण सावधानी बरतते हुए कहा – बाई! मुझे यह तो पता नहीं लगेगा या नहीं लेकिन अभी 84 वां वर्ष चल रहा है। यह निर्विवाद सत्य है।

जब जब आचार्यवर का सान्निध्य मिलता, वे समय लेकर छोटी बड़ी जान अनजान में हुई स्खलना का प्रायश्चित्त करना नहीं भूलती। कभी–कभी तो बहुत पहले की गई गलती का स्मरण हो जाता और उन्हें लगता कि उसका प्रायश्चित्त किया या नहीं, स्मृति नहीं होती तो पुनः पुनः प्रायश्चित्त लेकर हल्की होने का प्रयत्न करती। किसी साध्वी या अन्य किसी व्यक्ति के प्रति अन्यथा भाव आ जाता तो खमत खामणा करना नहीं भूलती। सरलता और निर्मलता के साथ अपनी बात कह देती। एक बार एक साध्वी के प्रति उनके मन में उच्चावच भाव आ गया। कुछ समय बाद उन्होंने उसे अपने पास बुलाया, निकट बैठाकर आत्मीयता के साथ कहा – "बाई! तुम्हारे प्रति मेरे मन में ऐसे विचार आ गए। हो सकता है यह सही न हो, मै आज तुम्हारे सामने शुद्ध अंतःकरण से इसका प्रायश्चित्त लेती हूँ और सरलभाव से तुम्हारे से भी खमत खामणा करती हूँ।

निरभिमानता

आचार्यों से अत्यन्त कृपा, वात्सल्य और सम्मान प्राप्त करने वाली साध्वी खूमांजी अपनी सारी सफलता का श्रेय आचार्यत्रयी – आचार्यश्री डालगणी, आचार्यश्री कालूगणी और आचार्यश्री तुलसी को देती थी। उसके बाद मातुश्री छोगांजी और साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी के सन्दर्भ में वे कहती मेरे पास जो कुछ है अथवा मैं जो कुछ हूँ उनका प्रताप है। उन्होंने जितना विशाल लेखन कार्य किया उसकी प्रेरणा स्त्रोत थी – साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी। एक बार साध्वीप्रमुखा ने उनको लिखने के लिए प्रेरित किया। साध्वी खूमांजी ने लिखना शुरु किया और बीच में ही छोड़ दिया। जब यह सूचना साध्वीप्रमुखा तक पहुँची, आपने स्पष्ट शब्दों में कहा – खूमांजी! आज स्यूं थारै स्यूं बोलणै रा भाव कोनी" इस घटना ने ऐसा प्रभावित किया कि – लिखने की विधि से अनजान साध्वी संघ की श्रेष्ठ लेखिका बन गई।

सं. 2036 पौष कृष्णा अष्टमी (द्वितीय) तक लगभग साढे आठ साल प्रवास किया। उनकी तथा उनकी सहयोगी साध्वियों की प्रेरणा से राजलदेसर में अच्छा रंग जमा तथा त्याग तप ज्ञान ध्यान की अच्छी वृद्धि हुई। वहां की महिलाओं ने तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अच्छा विकास किया। कुल मिलाकर कहा जा सकता है राजलदेसर के आबाल वृद्ध युवा साध्वी खूमांजी के उपकारों के प्रति सदा ऋणी रहेगा।

उनके प्रवास काल में श्रावक श्राविकाओं में कई ऐतिहासिक संथारे सम्पन्न हुए। जिनमें रावतमलजी दूगड़, पूनमचंदजी सुराणा तथा पारीदेवी का विशेष उल्लेखनीय है जो क्रमशः 39, 74 तथा 33 का हुआ।

उनके स्थिरवास काल की सर्वोपरि उपलब्धि थी कि आचार्य तुलसी ने सं. 2034 का बृहद मर्यादा महोत्सव राजलदेसर में किया और उस अवसर पर युवाचार्य महाप्रज्ञजी का मनोनयन हुआ। जो कार्य अष्टमाचार्य कालूगणी अपनी माता साध्वी छोगांजी को नहीं दिखा सके वह कार्य आचार्य तुलसी ने साध्वी खूमांजी को दिखा दिया।

अंतिम अवस्था और अनशन

सं. 2036 मृगसर शुक्ला 3 को रात्रि के लगभग सवा आठ बजे साध्वी खूमांजी साध्वी राजकुमारीजी के सहारे से उठ रही थी कि अचानक पैर फिसल गया। बांए कुल्हे के जोड़ में भयंकर चोट आई। विविध आयामी उपचार के बावजूद वेदना गंभीर रूप लेती गई। सांस के साथ ही पैर में भयंकर पीड़ा होने लगी। सूजन इतनी बढ़ गई कि पैर को हिलाना मुश्किल हो गया। धीरे-धीरे चोट ने सेप्टिक का रूप ले लिया। जिसे देखकर दर्शकों का दिल भी कांपने लगा। लेकिन साध्वी खूमांजी चट्टान की तरह अडोल बन वेदना को सहन करती रही। उनका मनोबल दृढ़ था और समता भाव प्रबल बना रहा। ऐसी घोर वेदना की स्थिति में उन्हें पीड़ा का ज़ितना विचार नहीं था उससे अधिक परवशता का विचार बार-बार उनको व्यथित करता था। वे इस संदर्भ में कहतीं- ''म्हारै बहत्तर वरस रै संयम-जीवन में कदेई इत्तो जप, स्वाध्याय और ध्यान में विघ्न कोनी आयो, न जाणै किसे भव रा संचित कर्म उदय में आया है।''

पौष कृष्णा पंचमी को सांय उनकी वेदना पराकाष्ठा तक पहुंच गई। जिसके परिणाम स्वरूप बारह घंटों तक वे कभी होश में रही, कभी बेहोशी में रही। दूसरे दिन भी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। सहगामी साध्वियों ने स्थिति की गंभीरता देखी, नाड़ी बहुत कमजोर थी, ब्लडप्रेशर भी कम थे तब उन्होंने अनशन के लिए निवेदन किया। साध्वी खुमांजी ने भयंकर वेदना से आक्रात्त होने पर भी विवेक की भाषा में कहा- ''संथारै रो काम करडो है, बातां स्यूं कोनी हुवै। साध्वी रतनवतीजी कांई कह्यो, थांनै याद कोनी के?''

दूसरे दिन पुनः अनशन का प्रसंग चल पड़ा। साध्वी खूमांजी ने साध्वियों से

कहा- मुझे बैठा दो और आराधना सुनाओ। दो घंटे तक शांति से आराधना सुनी, फिर महाव्रतों का पुनरुच्चारण किया और वहां उपस्थित सभी भाई बहिनों से खमतखामणा किया। उसी रात्रि में साध्वियों को सम्बोधित कर कहा-''जब मैं हाथ ऊँचा करूं तो बैठा देना, जब नीचा करूं तो सुला देना।'' साध्वियों ने पूछा- अनशन की भावना है क्या? उन्होंने उत्तर दिया- अवसर आयां। साध्वियां पुनः बोली- अवसर कब आएगा? अस्पष्ट भाषा में उन्होंने कहा- 'एक दिन, एक दिन।' साध्वियों ने सोचा शायद एक-एक दिन का प्रत्याख्यान करेंगी। उनके कहने का तात्पर्य था एक दिन का संथारा आएगा। प्रातः पांच बजे साध्वीजी ने संथारे की स्वीकृति दी और तीन अंगुली से संकेत किया तिविहार अनशन कर दो। उसी समय साध्वी राजकुमारीजी ने विधिपूर्वक अनशन पचखा दिया। दिन में लगभग बारह बजकर 34 मिनिट पर उन्होंने चौविहार अनशन कर लिया। उसके पश्चात वे पादोपगमन अनशन की स्थिति में रहे, न हिले और न डुले। वे शान्त मुद्रा में ध्यानस्थ सोई रही और सांय ठीक 8 बजते ही स्वर्ग की ओर प्रयाण कर दिया। बहत्तर वर्ष के दीर्घ संयमी जीवन पर अनशन का स्वर्ण कलश चढाकर साध्वी खूमांजी धन्य-धन्य बन गई। उनकी कुल आयु 88 वर्ष की थी।

अनशन की सम्पन्नता से एक मुहुर्त्त पूर्व सात बजकर दस मिनिट पर यहां का सारा वातावरण विभिन्न प्रकार की सौरभ से महक उठा। वहां उपस्थित प्रायः सभी लोगों ने इसका अनुभव किया। जिस समय साध्वीजी का स्वर्गवास हुआ उसी समय आकाश में लम्बी प्रकाशधारा पश्चिम से पूर्व की ओर जाती दिखाई दी। राजलदेसर के लोगों ने तो उसे देखा ही, वहां से 20 किलोमीटर की दूरी पर साध्वी श्री नजरकुमारीजी आदि साध्वियों ने भी देखा। साध्वी नजरकुमारी जी तथा साध्वी खूमांजी माजी महाराज के पास वर्षों तक साथ रही थी। वे उनके लिए ही राजलदेसर आ रही थी। अचानक प्रकाश धारा को देख वे मन ही मन चिन्तन कर रही थी- 'साध्वी खूमांजी के दर्शन कैसे होंगे? उसी समय 'मत्थेण वंदामि' की आवाज सुनाई दी। उन्होंने मन ही मन निश्चय हो गया कि साध्वीजी का स्वर्गवास हो गया है।

साध्वी नजरकुमारीजी ने बीदासर से विहार किया है यह संवाद सुनकर साध्वी फूलकुमारीजी ने पूछा- क्या साध्वी नजरकुमारी जी के दर्शन हो जाएंगे? उन्होंने हाथ से ऐसे संकेत किया और कुछ अस्पष्ट शब्द भी कहे, जिसका भाव यही था कि दर्शन नहीं होंगे।

उनकी शोभायात्रा में आस-पास के दस पन्द्रह गांवों के लोग पहुंच गए और राजलदेसर वासियों ने बड़े ठाठ बाट एवं उत्साह के साथ किया। उनकी स्मृति-सभा में आचार्य तुलसी ने गीत का संगान किया जो उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को अभिव्यक्ति देता है। एक आचार्य के द्वारा एक साध्वी के विषय में लिखना भी अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण बात है।

लय-लावणी

उपनाम क्षमाश्री खूमांसती सुश्हाई।
श्री डालिम गणिवर-कर स्यूं दीक्षा पाई॥

1. जो क्षमा धर्म की बणी स्वयं प्रतिमूर्ति,
   जो विनय विवेक विमलतामयी त्रिमूर्ति।
   कालू गणिवर की कृपा-पात्र कहलाई॥
2. गुरु माता छोगांजी की सेवा साझी,
   सेवा सेवा में जीती जीवन बाजी।
   अति पापभीरु परतख प्रगटी पुण्याई॥
3. तुलसी बरतारे विचरी आगेवाणी,
   गणि-गुण-गुण गाती बतलाती मृदुवाणी।
   अध्यात्म धर्म री आभा खूब बढ़ाई॥
4. स्थिरवास रही राजलेदसर राजाणै,
   पुर जन प्रसन्न मन अपणो भाग बखाणै।
   अनशन पूर्वक छत्तीसै स्वर्ग सिधाई॥
5. एकान्तर तप अति निर्मल निरुपम संयम,
   अकषाय भावसह अनुपम सम दम उपशम।
   'तुलसी' री सतिवर सौ. सौ बार बधाई॥

19. साध्वी सुखदेवांजी (लाडनूं) (702)

साध्वी सुखदेवाजी की गणना उन विरल साध्वियों में कर सकते हैं जिन्हें नियति ने जन्म, विवाह, दीक्षा और स्वर्गवास – ये चारों उत्सव लाडनूं की धरती पर ही मनाने का मौका दिया। चार में से तीन मौके – जन्म, दीक्षा, और स्वर्गवास कार्तिक महीने में हुए।

साध्वी सुखदेवांजी लाडनूं के चौरड़िया परिवार में जन्मी। उनका जन्म लाडनूं में सं. 1942 कार्तिक कृष्णा अमावस को हुआ। उनका विवाह लाडनूं के पगारिया परिवार में हुआ। उनके पति का नाम मंगलचंदजी था। उन्होंने पति के स्वर्गवासी होने पर सं. 1965 कार्तिक कृष्णा एकम को सप्तमाचार्यश्री डालगणी से संयम रत्न प्राप्त किया। साध्वी सुखदेवांजी ने बहुत बड़ी बड़ी तपस्याएं नहीं की, पर विविध तप त्याग के द्वारा अपना 56 वर्षीय साधना काल सफल और सार्थक बनाया। स्वाध्याय के प्रति उनका अच्छा अनुराग था।

साधारणतया आम आदमी कर्मचूर तप उपवास बेले आदि की तपस्या से करते हैं उन्होंने कर्मचूर तप एकासन से किया और एकासन के ही बेले तेले आदि किए। उस तप में उनके 1560 एकासन हुए। सं. 1986 से उन्होंने एक दिन में दो विगय से ज्यादा विगय नहीं खाई। सं. 2013 से घी खाने का त्याग किया। वे प्रतिदिन 'लोगस्स' की एक माला जपती थी एक माला में लगभग 756 गाथाओं का स्वाध्याय होता है। उनकी तपस्या का आंकडा निम्न है –

उपवास	–	2591	छह	–	1
बेला	–	77	सात	–	1
तेला	–	6	आठ	–	1
चौला	–	4	नौ	–	1
पंचोला	–	6			

अन्तिम अवस्था में वे लाडनूं सेवाकेन्द्र में वर्षों तक स्थिरवासी रही। सावन महीने में उन्होंने संलेखना तप प्रारंभ किया। 24 दिन की संलेखना की और उसके बाद आजीवन तिविहार अनशन स्वीकार कर लिया। 44 दिन का अनशन आया। तपस्या के 68 वें दिन सं. 2021 कार्तिक कृष्णा 14 को वे पण्डित मरण को प्राप्त हो गईं। संथारे में उनकी भावधारा उज्ज्वल और मनोबल बड़ा दृढ रहा जिससे भैक्षव शासन की बड़ी प्रभावना हुई।

20. साध्वी भूरांजी पुर (704)

साध्वी भूरांजी मेवाड़ के पुर गांव की पुत्रवधु थी। उन्होंने सं. 1965 में पति के देहान्त होने के बाद वैराग्यभाव से सप्तमाचार्य श्री डालगणी के कर–कमलों से लाडनूं में संयम स्वीकार किया। तपस्या प्रधान जीवन जीकर संयम की सुषमा को शतगुणित की और महान कर्म निर्जरा कर अपने आपको धन्य बनाया। अंतिम समय सं. 2020 भाद्रव शुक्ला ग्यारस को वे अचानक दिवंगत हुई, पर सेवाकेन्द्र व्यवस्थापिका साध्वीश्री मोहनकुमारीजी (राजगढ़) की जागरूकता से उन्हें 30 मिनिट का संथारा भी आया। उस वर्ष नवमाचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास लाडनूं था, इसलिए गुरु चरणों के महातीर्थ में उन्हें जीवन यात्रा सम्पन्न करने का स्वर्णिम अवसर मिला। उनकी तपः साधना की तालिका इस प्रकार है –

उपवास	–	3400	तेरह	–	1
बेला	–	428	चौदह	–	1
तेला	–	125	पन्द्रह	–	2
चौला	–	57	सोलह	–	1
पंचोला	–	54	सतरह	–	1
छह	–	2	अठारह	–	1
सात	–	2	उन्नीस	–	1
आठ	–	8	बीस	–	1
नौ	–	1	इक्कीस	–	1
दस	–	1	पचीस	–	1
ग्यारह	–	1	तीस	–	1
बारह	–	1			

सं. 1997 से 2020 तक उन्होंने अनवरत एकान्तर तप किया।

21. साध्वी हुलासांजी (सरदारशहर) (708)

साध्वी हुलासांजी का जन्म संवत 1948 फाल्गुन 11 को सरदारशहर के पींचा परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम भीखणचंदजी तथा माता का नाम जुहारीदेवी था। वे बचपन से ही विनय विवेक सम्पन्न थी। दस वर्ष की अल्पायु में उनका विवाह सरदारशहर के सुप्रतिष्ठित परिवार में श्रीचंदजी गधैया के सबसे छोटे पुत्र उदयचंदजी के साथ हुआ। गधैया परिवार की तेरापंथ धर्मसंघ में विशिष्ट पहचान है। उनके श्वसुर श्रीचंदजी धर्मनिष्ठ शासनभक्त श्रावक थे। वे सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। एक शब्द में कहा जाए तो आदर्शपुरुष थे। उनकी सास कुनणीदेवी भी दृढ़धर्मिणी और श्रद्धाशील श्राविका थी। बहिन हुलासां का सौभाग्य था कि उन्हें धार्मिक और धन-सम्पत्ति से सम्पन्न भरापूरा परिवार मिला। सभी तरह से अनुकूल वातावरण था पर विधि कब अपना रूप बदल लेती है। कोई जान नहीं पाता। विवाह को हुए मात्र 13 महीने ही हुए थे कि उनके पति उदयचंदजी की मृत्यु हो गई। एक बारह वर्षीया बालिका जन्म और मृत्यु शब्द का अर्थ भी नहीं समझ पाती उस हालत में पति वियोग के मायने भी वे शायद ही समझ पाई होगी पर घर का रुदन भरा वातावरण यह समझाने के लिए पर्याप्त था कि कुछ अघटित घट चुका है। उस स्थिति में कैसे रहना चाहिए? क्या करना चाहिए तथा भविष्य के लिए क्या करें उनकी समझ से परे था।

दोनों परिवार- पीहर और ससुराल का आत्मीयता और स्नेह भरे माहौल ने उन्हें आंतरिक शांति प्रदान की। सासू मां ने बड़े प्यार के साथ बाल वधू को संसार की नश्वरता का बोध कराया। कहते हैं कि वे पति के दिवंगत के बरस, डेढ बरस बाद तक वे ही कपड़े, गहने पहनती रही। धीरे-धीरे जब उन्हें महसूस हुआ सामाजिक रीति का, परम्परा का, तब उन्होंने अपनी वेशभूषा बदल ली और अतिरिक्त आभूषण उतार दिए।

पति वियोग के दु:खद क्षणों की अनुभूति ने संसार के प्रति सहज वितृष्णा के भाव जगाए और साधु साध्वियों की प्रेरणा तथा प्रवचन ने वैराग्य भावना जागृत की। उन्होंने धर्म का आलम्बन लिया और साधु साध्वियों की उपासना में अपना समय सार्थक करने लगी। सब उन्होंने अपनी वैराग्य भावना सास श्वसुर के सामने रखी, उन्हें विश्वास नहीं हुआ। क्योंकि बहू शारीरिक दृष्टि से कोमल थी और सातों सुखों में पली हुई थी। वे साधुजीवन की कठोर चर्या कैसे सहन कर सकेंगी, यह सन्देह था। इसलिए पुत्रवधु को आत्मकल्याण के मार्ग में आगे बढ़ने की इच्छुक देखकर मन में सात्विक प्रसन्नता हुई पर

कष्टों से मन भयभीत भी हुआ। एक दिन बातचीत के प्रसंग में उनके श्वसुर श्रीचंदजी ने कहा- साधु जीवन में वजन उठाना पड़ता है, क्या तुम उठा सकोगी? उस समय पुत्रवधुएं अपने श्वसुर से बात नहीं करती थी। बहिन हुलासांजी बिना कुछ कहे, वहां से उठी और पानी का भरा मिट्टी का घड़ा उठाकर ले आई। श्वसुर के सामने रखते हुए मौन भाषा में यह जता दिया कि- मैं वजन अच्छी तरह से उठा सकती हूँ।

फिर भी अभिभावकों का मन आश्वस्त नहीं हो रहा था। कहते हैं कि उन्होंने मन ही मन हुलासांजी के दिवंगत पति उदयचंदजी की स्मृति की और उन्हें आभास हुआ कि आत्मकल्याण के पथ बढ़ने का संकल्प फलवान होगा और सफलता मिलेगी। इतना आभास होने के बावजूद भी गधैया परिवार के सदस्य निर्णय नहीं ले पा रहे थे तभी उन्हें पुनः आभास हुआ कि संकट के समय याद कर देख लेना, मैं आपका सहयोग करूंगा। यह बात भी सौ प्रतिशत सही साबित हुई। लगभग पांच वर्ष तक विभिन्न प्रकार परीक्षण कर सास-ससुर ने दीक्षा की अनुमति दी।

दीक्षा संस्कार

साध्वी हुलासां की दीक्षा सप्तमाचार्य डालगणी के कर कमलों से लाडनूं में होनी निश्चित हुई। दीक्षा के उपलक्ष्य में गधैया परिवार और पींचा परिवार ने खूब महोत्सव मनाए। ठाटबाट से जुलूस निकाले और लाडनूं तथा सरदारशहर में समग्र बिरादरी के लोगों का भोज किया, जो महत्त्वपूर्ण बात थी। कहते हैं कि दीक्षा के अवसर पर श्वसुर पक्ष वालों ने बीस हजार रुपए खर्च किए।

वि.सं. 1965 मृगसर शुक्ला पांचम को हुलासांजी ने सतरह वर्ष की नाबालिग अवस्था में आचार्य श्री डालगणी के कर-कमलों से दीक्षा स्वीकार की। उनके साथ सरदारशहर की पांच अन्य बहिनों को भी दीक्षा लेने का अवसर मिला। उनमें से चार बहिनें हुलासांजी से अवस्था में बड़ी थी और एक बहिन छोटी थी। अवस्था के क्रम से उनका पांचवा नम्बर था। किन्तु डालगणी ने अनुग्रह कर साध्वीप्रमुखा जेठांजी को सर्वप्रथम साध्वी हुलासांजी का केश लुंचन करने को कहा और छह बहिनों में सबसे बड़ा रखा। आचार्यवर के द्वारा प्राथमिकता प्रदान करने का अनुग्रह स्वयं उनके लिए तथा परिवार के लिए गौरव की बात थी।

सप्तमाचार्य डालगणी की साध्वी हुलासांजी पर सहज कृपा थी। दीक्षा के समय आचार्यवर ने कृपा पूर्ण शब्द कहे- एक साथ छह बहिनों की दीक्षा का यह तेरापंथ

धर्मसंघ में यह पहला अवसर है। दूसरी बात सेठाणी (साध्वी हुलासांजी) अपने साथ सिंघाडा लेकर आई है। आचार्य तुलसी ने डालिम चरित्र में इनकी दीक्षा का इन शब्दों में उल्लेख किया है -

छव दीक्षा बलि सुद पांचम मन भावत,
श्रीचंद गधैया पुत्रवधु अति प्यारी।
हुल्लास हुलासां, मालू पींचा वारी।
सिंघाड़बन्ध अति शांत प्रकृति सुखकारी
तीजां भंसाली, परतापां पुनवानी
बालू बगतावर मां बेट्यां नहीं छानी

यद्यपि जिस समय साध्वी हुलासांजी की दीक्षा हुई, उन दिनों आचार्य श्री डालगणी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। फिर भी डालगणी स्वयं उनको अध्ययन की प्रेरणा देते तथा साधु जीवन का प्रशिक्षण देते। महासती जेठांजी की पावन सन्निधि में जागरूकता से ज्ञानाराधना में वे संलग्न हो गई। विनय नम्रता और समर्पण का गुण उनकी मनोवृत्ति में सहज था। संयम में अनुरक्त होकर वे पल-पल गुरुदृष्टि की आराधना करने लगी। उन्होंने पांच आगम- दशवैकालिक उत्तराध्ययन, नन्दी, वृहत्कल्प और आचारांग कंठस्थ किया। उन्हें 38 थोकड़े तथा 30 व्याख्यान याद थे। स्फुट श्लोक, गीत, दोहे आदि हजारों की संख्या में उनको कंठस्थ थे।

साध्वी हुलासांजी को साध्वीप्रमुखा जेठांजी के सान्निध्य में 13 वर्ष रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साध्वीप्रमुखाजी की प्रेरणा से ज्ञानाराधना के साथ व्याख्यान कला में दक्षता अर्जित की। वे सुडौल सुन्दर थी, वाणी में माधुर्य था और चेहरे में सहज आकर्षण था, इसलिए सम्पर्क में आने वाला हर व्यक्ति उनसे सहज प्रभावित हो जाता। उनमें पापभीरुता, धैर्यता, विनम्रता, लिपि कला में दक्षता, व्यवहार कुशलता, नियमनिष्ठा आदि अनेक विशेषताएं थीं।

उन्होंने लिपि कला सीखने का सलक्ष्य प्रयत्न किया और सफलता प्राप्त की। उन्होंने भगवती सूत्र आदि 13 सूत्रों को लिपि बद्ध कर तेरापंथ पुस्तक भंडार को समृद्ध बनाया। लेखन कार्य में अक्षर विन्यास की सुन्दरता के साथ एकाग्रता और धैर्यनिष्ठा आवश्यक हैं, अन्यथा इस सन्दर्भ में सफलता मुश्किल होती है। साध्वी हुलासांजी की कार्यनिष्ठा उल्लेखनीय थी। कालूयशोविलास में आचार्य तुलसी ने उनके सन्दर्भ में जो

लिखा वह उल्लेखनीय है -

"साध्वी हुलासांजी संसारपक्ष में श्रीचंदजी गधैया की पुत्रवधु थी। धर्मसंघ में एक निष्ठाशील सुशील साध्वी के रूप में उनकी प्रतिष्ठा रही। बड़े घर से सम्बंधित होने पर भी उनके मन में इस बात का कोई गर्व नहीं था। श्रावक समाज को संस्कारी बनाना। उनका विशेष लक्ष्य था। अंतिम वर्षों में उन्होंने मोमासर में स्थिरवास किया और वहां अच्छा काम किया।अपनी लेखन रुचि के आधार पर ही वे भगवती सूत्र का लेखन कार्य पूरा कर पाई।"

डालिम चरित्र में आचार्य तुलसी ने उनके व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देते हुए लिखा -

पापभीरु धीरजवती, मृदुभाषिणी सुडौल।
हुलासां पल-पल सजग कठिन निभावै कोल॥

उनका आचार्यों के प्रति सहज विनयभाव था। वे अनुशासन का बड़ी जागरूकता से पालन करती थीं। विनयवती साध्वियों में उनका प्रमुख स्थान था।

सं. 1981 में साध्वीप्रमुखा जेठांजी का स्वर्गवास होने के बाद अष्टमाचार्य कालूगणी ने उनका सिंघाडा बनाया। उन्होंने जिन-जिन क्षेत्रों में विहरण तथा चातुर्मास किए, उन क्षेत्रों में भाई बहिनों को धार्मिक प्रतिबोध तथा संघीय संस्कार देने में अपने श्रम का अच्छा उपयोग किया।

सं. 1987 में उनका चातुर्मास सिरसा में था। वे चातुर्मास संपन्न कर गुरुदर्शन करने के लिए उग्रविहार करती हुई आ रही थी। उस समय अष्टमाचार्य कालूगणी का प्रवास श्री डूंगरगढ़ में था। आचार्यवर का जिस दिन श्रीडूंगरगढ़ में प्रवेश हुआ। उसी दिन बाव के राणा हरिसिंहजी ने आचार्य श्री कालूगणी के दर्शन किए। बाव के श्रावक चुन्नी भाई उनके साथ थे।

चुन्नी भाई राणाजी को लेकर राजस्थान आने से पहले उनके मन में थोड़ा-सा भय था। उन्होंने सोचा उचित मान सम्मान के अभाव में तथा समुचित व्यवस्था के अभाव में राणाजी के मन में उच्चावच भाव न आ जाए। इसलिए पहुंचने से पहले उन्होंने व्यवस्था के लिए गणेशदासजी गधैया को सूचना दी। गणेशदासजी गधैया उदार मनोवृत्ति के साथ-साथ सामंतशाही जीवन शैली जीने वाले थे। उन्होंने राणाजी के स्वागत में तथा

आवभगत में कोई कमी नहीं रखी। आत्मीयता के साथ राजस्थानी परम्परा से स्वागत सत्कार देख राणाजी अभिभूत से हो गए। विशेष रूप में गणेशदासजी गधैया ने उनको बहुत प्रभावित किया। श्रीडूंगरगढ़ में राणाजी ने चुन्नीभाई से कहा- गणेशदासजी गधैया हमारे बाव में कैसे आ सकता है? मेरा मन है उनको बाव में बुलाऊं।

चुन्नीभाई ने सचिन्तन उत्तर दिया- राणा साहब! गधैयाजी दो कारणों से बाव में आ सकते हैं। पहला आचार्यप्रवर बाव पधारे तो आ सकते हैं। दूसरी बात साध्वी हुलासांजी (सरदारशहर) इनकी न्यातिली साध्वी है, उनका चातुर्मास बाव में हो तो आ सकते हैं। पूज्य कालूगणी बाव पधारे संभव नहीं लगता। दूसरा विकल्प बन जाए तो आपका काम बन सकता है। संयोग की बात थी कि उसी दिन व्याख्यान के समय साध्वी हुलासांजी ने सिरसा चातुर्मास कर आचार्यवर के दर्शन किए। चुन्नीभाई ने राणाजी को कहा- मैंने हुलासांजी के विषय में बताया, ये ही हैं। कहते हैं- राणाजी ने उसी समय परिषद के मध्य खड़े होकर कहा- अन्नदाता! राजस्थान में तो सतयुग दिखाई दे रहा है। हमारा गुजरात आपके दर्शन को तरस रहा है। आप बाव पधारो हम धन्य हो जाएंगे अन्यथा साधु/साध्वी का चातुर्मास देकर हमें कृतार्थ कराएं।

आचार्यवर ने राणाजी की विनती स्वीकार करते हुए उसी समय साध्वी हुलासांजी का चातुर्मास बाव के लिए घोषित किया। पोष महीने में चातुर्मास फरमाने का यह विरल ही मौका था। साध्वीश्री हुलासांजी के चौमासे में गधैया परिवार सदा की भांति उपासना करने गए। उस समय उनकी सारी व्यवस्था राणाजी ने की। लगभग 45 व्यक्ति सेठ गणेशदासजी के साथ थे। राणाजी का आतिथ्य देखकर सब दंग हो गए। गधैया परिवार लगभग 50 दिन वहां ठहरा। राणाजी के साथ जो सौहार्द एवं स्नेहपूर्ण पारस्परिकता रही, उल्लेखनीय थी। गधैया परिवार ने भी राणाजी तथा पूरे परिवार को जो उपहार भेंट किए अदभुत थे। बाव चातुर्मास की परम्परा साध्वी हुलासांजी ने प्रारंभ की।

एक चातुर्मास में 28 बार गुरुदर्शन

साध्वी हुलासांजी संवत 1990 में लाडनूं सेवाकेन्द्र में वृद्ध साध्वियों की सेवा में नियुक्त थी। उस वर्ष अष्टमाचार्य कालूगणी का चातुर्मास सुजानगढ़ में था। उस चातुर्मास में उन्होंने 28 बार सुजानगढ़ जाकर गुरुदर्शन तथा उपासना का लाभ उठाया। लाडनूं और सुजानगढ़ के बीच लगभग 10 कि.मी. की दूरी है। प्रातः सुजानगढ जाना और सायं लाडनूं पहुंचना ऐसा कठिन कार्य प्रबल पुरुषार्थ असीम आस्था सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है।

तपस्या के सन्दर्भ में कीर्तिमान

साध्वी हुलासांजी ने संवत 1992 का चातुर्मास सरदारशहर में किया। उनकी प्रेरणा से यहां बहिनों में पन्द्रहरंगी तपस्या हुई जो उस समय अभूतपूर्व थी और उसके बाद आज तक भी पुनः कहीं नहीं हुई। इस दृष्टि से वह तपस्या का क्रम अपने आप में कीर्तिमान था।

मोमासर

संवत् 1970 में वे अग्रगण्या बनीं और संवत 2016 तक देश के विभिन्न प्रान्तों में विचरण कर खूब काम किया। संवत् 2016 में आचार्यवर ने उनको मोमासर स्थिरवासी बनाया। सं. 2016 से 2024 तक उन्होंने मोमासर में प्रवास किया। आठ वर्ष की अवधि में मोमासर वासियों को उन्होंने धर्म और धर्मसंघ के जो गहरे संस्कार दिए वे आज भी मुखर है। उन्होंने वहां के लोगों की अच्छी आस्था प्राप्त की। उनके सान्निध्य में उनकी प्रेरणा से पांच बहिनें दीक्षा के लिए तैयार हुई। उनमें तीन तो उनकी उपस्थिति में ही दीक्षित हो गई और एक ने बाद में दीक्षा ग्रहण की तथा एक बहिन प्रवीणा जो पारमार्थिक शिक्षण संस्था में साधनारत थी, अचानक समाधि मरण को प्राप्त हो गई। उसको भी साध्वी हुलासांजी के द्वारा संकेत मिला, ऐसा कहा जाता है।

साध्वी हुलासांजी को सहयोगी साध्वियों का अच्छा योग मिला। उन्होंने उनको सम्पूर्ण वात्सल्य भाव के साथ निर्माण किया और साध्वियों ने भी सम्मान और समर्पण भाव के साथ उनकी सेवा की। उनके सिंघाडे की पारस्परिकता अच्छी थी। आचार्यवर ने उनके सिंघाडे में जिन-जिन साध्वियों को भेजा, प्रायः स्थायी रूप से उनके पास रही।

अन्तिम यात्रा

वि. सं. 2025 की ग्रीष्म ऋतु में लू लगने से वे अस्वस्थ हो गई। साधारण उपचार के साथ वेदना को उन्होंने शान्त भाव से सहन की। आषाढ कृष्णा सप्तमी को एक मुहूर्त के अनशन में उन्होंने स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। आचार्यश्री तुलसी ने उनके विषय में उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा -

पुत्र वधू श्रीचंद की, सती हुलासां सार।
आराध्यो आनन्द धन्न, निर्मल संयम धार॥
भद्र प्रकृति निष्ठावती, गण गणपति पद लीन।

वीर वृत्ति धारी सती, अनशन सझ्यो अदीन॥

साध्वी हुलासांजी बड़ी भद्र और सरल प्रकृति की थी। उनका विवेक बहुत जागृत था। उनकी विनयशीलता अनुकरणीय थी। साथ में रहने वाली साध्वियों को वे बराबर यह शिक्षा देती रहती थी कि सदा गुरु की दृष्टि के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। उनकी दृष्टि में ही हम सबका भला है। गण और गणी,के प्रति प्रगाढ़ आस्था उनकी प्रमुख विशेषता थी। वे एक प्राचीन से प्राचीन और नवीन से नवीन साध्वी थी। आकृति से भी बड़ी सुन्दर थीं। यह परम प्रसन्नता की बात है कि साध्वी हुलासांजी ने अपनी साधुचर्या खूब विवेक पूर्वक निर्दोष तथा सजगता से सम्पन्न की। वे अपने साधु जीवन का शुद्धता से पालन करती हुई अन्त में समाधिमरण को प्राप्त हुई। वे बड़ी सौभाग्यशालिनी थीं। साध्वी कमलूजी उज्जैन तथा अन्य सभी-साध्वियों ने भी उनकी परिचर्या बहुत सुन्दर ढंग से की है इसकी मुझे प्रसन्नता है।

विनयनिष्ठा सम्बोधन

आचार्य श्री तुलसी ने सं. 1918 फाल्गुन कृष्णा 10 को गंगाशहर में 'आचार्य तुलसी धवल समारोह' के दूसरे चरण के अवसर पर साध्वी हुलासांजी को 'विनयनिष्ठा' अलंकरण के अलंकृत किया। आचार्यवर द्वारा प्रदत्त अलंकरण पत्र की भाषा इस प्रकार है –

विनय निष्ठा साध्वी हुलासांजी।

तुम्हारी सहज विनम्रता से मैं प्रसन्न हूँ। इस धवल समारोह के अवसर पर मैं तुम्हारा 'विनयनिष्ठा' के रूप में सम्मान करता है।

वि.सं. 2018 फाल्गुण बदि 10

गंगाशहर

आचार्य तुलसी

वि. सं. 2033 कालू जन्म शताब्दी के अवसर पर आचार्य तुलसी ने एक विशालतम समारोह में संघ के 'संघनिष्ठ और सेवाभावी' साधु साध्वियों को विशेष रूप से याद किया तथा स्मृति पत्र प्रदान किया उनमें एक नाम साध्वी हुलासांजी का था।

22. साध्वी प्रतापांजी (सरदारशहर) (712)

साध्वी प्रतापांजी का जन्म सं. 1947 आषाढ शुक्ला 12 को तेरापंथ की राजधानी सरदारशहर के दूगड़ परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम शोभाचंदजी दूगड़ था। वे प्रतिष्ठित, श्रद्धानिष्ठ एवं संघ समर्पित श्रावक थे। अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के विशेष कृपापात्र एवं विश्वासपात्र थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मुखादेवी आस्थाशील और दृढ़धर्मिणी श्राविका थी। इसलिए बालिका प्रतापां को जन्मघूंटी में धर्म के सहज संस्कार मिले। शोभाचंदजी का व्यवसाय बिहार के किशनगंज में था, प्रतापांजी का पालन पोषण भी वहीं हुआ। यद्यपि उस समय कन्याओं को पढाने की परम्परा नहीं थी किन्तु शोभाचंदजी का शिक्षा की ओर झुकाव था। वे चाहते थे कि मेरी लड़की पढ़े। उन्हीं के प्रयास से बालिका प्रतापां ने कुछ शिक्षा प्राप्त की। उनका विवाह बारह वर्ष की अल्पायु में सरदारशहर निवासी गणेशमलजी गोलछा के सुपुत्र संतोकचंदजी के साथ हुआ। संयोग की बात थी कि विवाह की यथार्थता समझ में आए उससे पहले ही उन पर वैधव्य का उल्कापात हो गया। उस समय उनकी अवस्था मात्र पन्द्रह वर्ष की थी। पति वियोग के साथ ही जीवन का अर्थ ही पलट गया। खानपान, रहन सहन, बातचीत एवं पहनावा सभी में मन को कचोटनें वाला परिवर्तन हो गया। उनकी कल्पना का महल भरभराकर गिर पड़ा। इससे उनके मन पर गहरा आघात लगा और जीवन से विरक्ति हो गई। साधु साध्वियों एवं माता पिता के सद्संस्कारों से धार्मिक जीवन जीने का आकर्षण बढ़ा और वही वैराग्य का आधार बन गया। आत्म साधना का लक्ष्य बनाकर उन्होंने तीन वर्ष तक अपने आपको तोला, परीक्षण किया और दृढ़ निश्चय के साथ गुरु चरणों में समर्पित हो गई। माता पिता तथा सभी परिवारजनों की कसौटी पर खरी उतरने पर सं. 1965 में सप्तमाचार्य डालगणी के कर–कमलों से संयम–साधना स्वीकार की।

दीक्षा और विकास

दीक्षित होने के पश्चात साध्वी प्रतापांजी को दो वर्ष गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य मिला। उसके पश्चात उन्हें साध्वी मीरांजी (553) के सिंघाडे में रखा गया। 37 वर्ष तक साध्वी मीरांजी के सान्निध्य में रहकर उन्होंने अपना सर्वत्तोमुखी विकास किया। जहां साधुत्व की नींव को पुष्ट करने वाले आचार और विचार पक्ष को उन्नत बनाया, वहां उन्हीं की प्रेरणा से व्यवहार पक्ष को भी उन्होंने ऊंचाई दी। उनकी विनम्रता, सहिष्णुता, सेवाभावना और सामंजस्यपूर्ण मनोवृत्ति अनुकरणीय थी। कला के क्षेत्र में उन्होंने विशेष योग्यता अर्जित की।

शिक्षा के क्षेत्र में यद्यपि उन्होंने गंभीर अध्ययन नहीं किया पर कंठस्थ ज्ञान के सन्दर्भ में उन्होंने उल्लेखनीय सफलता हासिल की। निरन्तर कंठस्थ ज्ञान करते करते उन्होंने 21 हजार पद्य सीख लिए। स्वाध्याय में भी उनकी गहरी रुचि थी। एक महीने में वे प्रायः एक लाख पद्यों का स्वाध्याय कर लेती थी। सुव्यवस्थित प्रत्यावर्तन करते रहने से उनका कंठस्य ज्ञान प्रायः सुरक्षित रहा।

उनकी लिपिकला बहुत सुघड़ थी। उनमें लेखन कौशल के साथ–साथ लिखने की अभिरूचि बहुत थी। वे तत्परता के साथ निरन्तर लेखन–क्रम को चालू रखती। इसी का सुपरिणाम था कि उन्होंने दशवैकालिक, आचारांग, समवायांग, भगवती आदि 24 आगम लिखे और बड़े बड़े आख्यान भी बहुत लिखे। साध्वी प्रतापांजी द्वारा लिखित पत्रों की संख्या लगभग 4 हजार है। उन्होंने प्रेरक और वैराग्यप्रद चित्र भी बनाए।

अणुव्रत कार्यक्रम में योगदान

सं. 2004 में साध्वी मीरांजी के दिवंगत होने पर आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी प्रतापांजी को अग्रगण्या बनाया। उन्होंने थली मारवाड़, मेवाड़ और मालवा में विहार कर धर्म की अलख जगाई और धर्मसंघ की प्रभावना की। वे जहां भी जातीं श्रावक श्राविकाओं की अच्छी संभाल करतीं और केन्द्र द्वारा जो भी कार्य का निर्देश मिलता प्राणपण से उसे क्रियान्वित करने में लग जाती। अणुव्रत आन्दोलन का जब शुभारंभ हुआ उस समय जिस गांव, नगर शहर में जातीं हर वर्ग हर जाति और हर सम्प्रदाय के लोगों के बीच जातीं और अणुव्रत के असाम्प्रदायिक पक्ष की खूब चर्चा करतीं। विशेष रूप से दलित वर्ग को व्यसन मुक्त बनाने में अधिक श्रम करतीं। समय–समय उनके द्वारा किए गए कार्यों की फलश्रुति देखकर स्वयं आचार्यवर ने उनकी प्रशंसा की।

संघ संघपति के प्रति उनके मन में अटूट आस्था थी। गुरु के मुख से निसृत निर्देश के पालन में वे अत्यधिक सजग थी। एक बार आचार्यवर ने सं. 2014 में उनका चातुर्मास नोखा फरमाया। उनकी सहगामी साध्वी राजांजी मोमासर में अचानक अस्वस्थ हो गई। उनकी चलने की स्थिति न रहने से वह चातुर्मास उन्हें रासीसर में करना पड़ा। सं. 2015 का चातुर्मास आचार्यवर ने पुनः नोखा फरमा दिया पर तब तक साध्वी राजांजी की स्थिति चलने लायक नहीं हुई। फिर भी साध्वी प्रतापांजी ने दृढ निश्चय कर लिया और वहां से विहार कर दिया। संकल्प इतना मजबूत था कि धीरे–धीरे विहार कर वहां पहुंच गए। यद्यपि रास्ता मात्र 20 मील ही था पर एक–एक

कदम जिसके लिए मुश्किल हो, वहां इतना विहार करना भी कष्टप्रद था। वहां पहुंचे मात्र चार दिन हुए थे कि साध्वी राजांजी दिवंगत हो गई। इस प्रकार दृढ संकल्प के साथ गुरु आज्ञा का पालन कर उन्होंने एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

यद्यपि उन्होंने लम्बी तपस्या नहीं की पर वे त्याग तपस्या के विविध प्रयोग करती रहती। उन्होंने लगभग 1000 उपवास 5 बेले और 2 चोले किए। सौ आयंबिल तथा एकासन भी वे प्रायः करती रहतीं। इनके अलावा वे प्रतिदिन 2 प्रहर करतीं, एक महीने में आठ दिन 6 विगय वर्जन करतीं। उबली सब्जी तथा रस का वे उपयोग नहीं करती थीं। ऐलोपैथिक दवा एवं इंजेक्शन का उपयोग नहीं किया। सं. 2010 में उनकी आंखों की ज्योति क्षीण हो गई तथा अन्य अनेक बीमारियों ने भी उनके शरीर को आक्रान्त कर लिया। फिर भी उनकी समता और सहनशीलता असाधारण थी। वे अपने कृत कर्मों का भोग समझकर क्षण क्षण कर्म निर्जरा का दृष्टिकोण सामने रखने का प्रयत्न करतीं।

वेदना में वीरता

असात वेदनीय का प्रबल उदय होने पर भी वे कभी कायर नहीं बनी, प्रत्युत वीर मनोवृत्ति के साथ रोगों से लोहा लेती रही। उनकी इसी भावना को उल्लिखित करते हुए आचार्य तुलसी ने एक पत्र में लिखा था –

"साध्वी प्रतापांजी! वृद्ध है और रूग्ण है। बुढापे से भी बीमारी का बुढापा बहुत कड़ा है। प्रतापांजी दोनों प्रकार के बुढापे से जूंझ रही है। कितने वर्षों से वह असह्य वेदना सहन कर रही है और कर्मों की भारी निर्जरा कर रही है। ऐसी कठिन तपस्या हमारी साध्वियां ही कर सकती है। साध्वियां उनकी सेवा अच्छी करती है। संघ संघपति के प्रति प्रतापांजी की अटूट श्रद्धा और सबल मनोबल उनके जीवन में बना रहे, यही कल्याण का मार्ग है।"

उन्होंने वृद्धावस्था और रूग्णावस्था के कारण बारह वर्ष भीनासर में प्रवास किया। वहां के श्रावक श्राविकाओं ने उनके सान्निध्य का अच्छा लाभ उठाया और उनकी प्रेरणा से आध्यात्मिक धार्मिक जागृति बनी रही। आखिर जब उनको अपनी क्षमता का ह्रास होने का अनुभव होने लगा उन्होंने जागरूकता के साथ सं. 2033 पौष शुक्ला बारस को संलेखना तप प्रारंभ किया। पौष पूर्णिमा के दिन चार दिन की तपस्या में दो बजकर पैंतालीस मिनिट पर आजीवन तिविहार संथारा स्वीकार कर अपना अंतिम मनोरथ पूर्ण किया। उनका धैर्य, मनोबल और आत्मोमुखी दृष्टिकोण से

संथारे की बहुत प्रभावना हुई। स्थानक वासी सम्प्रदाय के आचार्यश्री नानालालजी के शिष्य सम्पतमुनि तो उनकी समता तथा संघीय सेवाभावना देखकर अभिभूत से हो गए। जैन–जैनेतर लोगों का संथारे में सतत आवागमन बना रहा और उन्होंने तेरापंथ धर्मसंघ की मुक्तकंठ से प्रभावना की। उस अवसर पर आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रदत्त मार्मिक संदेश भी पठनीय है –

"भीनासर में साध्वी प्रतापांजी ने आजीवन संथारा किया है। बहुत कठिन काम किया है। संथारा संयम जीवन पर कलश चढाना है। उत्तम से उत्तम साधना है। अब परिणामों की श्रेणी वर्धमान रहे। मन बिलकुल मध्यस्थ रहे। जीने की आकांक्षा और मौत का भय किंचित भी न रहे, बस फतेह है। प्रतापांजी! तुमने शासन की बहुत सेवा की है। 68 वर्षों की लम्बी अवधि तक विशुद्ध संयम पाला है। आचार्यों की दृष्टि की आराधना की है। जीवन को सफल बनाया है। अब तो शेष की बाजी है। खूब समाधि से पार लगाना है। हमारे धर्मसंघ की साध्वियों ने तुम्हारी बहुत सेवा की है। बहुत निर्जरा की है, अब भी आखिरी अवस्था में खूब सहयोग दे रही है। मुनि राजकरण भी तुम्हें बहुत सहयोग दे रहा है। तुम्हारा जीवन धन्य हो रहा है। भिक्षु–शासन तेरापंथ धर्मसंघ विजयी है, जयवन्ता है। सदा उसकी जय विजय होती रहेगी।"

राजलदेसर

वि. सं. 2033 माघ कृष्णा एकम

आचार्य तुलसी

लगभग 22 घंटों के अनशन में सं. 2033 माघकृष्णा एकम को एक बजे वे सबसे खमतखामणा करती करती आत्म समाधि में लीन हो गई।

23. साध्वी मैनाजी (झाबुआ) (720)

साध्वी मैनांजी मध्यप्रदेश में मालवा प्रान्त के झाबुआ गांव की थी। इस गांव के लिए एक कहावत प्रचलित है – 'झाड़ी बंको झाबुओ'। वे पेटलावद की पुत्री और झाबुआ की पुत्रवधू थी। उन्होंने मध्यम वय में सं. 1965 माघ शुक्ला सातम मर्यादा महोत्सव के दिन लाडनूं में डालगणी से संयम स्वीकार किया। साध्वी मैनांजी संयम साधना के साथ तपसमरांगण में वीरांगना बन उतर पड़ी। उन्होंने बहुत–बहुत तपस्या की।

उपवास	–	2505	नौ	–	1
बेला	–	255	दस	–	1
तेला	–	43	ग्यारह	–	1
चोला	–	24	बारह	–	1
पंचोला	–	25	तेरह	–	1
छह	–	3	चौदह	–	1
सात	–	1	पन्द्रह	–	1
आठ	–	1			

उनकी तपस्या के कुल दिनं 3482 हुए। साध्वी मैंनांजी जीवन के अंतिम वर्षों में जब वे चलने फिरने में अक्षम हो गई, वे लाडनूं सेवाकेन्द्र में स्थिरवासी बन गई। सं. 2013 में साध्वी मैनांजी ने संलेखना तप प्रारंभ किया। उन्होंने 26 दिन का संलेखना तप किया और फिर चौविहार अनशन ले लिया। उनको एक मास का संलेखना एवं अनशन आया। चार दिन के चौविहार अनशन में वे वैशाख शुक्ला नवमी के दिन पण्डित मरण को प्राप्त हो गई। उनका अनशन बड़ा प्रभावशाली और संघ की प्रभावना को बढाने वाला रहा।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि जिस समय साध्वी मैंनांजी के संलेखना तप चल रहा था। नवमाधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी सुजानगढ में प्रवास कर रहे थे। जब उन्होंने चौविहार संथारा स्वीकार किया, स्वयं आचार्यश्री तुलसी उन्हें दर्शन देने के लिए लाडनूं पधारे। जीवन की सन्ध्या में साक्षात गुरुदर्शन पाकर साध्वी मैनांजी को लगा जीवन के सारे मनोरथ पूर्ण हो गए। प्रसन्नता से रोम रोम पुलकित हो उठा। उन्हें लगा मानो हर्ष का समन्दर लहरा रहा है। आचार्यश्री ने उनकी गण और गणपति के प्रति अटूट आस्था, संयम के प्रति जागरूकता और तपस्या के प्रति हार्दिक और आत्मबल की खुले दिल से प्रशंसा की। उनके दिवंगत होने के पश्चात उनकी

स्मृति में आचार्यश्री ने एक दोहा और गीत की रचना की।

दोहा –

उड़ी स्वच्छ आकाश में, मैना मन मजबूत।
अमित आत्मबल को लख्यों, 'तुलसी' सबल सबूत।।

गीत –

[1]धन्य मैना सती, धन्य मैना सती।
स्वामीजी रै शासन री पुण्याई बढती।।

1. भारी हठ मनुहारां धार्‌यो चौविहार संथारो।
वर्धमान परिणामां रो ओ अद्‌भुत एक नजारो।।
2. हुलसित चित छाईस दिनां री संलेखना सुधारी।
च्यार दिनां रो चउविहार अनशन निज नैय्या तारी।।
3. सट्ठिभत्त अनशन छेद्यो यूं आगम मांह सुणीजै।
मैना महासती जीवन में, ओ परतख पेखीजै।।
4. गण गणपति री प्रबल आसथा पल पल नाम सुमरती।
शासण तणां शहीदां मांही करी आपरी भरती।।
5. शहर लाडनूं बड़ो सुभागी सौ वरसां को थाणो।
तेरह संवत तुलसी गणपति तपसण कीर्ति बखाणो।।

.....

1 लय :तजो लोभ री लता

24. साध्वी चांदाजी (सरदारशहर) (722)

25. साध्वी संतोकांजी (सरदारशहर) (725)

साध्वी चान्दाजी का जन्म सं. 1938 वैशाख कृष्णा चौथ को हुआ। उनका पीहर चिण्डालिया परिवार में और ससुराल नवलखा परिवार में था। उनके पति का नाम नथमलजी था। पति वियोग के बाद अपनी नववर्षीया पुत्री संतोकांजी के साथ चांदाजी ने सं. 1966 भाद्रव शुक्ला दशमी को लाडनूं में सप्तमाचार्यश्री डालगणी के कर–कमलों से दीक्षा ग्रहण की। उस दिन चार बहिनों ने संयम स्वीकार किया। डालिम चरित्र में दीक्षा के सन्दर्भ में मां बेटी अर्थात साध्वी चान्दांजी संतोकांजी का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है –

भाद्रव सित दशमी चांदा सती सुचारु।
साथै संतोकां पुत्री अधिक दिदारू।

ये चारों दीक्षाएं पूर्व निर्धारित थी, पर आचार्यश्री डालगणी का स्वास्थ्य अत्यधिक कमजोर हो चुका था। इसलिए लाडनूं सेवाकेन्द्र के नीचे के पण्डाल में आचार्यवर नहीं पधार सके। सेवाकेन्द्र के सामने वाले तिरबारे में जहां डालगणी विराजते थे वहीं दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। दशमी के दिन दीक्षामहोत्सव हुआ और भाद्रव शुक्ला बारस को डालगणी का स्वर्गवास हो गया। भाद्रव शुक्ला 15 को अष्टमाचार्य श्रीकालू आचार्यपद पर पदासीन हुए। आश्विन कृष्णा दूज को चारों साध्वियों की बड़ी दीक्षा कालूगणी के कर–कमलों से हुई।

साध्वी चान्दांजी और संतोकांजी संयम साधना और वैराग्य भावना से भावित हो अपना जीवन सफल बनाने लगी। दोनों मां बेटी को साध्वीप्रमुखा जेठांजी के संरक्षण एवं सान्निध्य में रहने का दुर्लभ अवसर मिला। साध्वी चान्दांजी ने सेवा के क्षेत्र में अपने श्रम का नियोजन किया और तन मन से समर्पित होकर सेवा का अनुपम अमृत पान किया। उनकी सेवा भावना से साध्वीप्रमुखाजी को विशेष चित्त समाधि मिली, यह विशेष उल्लेखनीय बात है।

बाल साध्वी संतोकांजी बाल सुलभ चपलता के बावजूद महासती जेठांजी की प्रेरणा से प्रगति पथ पर आगे बढने लगी। उन्होंने साध्वीप्रमुखा के प्रेरणा–प्रोत्साहन से पांच आगम कंठस्थ किए। वे प्रतिभा सम्पन्न थीं और कंठस्थ करने की उनमें असाधारण क्षमता थी। वे एक दिन में 100 पद्य कंठस्थ कर लेती। वे लिपिकला में निपुण थी। उनमें विलक्षण वाचन कला थी, लिखे हुए पत्र को उल्टेकर सहजता से पढ लेती। वे स्वाध्याय–शीला थीं। प्रतिदिन एक हजार, डेढ हजार गाथाओं का

नियमित स्वाध्याय करतीं। साध्वी चान्दांजी और साध्वी सन्तोकांजी दोनों ने साध्वीप्रमुखा की सेवा में आत्म साधना और चित्त समाधि दोनों प्राप्तकर धन्य धन्य बन गई।

सं. 1981 में साध्वीप्रमुखा जेठांजी का स्वर्गवास होने के पश्चात अष्टमाचार्यश्री कालूगणी ने साध्वी सन्तोकांजी का सिंघाड़ा बनाया तब से साध्वी चान्दांजी उनके साथ रही। वे दो वर्ष ही अग्रगामी बन विहरण कर सकी। उन्होंने पहला चौमासा कालू किया और दूसरा चौमासा हरियाणा के उमरा गांव में किया। उस चातुर्मास से पूर्व वे हरियाणा के लुहारी गांव में प्रवास कर रही थी। एक दिन वे सब साध्वियां रात्रि में एक ही स्थान पर सोई हुई थी और साध्वी संतोकांजी चार साध्वियों के मध्य में लेटी थीं। अचानक उन्हें ऐसा लगा कि कोई रास्ता रोक रहा है। उसी समय उनको जोर से उल्टी (वमन) हुआ और उसमें बहुत सारा खून ही खून निकला। इतना अधिक खून निकलने से एकाएक शरीर की स्थिति चिन्तनीय बन गई। फिर भी वहां से विहार कर वे उमरा पहुंची। चातुर्मास में उनका स्वास्थ्य बिलकुल अनुकूल नहीं रहा। कभी स्वस्थ कभी अस्वस्थता का अनुभव होता रहा फिर भी मनोबल और हिम्मत बरकरार रहा। चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद वे राजस्थान आते समय साध्वी हीरांजी नोहर (620) के साथ हो गई। चूरु तक पहुंचते–पहुंचते वे बहुत अधिक बीमार हो गईं। साध्वी हीरांजी को पूज्य कालूगणी ने उनकी सेवा में वहीं रखा। लगभग दो महीने तक वे वहीं रहीं। एक दिन चूरु के श्रावक तोलारामजी ने उनकी आकृति देखकर कहा – लगता है आपका शरीर अब अधिक नहीं टिकने वाला है। उन्होंने जागरूकता के साथ महाव्रतों का उच्चारण कर स्खलना की आलोयणा की और सागारी अनशन स्वीकार कर लिया। कोठारीजी का अनुमान ठीक निकला। वे सं. 1983 फाल्गुन कृष्णा 12 को दिवंगत हो गईं।

साध्वी चांदाजी में सेवा के साथ तपस्या का महान गुण था उन्होंने अपने जीवन में छोटी बड़ी अच्छी तपस्या की। उनकी गणना तपस्वी साध्वियों में हुई। उनकी तपस्या इस प्रकार हैं –

उपवास	–	3358	दस	–	1
बेला	–	203	ग्यारह	–	3
तेला	–	82	बारह	–	1
चोला	–	12	तेरह	–	2
पंचोला	–	8	चवदह	–	1
छह	–	2	पन्द्रह	–	1

सात	—	4	सोलह	—	1
आठ	—	1	सतरह	—	1
नौ	—	2	तीस	—	1

उसके अतिरिक्त उन्होंने वैराग्यभाव के साथ विशेष खाद्य संयम के प्रयोग किए। उन्होंने सं. 1973 के बाद सेलड़ी वस्तु (जिसमें गुड़ चीनी आदि डाली हो) मिठाई आदि का कभी उपयोग नहीं किया। उन्होंने औषधि मात्र का त्याग कर दिया। वे स्वाध्याय प्रतिदिन हजारों पद्यों का करती थी। इस प्रकार तपस्या, स्वाध्याय और सेवा भावना के साथ सफल और सार्थक जीवन यापन करती–करती साध्वी चांदाजी सं. 2005 के मर्यादा महोत्सव के अवसर पर राजलदेसर पहुंची। वे गुरु सन्निधि का अच्छा लाभ उठा रही थी। अचानक एक दिन भोजन करते–करते खाने से विरक्ति हो गई। उन्हें लगा कि बहुत खा लिया। अब शरीर की स्थिति भी इतनी मजबूत नहीं है मुझे संथारा करना चाहिए। इस मनोकामना को साकार करने के लिए उन्होंने माघ कृष्णा ग्यारस से चौविहार तपस्या प्रारंभ की। आठ दिन सानन्द सम्पन्न हुए। तपस्या के नवमें दिन नवमाचार्यश्री तुलसी के मुखारविन्द से चढती भावधारा के साथ चौविहार संथारा स्वीकार किया। चार दिन बाद उनका समाधि मरण हुआ। सं. 2005 माघ शुक्ला सप्तमी मर्यादा महोत्सव को रात्रि में दस बजकर इकतालीस मिनिट पर साध्वी चान्दांजी इस संसार से विदा हो गई।

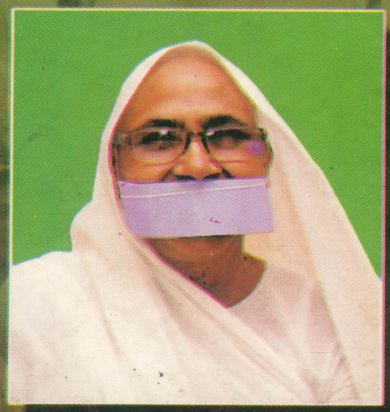

साध्वी कल्पलता

जन्म : वि. सं. २००५, वैशाख कृष्णा २, लाडनूं (राजस्थान)

दीक्षा : वि. सं. २०२३, कार्तिक कृष्णा ८, बीदासर (राजस्थान)

सेवा-निकाय-व्यवस्थापिका : वि. सं. २०३८, माघ शुक्ला ७, गंगाशहर (राजस्थान)

प्रकाशित कृतियां :

- आस्था के चमत्कार, भाग-१
- आस्था के चमत्कार, भाग-२
- आस्था के चमत्कार, भाग-३
- इतिहास के नूपुर
- संस्मरणों का वातायन